उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन – एक तुलनात्मक अध्ययन (चुनी हुई रचनाओं के संदर्भ में)

**The Human Life Depicted in Post-Modern Hindi-English Novels-
A Comparative Study (Based on Selected Writings)**

शोध प्रबंध

**कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलोसफी
उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध**

Thesis Submitted to the University of Calicut for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :

डॉ. हेरमन पी.जे.
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :

अम्बिली मनोहरन
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

2023

Dr. HERMAN P.J.
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that this Thesis is a Bonafide Record of written account carried out by ***Mrs. AMBILI MANOHARAN*** under my supervision and that no part of this Thesis has hitherto been submitted for a Degree in any University.

Calicut University Campus
Date:

Dr. HERMAN P.J.
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I ***AMBILI MANOHARAN*** do hereby declare that this Thesis ***entitled "UTTAR-AADHUNIK HINDI ANGREZI UPANYASON MEM CHITRIT MANAV JEEVAN-EK TULANATMAK ADHYAYAN"*** for the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi is my original work and has been carried out by me under the Guidance and Supervision of ***Dr. HERMAN P.J.***, Assistant Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

AMBILI MANOHARAN
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

Calicut University Campus
Date:

विषय सूची

प्राक्कथन

पहला अध्याय

तुलनात्मक साहित्य: अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप

1.1. भूमिका

1.2. साहित्य: अर्थ एवं स्वरूप

1.3. तुलना का अर्थ

1.4. तुलनात्मक साहित्य: अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप

1.4.1. अर्थ

1.4.1.1. तुलनात्मक शोध

1.4.2. तुलनात्मक साहित्य परिभाषाएँ

1.4.3. तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप

1.4.4. तुलनात्मक अध्ययन के प्रकार

1.4.5. तुलना सिद्धांत

1.4.6. तुलनात्मक साहित्याध्ययन क्षेत्र–निरूपण

1.5. तुलनात्मक साहित्य: शब्द का प्रचनल एवं विकासक्रम

1.6. तुलनात्मक साहित्याध्ययन की प्रक्रिया

1.7. तुलनात्मक साहित्य की ऐतिहासिक भूमिका

1.7.1. भौगोलिक संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य का इतिहास

1.7.2. ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता

1.7.3. फ्राँसीसी संकल्पना

1.7.4. अमरिकी संकल्पना

1.7.5. रूसी स्कूल

1.7.6. कानेडियन संकल्पना

1.8. तुलनात्मक साहित्य: उद्देश्य, महत्व एवं प्रासंगिकता

1.8.1. उद्देश्य

1.8.2. आवश्यकता एवं महत्व

1.8.3. प्रासंगिकता

1.9. तुलनात्मक साहित्य: समस्याएँ

1.10. निष्कर्ष

संदर्भ ग्रंथ सूची

दूसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास का उत्तर-आधुनिक परिदृश्य

2.1. भूमिका

2.2. आधुनिकता

2.3. आधुनिकता बनाम उत्तर-आधुनिकता

2.4. उत्तर-आधुनिकता का विकास

2.5. उत्तर-आधुनिकता: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

2.5.1. अर्थ

2.5.2. परिभाषा

2.5.2.1. भारतीय परिभाषाएँ

2.5.2.2. पाश्चात्य परिभाषाएँ

2.5.3. स्वरूप

2.5.3.1. उत्तर-आधुनिकता की विशेषताएँ

2.5.4. भूमण्ड़लीकरण

2.5.5. ब्राँड कल्चर एवं विज्ञापन

2.5.6. उपभोक्तावादी संस्कृति

2.5.7. उत्तर-औद्योगीकरण

2.6. उत्तर-आधुनिकतावाद साहित्य संदर्भ में

2.7. उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार एवं उपन्यास: एक परिचय

2.8. उत्तर-आधुनिक महिला उपन्यासकार एवं उपन्यास

2.9. निष्कर्ष

संदर्भ ग्रंथ सूची

तीसरा अध्याय

भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य: उत्तर-आधुनिक उपन्यासों के विशेष संदर्भ में

3.1. भूमिका

3.2. भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य का विकास

3.2.1. भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य: एक संक्षिप्त परिचय

3.2.1.1. भारतीय अंग्रेज़ी कहानी

3.2.1.2. भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास

3.2.1.2.1. पूर्व पीठिका

3.2.1.2.2. उत्तर -पीठिका

3.2.1.2.3. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकार

3.3 भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास, 1980 के बाद

3.4 निष्कर्ष

संदर्भ ग्रंथ सूची

चौथा अध्याय

उत्तर-आधुनिक हिन्दी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में मानव जीवन: एक तुलनात्मक अध्ययन

4.1. भूमिका

4.2. उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

4.3. उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन विभिन्न परिदृश्य में

4.3.1. सामाजिक स्तर पर मानव जीवन

4.3.1.1. उत्तर-आधुनिक मानव

4.3.1.2. मानव जीवन में परिवार

4.3.1.3. मानव जीवन में शादी प्रथा के बदलते आयाम

4.3.1.4. मानव जीवन का तकनीकीकरण

4.3.1.5. धार्मिकता में आए बदलाव

4.3.1.6. महानगरीय जीवन बनाम ग्रामीण जीवन

4.3.1.6.1. ग्रामीण मानव जीवन

4.3.1.6.2. महानगरीय मानव जीवन

4.3.1.7. उत्तराधुनिक बच्चों की ज़िन्दगी एवं बदलती युवा मानसिकता

4.3.1.8. स्त्री जीवन में आए बदलाव

4.3.1.9. वर्तमान परिवेश में बुजुर्ग जीवन

4.3.1.9.1. हिंदी उपन्यासों में बुजुर्ग जीवन

4.3.1.9.2. भारतीय अंग्रेजी उपन्यास में बुजुर्ग जीवन

4.3.1.10. विस्थापित मानव जीवन

4.3.1.11. महानगरीय शोभान्वित जगत का मानव जीवन

4.3.1.12. भाषागत बदलाव

4.3.2. राजनीतिक परिदृश्य में मानव जीवन

4.3.2.1. जनतंत्र के बदलते आयाम

4.3.2.2. पिछड़े देशों की राजनीतिक तनाव

4.3.2.3. शिक्षा में राजनीतिक हादसा एवं छात्र राजनीति

4.3.3. आर्थिक स्तर पर मानव जीवन

4.3.3.1. निम्नवर्गीय मानव जीवन

4.3.3.2. मध्यवर्गीय मानव जीवन

4.3.3.3. उच्चवर्गीय मानव जीवन

4.3.3.4. औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप मानव जीवन में आए बदलाव

4.3.3.5. कामकाजी महिला

4.3.4. मानव जीवन में आए सांस्कृतिक बदलाव

4.3.4.1. ब्रॉटड संस्कृति एवं फैशन की दुनिया

4.3.4.2. उपभोक्तावादी संस्कृति

4.3.4.3. बाजारवादी संस्कृति एवं इंस्टेंड कल्चर

4.3.4.4. पार्टी एवं फास्ट फुड़ कल्चर

4.3.4.5. भारतीय बनाम पाश्चात्य संस्कृति

4.4. निष्कर्ष

संदर्भ ग्रंथ सूची

पाँचवाँ अध्याय

संस्तुतियाँ

उपसंहार

सहायक ग्रंथ सूची

प्राक्कथन

भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा होने के कारण हिंदी भाषा एवं साहित्य के विस्तृत अध्ययन से भारत की विविधता, सांस्कृतिक भेद-भाव तथा मानव जीवन में इसके प्रभाव से संबंधित जानकारी प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार भारतीय मानव जीवन में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को समझने और अध्ययन करने हेतु अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य का विश्लेषण करना अनिवार्य है। भूमंडलीकरण के इस दौर में मानव जीवन के बदलते स्वरूप की अभिव्यक्ति खोजने केलिए अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन और जानकारी बहुत ही आवश्यक है।

उत्तर-आधुनिक समय के बहु-प्रचलित संकल्पना है "वैश्विक गाँव" (Global Village) माने विश्व मानव संकल्पना। सारे विश्व को एक गाँव के रूप में परिवर्तित किया है। इस "वैश्विक गाँव" संकल्पना को समझने केलिए बहुभाषिक स्तर में किसी अन्य भाषा साहित्य अध्ययन की आवश्यकता है। इस दृष्टि से एक अन्य भाषा और विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का चयन एवं

भारतीय अंग्रेज़ी रचनाओं का अध्ययन समुचित है। उत्तर-आधुनिक संदर्भ में मानव-जीवन में आए बदलाओं को समकालीन लेखकों ने अपनी रचनाओं में समेट लिया है। औपन्यासिक रचनाओं के ज़रिए मानव जीवन की विस्तृत झलक मिलती है।

वैश्विक संकल्पना को पहचानने तथा समय के साथ बदलते मानव जीवन यथार्थ का अध्ययन और विश्लेषण हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा उपन्यासों के विस्तृत अध्ययन से संभव है। क्योंकि मानवीय जीवन के हर पहलुओं का विस्तृत अंकन औपन्यासिक विधाओं में ही अधिक मिलता है। इसलिए उत्तर-आधुनिक पृष्ठभूमि में हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों का अध्ययन करके समय के साथ बदलते मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

साहित्य के क्षेत्र में वैश्विक एकता को स्थापित करने के नाते आज तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका है। "तुलनात्मक साहित्य" का वास्तविक उद्देश्य विभिन्न भाषाई साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन है। लेकिन सिर्फ साहित्यिक

विधाओं में ही नहीं बल्कि मानव अपने जीवन के हर पहलुओं में यह तुलनात्मक प्रक्रिया करते रहते हैं। तुलना करना मनुष्य की स्वाभाविक आदत मानी जानी चाहिए। एक छोटी सी कलम से लेकर अपनी कैरियर तक हर व्यक्ति किसी दूसरे से तुलना करके ही तय कर लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न भाषा साहित्य का भी तुलनात्मक अध्ययन करने से भाषाई विशेषताओं, सामाजिक-साँस्कृतिक विविधताओं का भी ज्ञान प्राप्त होते हैं।

भारतीय संदर्भ में कहें तो यहाँ के बहुभाषा-भाषी, बहुलतावादी समाज में एकता को बनाए रखना तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही संभव हैं। इस प्रकार भारतीय एवं अन्य भाषाई साहित्य के अध्ययन एवं समीक्षा करने से वैश्विक स्तर में एकता स्थापित करने की आवश्यकता समझ सकते हैं। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का लक्ष्य 'अनेकता' में एकता की प्रतिष्ठा ही है। यह सिर्फ साम्य-वैषम्य परखने का अध्ययन नहीं बल्कि साहित्यिक-सांस्कृतिक विशेषताओं को एक पृष्ठभूमि प्रदान करनेवाले, सामाजिक एकता को सुदृढ बनानेवाले, विविधता में एकता लाकर

सार्वभौमिक साहित्य संकल्पना को उजागर करनेवाला अध्ययन हैं। जो सर्वोत्कृष्ठ रचनाओं को देश-काल वातावरण से परे दूसरों तक पहुँचानेवाला अध्ययन है, जिससे कि बहुआयामी संकल्प विकसित हो जाए। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के हिंदी-भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों का तुलनात्मक साहित्याध्ययन करके मानव जीवन में आए बदलावों का अध्ययन विश्लेषण करने का कार्य इस शोध प्रबंध में किया है।

मेरा शोध विषय 'उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेजी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन–एक तुलनात्मक अध्ययन' (चुनी हुईं रचनाओं के संदर्भ में) है। 20 वीं सदी के बाद के नौ हिन्दी एवं नौ भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों को लेकर मैं ने अपना अध्ययन पूरा किया है। इसके अलावा भी बहुत सारे उपन्यासों का अध्ययन मैं ने किया था। लेकिन मुख्य रूप से ये अठारह उपन्यासों को ही चयन किया है। हिन्दी में स्वयं प्रकाश, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, कमल कुमार, असगर वजाहत, रजनी गुप्ता, रवीन्द्र कालिया, श्याम सखा श्याम, उषा प्रियंवदा एवं भारतीय अंग्रेज़ी रचनाकारों

में सुधा मूर्ती, अनुराधा रॉय, जयश्री मिश्रा, चेतन भगत, दुर्जोय दत्ता, मानवी अहूजा, रवीन्दर सिंह आदि के उपन्यासों से गुज़रने का सुअवसर प्रस्तुत अध्ययन के दौरान मिला है।

अध्ययन को क्रमबद्ध एवं सुविधापूर्ण प्रस्तुत करने केलिए उपसंहार सहित पाँच अध्यायों में विषय को बाँटा है।

पहला अध्याय 'तुलनात्मक साहित्य अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप' है। जिसमें तुलनात्मक साहित्याध्ययन के सैद्धान्तिक पक्ष को क्रमिक एवं सुसंगठित रूप में प्रस्तुत करके वर्तमान समय में इसका महत्व, प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय 'हिंदी उपन्यास का उत्तर-आधुनिक परिदृश्य' में उत्तर-आधुनिकता का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं इस परिवेश में लिखे गए हिंदी उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिलाने की कोशिश की है।

तीसरा अध्याय 'भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य: उत्तर-आधुनिक उपन्यास के विशेष संदर्भ में' में भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी को लेकर उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में लिखे

गए भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों तक का क्रमिक विश्लेषण किया है।

चौथा एवं मुख्य अध्याय 'उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन- एक तुलनात्मक अध्ययन' में वर्तमान मानवीय जीवन को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साँस्कृतिक स्तरों में बाँटकर चयनित उपन्यासों के आधार पर जीवन के विभिन्न पहलुओं को लेकर विस्तृत अध्ययन किया है।

पाँचवाँ अध्याय 'संस्तुतियाँ' में भविष्य में शोधछात्रों केलिए प्रस्तुत विषय पर जो संभावनाएं हैं इसके बारे में ज़िक्र किया है।

अंतिम अध्याय 'उपसंहार' में 20 वीं शती के हिंदी एवं भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में मानव-जीवन के उत्तर-आधुनिक परिदृश्य की चुनौतियाँ, समस्याएँ, खूबियाँ आदि पर विचार प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकारों की रचनाओं का मूल्यांकन और पूरे अध्ययन का सार-संक्षेप प्रस्तुत है।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के असिस्टेंट प्रोफ़ेसर डॉ. हेरमन पी.जे. के निर्देशन में यह शोध-कार्य संपन्न

हुआ है। विषय चयन से लेकर शोध-प्रबन्ध के प्रणयन तक उन्होंने अपने बहुमूल्य सुझावें, विद्वतापूर्ण दिशा-निर्देशों से मुझे एक शोधार्थी होने का एहसास दिलाया और समयोजित प्रोत्साहनों एवं सुधारों के ज़रिए शोधकार्य के बीच में आए अंतः बाह्य संघर्षों से ऊपर उठाया। अपने परम आदरणीय गुरुवर श्री. हेरमन पी.जे के प्रति मेरी असीम कृतज्ञता एवं स्नेह तहेदिल से व्यक्त कर रही हूँ।

शोध सामग्री, संदर्भ एवं प्रेरणा के रूप में काम आए उपन्यासों के लेखकों, उनके प्रकाशकों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट कर रही हूँ। विभागाध्यक्ष एवं विभाग के अन्य आदरणीय गुरुजनों, मेरे प्रेरणाश्रोत रहे मित्रों, मुख्यतः श्रीमती धन्या पी.पी जिन्होंने हमेशा मेरा साथ दिया, दफ़्तर एवं पुस्तकालय के कर्मचारियों, शोध प्रबंध के टंकण एवं मुद्रण कार्यों से जुड़नेवाली कुमारी कुन्नमकुलत्त बेबीजी के प्रति भी मैं सर्वदा कृतज्ञ रहूँगी। शोध सामग्री संकलन हेतु केरल के कई विश्वविद्यालयों, शिक्षण एवं शैक्षिक संस्थाओं, प्रकाशन संस्थाओं में जाने और अध्ययन

करने का सुअवसर मिला। उन सभी संस्थाओं के अध्यापकों एवं पुस्तकालय कर्मचारियों के प्रति भी मैं तहेदिल से आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे शोधकार्य को सार्थक बनाने में अपनी माताजी, पिताजी, बहन, पति, सास-ससुर सहित पूरे परिवारवालों का स्नेह, प्रेरणा एवं सहयोग सबसे महत्वपूर्ण रहा है। मुख्यतः पिता श्री. मनोहरन और पति श्री. अरुण राजन। उनके सहयोग के बिना मेरे जीवन के किसी भी कार्य का शुभांत नहीं हो सकता। मैं इस अवसर पर उन सभी के प्रति हृदय भरा स्नेह और आभार प्रकट करती हूँ।

शोध विषय के प्रति यथासंभव ईमान्दार रहने को प्रयास किया गया है। कहीं कोई कमी आयी है तो क्षमा प्रार्थी हूँ। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को विद्वानों एवं सुधी पाठकों, हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के सम्मुख सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ।

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

अम्बिली मनोहरन
शोध छात्रा

पहला अध्याय

तुलनात्मक साहित्य: अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप

1.1. भूमिका

विश्व के विभिन्न विद्यालयों में आज तुलनात्मक साहित्याध्ययन को बहुत अधिक महत्व दिये जा रहे हैं। क्योंकि, विचार, विमर्श एवं विश्लेषण के साथ-साथ तुलना भी आज एक उत्कृष्ठ आलोचना का अनिवार्य अंग बन गया है। सिर्फ साहित्येतिहास के विभिन्न तथ्यों का चयन ही नहीं बल्कि, अलग-अलग वातावरण में रचित साहित्यों का सादृश्य निरूपण करना भी आज के समाज में अनिवार्य बन गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' (The whole world is a family) की सार्थकता तब समझ में आएँगे जब देश देशान्तर में रचित साहित्यों का सादृश्य निरूपण करें। क्योंकि हर भाषा साहित्य वहाँ के समाज का शब्द, दर्पण या छाया माना जाता है।

एक संस्कृति, किस प्रकार दूसरी संस्कृति पर प्रभाव डालती है तथा किस प्रकार हर युग अपने परंपरागत संस्कृति को नवीन

तत्वों एवं मूल्यों से मिलाकर आगे बढ़ाते हैं उसी प्रकार दो भाषा साहित्यों के बीच या दो देश साहित्यों के बीच निहित एकता एवं सादृश्य निरूपण करके नवीन तथ्यों को उद्‌घाटित करना तुलनात्मक साहित्याध्ययन का ध्येय माना जा सकता है।

बहुभाषिक देश की सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूढ़ियों को रेखांकित करनेवाली रचनाओं के अंतरंग एवं बहिरंग पक्षों का अध्ययन करके सूक्ष्मता एवं अक्षमता, सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष, समानताएँ एवं विषमताएँ आदि का तलाश करके उस पर विचार विमर्श करना साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन है। 'विश्व साहित्य' संकल्पना को लेकर गोयथे (Goethe) और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'विश्व मानव' संकल्पना किस प्रकार आगे बढ़ाया है उसी प्रकार 'विविधता में एकता' की तलाश करके मानवीय मन की एकता को स्थापित करने का प्रयास ही तुलनात्मक साहित्याध्ययन का उद्‌देश्य और लक्ष्य है। इसलिए ही टैगोर ने 'तुलनात्मक साहित्य' को 'विश्व साहित्य' नाम से पुकारा है।

विभिन्न भाषा साहित्य की तुलना करने पर मानवीय जीवन की विविधता को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं, तो हम भारत जैसे बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक (Multi Lingual & Multi Cultured) देश में तुलनात्मक साहित्याध्ययन की अनिवार्यता को नज़र-अंदाज़ नहीं कर सकते हैं। टी.जी मायंकर ने नगेन्द्र के 'तुलनात्मक साहित्य' नामक रचना के अपने निबन्ध में तुलनात्मक साहित्य के बारे में इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि- "तुलनात्मक साहित्य का मुख्य आशय साहित्य विशेष को पृष्ठभूमि प्रदान करनेवाली सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के संधान द्वारा अपने परिप्रेक्ष्य को व्यापक बनाना और इस प्रकार साहित्य तथा मानवीय कार्य कलाप के क्षेत्रों के पारस्परिक संबन्ध से अवगत होना।"[1]

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्याध्ययन करने पर आस्वादन की चेतना, जातीय एवं राजनीतिक-भौगोलिक सीमाओं से मुक्त होकर एकरसता एवं अखण्डता की स्थापना करती हैं। अतः 'विश्वमानव' की संकल्पना दृढ़ हो जाती है। प्रस्तुत अध्याय में

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के सैद्धान्तिक पक्ष को क्रमिक एवं सुसंगठित रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसके महत्व एवं प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करने का प्रयास है।

1.2. साहित्य: अर्थ एवं स्वरूप

साहित्य, समाज की वाणी है। समाज में घटित घटनाओं का शब्दबद्ध रूप है। साहित्य मानव के क्रियात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य समाज का दर्पण मानते हैं। पर दर्पण पर दिखाई देनेवाली छवि मात्र नहीं है साहित्य। साहित्य में जीवन निहित है, वह एक अनुभूति है और एक एहसास भी हैं। हर रचना लेखक की आत्मा जैसी हैं। मानव के स्रष्टा ईश्वर है तो साहित्य का स्रष्टा लेखक है। क्योंकि लेखक के चित्तवृत्तियों का आविष्कार है साहित्य। साहित्य सिर्फ एक समाज की नहीं विश्व भर के मानव की संपत्ति माननी चाहिए। इसकी ओर से आदान-प्रदान करके साहित्य रूपी संस्कृति का विकास हुआ है। इसका मतलब है-हमारे संकुचित मनोवृत्तियों को एक बृहत् परिप्रेक्ष्य में बदलने की एक ज्ञान भण्डार है साहित्य। जैनेन्द्र के शब्दों में-“मनुष्य और मनुष्य

जाति का भाषाबद्ध या अक्षर बद्ध ज्ञान ही साहित्य है। सच में कहे तो साहित्य स्वयं एक बहुत बड़ी सत्ता हैं। इसमें लोक हित की भावना निहित है। “हितेन सहवर्तितो इत सहितः तस्य भावः साहित्यम्।”[2]

जिस प्रकार समय के साथ-साथ समाज बदलता है उसी प्रकार साहित्य एवं साहित्यिक मान्यताएँ भी बदलती हैं। तब साहित्य सृजन में नई-नई उद्भावनाएँ पैदा होती हैं तथा उन उद्भावनाओं के अनुसार सोचने की कसौटियाँ भी बदली दिखाई पड़ती हैं। जैसे कि रीतिकालीन साहित्य में प्रेम भावना को महत्व देते थे। पर आधुनिक काल के साहित्य में देखे तो ज़िन्दगी की कटु यथार्थता का आविष्कार किया गया है। समय एवं आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य में बदलाव आना ज़रूरी है। गुलाब राय ने लिखा है- “अच्छा कलाकार अपने युग का मुख और मस्तिष्क होता है। मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, मुख वही बोलता है। युग में जो आवाज़ उठती है, साहित्यकार उसी को प्रतिध्वनित करता है।”[3]

वर्तमान युग में इस संसार में बहुत सारी भाषाएँ एवं उस पर व्यापक साहित्य संपत्ति भी विद्‌यमान है। उस विविधता को अपनाना हर सामान्य केलिए संभव नहीं है। इसलिए जिन लोगों ने यह कार्य किया है, उन्हीं लोगों द्‌वारा उसपर गंभीर अध्ययन विश्लेषण करके उस ज्ञान भण्डार को आम जनता तक पहूचाना समय की माँग है।

साहित्य हर युगीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को अपनाकर आगे बढ़ता हैं। युग के आदर्शों, विचारों, आशयों को व्यक्त करना इसका स्वाभाविक काम मानना चाहिए। ऑस्कारपीट के अनुसार "कोई कृति जो प्रकार्यात्मक नहीं है अपने आप में साध्य है, जो सांस्कृतिक एवं प्रयोजनातीत ज़रूरतों को पूरा करती है, वही साहित्य है।"[4]

साहित्यकार हमेशा अपने समय को पकड़ने की कोशिश करते रहते हैं मतलब वे लोग समय का प्रतिनिधित्व करनेवाले होते हैं। अपने समय के वायुमण्डल में घूमते हुए विचारों को वे मुखरित करते हैं। साहित्य, समाज का एक नवीन सृष्टि है लेखकों

की तूलिका उसे नया जीवन एवं चेतना प्रदान करती हैं। साहित्य में व्यष्टि एवं समष्टि के रागात्मक संबन्धों से आविर्भूत सत्य ही ग्राह्य होता है। इसलिए साहित्य भी जीवन की यथार्थता के समान मूल्य होते हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "साहित्य की मान्यताएँ जीवन की मान्यताओं से विच्छिन्न नहीं होतीं। नई परिस्थितियों में जब मनुष्य नए अनुभव प्राप्त करता है तो जगत के व्यापारों एवं मानवीय आधारों तथा विश्वासों के प्रति उसकी आस्था बढ़ या घट जाती है। सभी मानों कि मूल्य में कुछ पुराने संस्कार और नए अनुभव होते हैं।"[5]

विविध कोशों में साहित्य का अर्थ इस प्रकार दिया है-

Princeton's Wordnet

Literature (Noun)- Creative writing of recognized artistic value. (मान्यता प्राप्त कलात्मक मूल्य का रचनात्मक लेखन।)

Published writings in a particular style on a particular subject. (किसी विशेष विषय पर एक विशेष शैली में प्रकाशित लेखन।)

The profession or art of a writer. (एक लेखक का पेशा या कला।)

The collected creative writing of a nation, people, group or culture.

Wiktionary

The body of all written works. (सभी लिखित कार्यों का मूल।)

The collected creative writing of a nation, people, group or culture. (किसी राष्ट्र, लोग, समूह या संस्कृति का एकत्रित रचनात्मक लेखन।)

Webster Dictionary

The collective body of literary productions, embricing the entire result of knowledge and fancy purserved in writing, also the whole body of literary productions or writings upon a given subject or in reference to a particular science or branch of knowledge, or of a given country or period; as the literature of Biblical criticism, the literature of chemistry.

विकीपीडिया में साहित्य का मतलब 'किसी भाषा के वाचिक एवं लिखित रचनाओं का समूह है।'

साहित्य, विशेषकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में कहें तो बहुभाषिक रूप में विद्‌यमान है। इस बहुभाषीय साहित्य संपदा का अध्ययन और विश्लेषण किसी एक भाषा के ज़रिए मुमकिन नहीं है। पर यह बात नज़र अन्दाज़ नहीं कर सकते कि भारतीयों के बीच "अनेकता में एकता" लाने के प्रयास में यहाँ के साहित्य अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा रहे हैं।

1.3. 'तुलना' का अर्थ

तुलना एक सहज मानवीय प्रवृत्ति मानती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणि है। समाज में एक आदान-प्रदान के साथ ही वह जी रहे हैं। चाहे हम विभिन्न देशों के हो, विभिन्न भाषाएँ बोलते हो, विभिन्न परिवेशों को अपनाकर आगे बढ़ते हो, पर हमारे अन्दर की मानविकता और संवेदना एक ही है। किसी और के सहारे के बिना यहाँ जीना नामुमकिन है। हर कहीं मानव अपने आपको समझने में किसी और के साथ अपने को तुलना करते हैं। तुलना

जहाँ मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है, वहाँ ज्ञान प्राप्ति का भेदक साधन भी है। 'तुलना' उस प्रक्रिया को कहते हैं एक से अधिक चीज़ों या बातों को एक साथ अध्ययन विश्लेषण करके उसके सजातिय एवं विजातीय पक्षों को पता लगाना। समानताएँ एवं विषमताएँ ढूँढना भी। किसी दो व्यक्तियों का या चीज़ों का या आशयों का या दो संस्कृतियों का तुलना हम कर सकते हैं। मनुष्य अपने हर दिन का व्यवहार किसी न किसी बात की तुलना करते ही रहते हैं। उसी प्रकार देश-भीतर-देश की भी तुलना करके सांस्कृतिक वैविद्‌य, रीति-रिवाज़ एवं रूढ़ियों की बहुलता, दोनों देश के रहन-सहन आदि सबकी जानकारी मिलते हैं। उनमें जो अच्छी बातों को अपनाकर बुराइयों को छोड़ सकते हैं।

पहले ही जिक्र किया है कि मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है तुलना। उदाहरण केलिए अगर हम किसी चीज़ को खरीदना चाहते हैं, पर प्रस्तुत चीज़ की बिक्री बहुत सारे विकलपों से होती चले आ रही हैं तो आप उनमें से सबसे अच्छी माल कैसे ढूँढ निकालेंगे। विभिन्न लोगों से राय पूछकर उत्पादन की तुलना करके हमेशा

अपनेलिए बेस्ट एण्ट बेस्ट खरीदने की कोशिश करेंगे, क्योंकि हर कोई अपने लिए बेस्ट चीज़ें ही चाहते हैं।

एक ओर उदाहरण देखिए-अगर किसी माँ-बाप अपनी लड़की केलिए शादी तय करने का निर्णय लेकर वर ढूँढेंगे तो कैसे किसी एक वर को पसंद करते हैं? बहुत सारे लड़के, लड़की को देखने आएगे। उनमें से लड़के के परिवार, नौकरी, परवरिश आदि सब देखकर आए लड़कों में से किसी एक का चयन तुलना द्वारा ही किया जाता है। तो इसका मतलब यह है कि मनुष्य अपने हर काम पर कहीं किसी भी प्रकार तुलना करते ही रहते हैं।

तुलनात्मक शब्द में तुलना करने की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें, उनके साम्य वैषम्य का पता लग सकें। अंग्रेज़ी में इसकेलिए 'कंपारिज़ण' (Comparison) कहते हैं। मलयालम में तारतम्यम्। कई विद्वानों के अनुसार तुलना का अर्थ सादृश्य निरूपण मात्र है। किन्हीं दो वस्तुओं, स्थानों, व्यक्तियों, समय, विचारों, घटनाएं, विचारधाराओं, आन्दोलनों में सादृश्य निरूपण को

तुलना कहलाता है। तुलना को अनन्वय भी कहा जाता है इसमें वस्तु अथवा व्यक्ति की अनन्य सामान्यता प्रतिपादित होती है।

अंग्रेज़ी में तुलनात्मक शब्द का प्रयोग बराबरी की तलाश केलिए ही प्रयुक्त किया जाता है। पर मलयालम में समानताओं एवं विषमताओं को अलग करके पढ़ने या सजातीय एवं विजातीय पक्षों की तलाश करने की विधा को या प्रवृत्ति को तुलना कहते हैं। चाहे कुछ भी हो आम जनता दो या दो से अधिक बातों की अच्छाइयों एवं बुराइयों की जानकारी केलिए तुलना करते हैं। इसलिए तुलना करने की प्रवृत्ति मानव प्रकृति का अभिन्न हिस्सा माना जाता है।

आज, विकास के इस युग में तुलना भी विविध रूपों में बहुसंख्यक प्रसंगों में बहुराष्ट्रीय परिवेश में विद्यमान है। क्योंकि भारत जैसे देशों में बहुसांस्कृतिक (Multi cultured) परिवेश हमला कर रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता को हम अपनाने रहते हैं। मानव को अपनी सांस्कृतिक बदलाव की पहचान तुलनात्मक ढंग से ही मिलेंगे। हर देश के साहित्य वहाँ के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों में

पनपते हैं। साहित्य का देश-देशान्तर की सीमाओं को तोड़कर तुलनात्मक अध्ययन करने पर ही लोगों के मन में सांस्कृतिक वैविद्यता का ज्ञान पैदा होता है। इसलिए आज हर क्षेत्र में- साहित्य, कला, विज्ञान, सौंदर्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र आदि-तुलनात्मक अध्ययन बहुत लोकप्रचलित विधा के रूप में आगे बढ़ रहे हैं।

इस प्रकार तुलना तो मनुष्य के हर प्रवृत्तियों में विराजते है। तुलना करके ही वह खुद की क्षमता को पहचानते हैं। अपनी अस्मिता को पहचानते हैं। भारतीयों को अपनी अस्मिता को ढूँढने की क्षमता अपने बदलती सांस्कृतिक परिवेशों से मिली थी। तभी तो भारत 'वैविद्यता में एकता' रूपी सूत्र से बंधी रहते हैं। चाहे कितनी भी वैविद्यता हो-भाषा में, देशों में, रहन-सहन में, रूढ़ियों में-लेकिन हम सब एक ही है। हमारे अंदर की चेतना एक ही है। मानवता एक है। यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश को अन्य देशों से भी तुलना करने पर 'विश्वमानव' संकल्पना और दृढ़ एवं सार्थक बनेंगे।

1.4. तुलनात्मक साहित्य: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

तुलना जहाँ मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है वहाँ ज्ञान प्राप्ति का अनिवार्य साधन भी है। साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन औपचारिक अध्ययन के रूप में आज सर्व स्वीकृत है। क्योंकि साहित्य एक दूसरे के संपर्क के बिना विकसित नहीं होते हैं। जब दो भाषाओं के साहित्य एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तब इतिहास के विभिन्न युगों की विराटता, सांस्कृतिक वैविद्‍यता, मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं विकास आदि का बोध मिलते हैं। यह बोध प्रदान करने केलिए ही आज तुलनात्मक साहित्याध्ययन किया जा रहा है। उसी प्रकार जब भारतीय भाषा साहित्य की तुलना अंग्रेज़ी भाषा वाङ्मय की प्रवृत्तियों से किये जाने पर हमें अपने साहित्य की रचनाकारों, रचनाओं एवं प्रवृत्तियों के महत्व को प्रत्यक्ष रूप में एहसास कर सकते हैं। उदा: केलिए कालिदास एवं षेक्सपियर की तुलना, वाल्मीकी एवं होमर की तुलना, कुंदक के वक्रोक्तिवाद का क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के साथ तुलना आदि।

1.4.1. अर्थ

'विश्वसाहित्य' जिसको अंग्रेज़ी में 'कंम्पेरेटिव लिटरेचर' कहा जाता है वह इस सार्वभौमिक सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति है। टैगोर ने तुलनात्मक साहित्य के बगैर 'विश्वसाहित्य' नाम का इस्तेमाल किया है इसपर 'तुलनात्मक साहित्य' का शब्दार्थ निहित है। प्रस्तुत पद अंग्रेज़ी के 'कंपेरेटिव लिटरेचर' का हिन्दी शब्दानुवाद माना जाता है। इसका वास्तविक अर्थ 'साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन है। विदेश में यह 'सांस्कृतिक अध्ययन' के नाम से भी जाने जाते हैं (Cultural Studies)। मैथ्यू अरनॉल्ड 1919 में सबसे पहले 'कंपेरेटिव लिटरेचर' शब्द का प्रयोग किया था। लेकिन आरंभ से लेकर ही यह शब्द संवादात्मक हैं। क्योंकि साहित्य, रचनाकार की क्रियात्मक अभिव्यक्ति माने जाते हैं। हमने आज तक ऐसी कोई रचना नहीं देखी कि जो अपने आप को तुलनात्मक हो। मतलब हमने ऐसे कोई रचनाकार को नहीं देखी है जो तुलनात्मक उपन्यास, तुलनात्मक कहानी आदि लिखते

हो। रचना, सृष्टि के संदर्भ में कभी भी तुलनात्मक साहित्य नहीं बन जाते हैं।

रेनेवेलक 'ऐतिहासिक अर्थविज्ञान' की सहायता से कहे कथन देखिए- "तुलनात्मक शब्द में तुलना करे की प्रक्रिया जुड़ी हुई है तथा तुलना में वस्तुओं को कुछ इसप्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिसमें, उनमें साम्य-वैषम्य का पता लग सकें।"[6] वेलेक का कहना यह है कि 'तुलनात्मक' का अर्थ तुलनीय की अपेक्षा ओर कुछ नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत तो हमने पहले ही सूचित किया कि 'तुलना' सिर्फ सादृश्य का निरूपण है। लेकिन सिर्फ सादृश्य का निरूपण तुलनात्मकता नहीं बल्कि समानताओं के साथ विषमताओं का भी अध्ययन करने से अध्ययन तुलनात्मक हो जाते हैं।

वास्तव में यह एक न्यूनपदीय प्रयोग है (Elliptic) और इसका मतलब है 'साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'। विवाद वास्तव में इसलिए हुआ कि 'साहित्य' शब्द का वास्तविक अर्थ लोग धीरे-धीरे भूल बैठे थे। 'साहित्य' शब्द का वास्तविक एवं

प्राथमिक अर्थ था 'ज्ञान या साहित्य का अध्ययन'। लेकिन बाद में यह अर्थ बदलकर 'किसी भाषा, देश या समय में लिखित रचनाओं के समूह' बन गया है। बदलते अर्थ परिप्रेक्ष्य में 'तुलनात्मक साहित्य' शब्द का अध्ययन करते तो भ्रमक होना स्वाभाविक बात है। क्योंकि इससे अर्थ संकीर्ण बन जाओगे। पर साहित्य की प्राचीन अर्थ को ग्रहण करते तो 'तुलनात्मक साहित्य' शब्द का अर्थ 'तुलनात्मक साहित्याध्ययन' जो अपने आप में संपूर्ण शब्द है। बल्कि साहित्य शब्द के आधुनिक अर्थग्रहण करे तो 'तुलनात्मक साहित्य' का अर्थ होगा 'तुलनात्मक रचनाओं का समूह'। फ्रांस में ठ्ठ a 'Literature' शब्द का अर्थ है 'साहित्य या साहित्याध्ययन'। इसलिए फ्रांस में 19 वीं शती में 'तुलनात्मक साहित्य या साहित्याध्ययन' पद की सृष्टि में कठिनता नहीं हुई। जर्मनी में 20 वीं शताब्दी से तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में एक नया पद इस्तेमाल करना शुरू किया, वही है- Vergleichenden Literature Wissenchaft फ्लेयट के अनुसार इसका अर्थ है 'साहित्य का तुलनात्मक विज्ञान'।

'तुलना' शब्द की ओर संकेत करते हुए इन्द्रनाथ चौधुरीजी ने लिखा है कि- "तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनमें साम्य-वैषम्य का पता लग सकें।"[7]

बाबू श्यामसुन्दरदास के शब्दों में तुलना- "किसी वस्तु के स्वरूप और महत्व का वास्तविक ज्ञान तभी होता है, जब कुछ समानधर्मी वस्तुओं के साथ उसकी समानता एवं असमानता की सम्यक् विवेचना की जावे, तो असमान वस्तुओं के साम्य और विरोध का निरूपण वस्तु के स्वरूप के ज्ञान केलिए आवश्यक है।"[8]

इन्द्रनाथ चौधरी अपने निष्कर्ष में 'तुलनात्मक साहित्य' को 'तुलनात्मक अध्ययन' के रूप में स्वीकार किया है। वे परिभाषा तो 'तुलनात्मक साहित्य' की करते है पर उसपर 'अध्ययन' ही स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। यों कहना चाहिए कि 'तुलनात्मक साहित्य' का स्वरूप 'तुलनात्मक अध्ययन' पर ही है दोनों के बीच केवल शब्द भेद है। नामकरण में साहित्य पर व्यवहार में अध्ययन। सिर्फ

चौधुरी ही नहीं बल्कि नगेन्द्र भी 'तुलनात्मक साहित्य' को तुलनात्मक अध्ययन के अर्थ से अपनाते थे।

डॉ. राजूरकर के अनुसार 'तुलनात्मक अध्ययन' विशेषों में सामान्य तत्वों को खोज करने में सहायता पहूँचता है। फादर कामिल बुल्कें ने रामकथा पर शोध ग्रन्थ लिखा है। अलग-अलग भाषाओं में रामकथा मिलती हैं। उस सारी रामकथाओं को क्रम में रखकर कामिल बुल्के ने अध्ययन किया है। भारत में प्राय सारी भाषाओं में रामकथा उपलब्ध है। हर भाषाओं में उपलब्ध रामकथा के अपने-अपने परिप्रेक्ष्य पर उसे समझाना और उस पहचान की ओर से सामान्य एवं विशेष तत्वों का परिचय भी मिलते हैं। साहित्य का काम ही विशेष का अध्ययन होता है। साहित्य के प्रत्येक रचना को हम विशेष के अर्थ में ही लेते हैं। इसलिए राजूरकर जी ने ऐसा कहा है।

1.4.1.1. तुलनात्मक शोध

यह पद्धति अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण पद्धति है क्योंकि अनुसंधान पद्धतियों में उच्चकोटि में उसका माना गया है।

इसका अर्थ यह है कि-दो अलग-अलग विषयों की तुलना करते हुए अध्ययन करना। 'तुलना' शब्द 'तुल' धातु के साथ 'ना' प्रत्यय लगाने से उत्पन्न हुए है और जिसका अर्थ है-बराबरी करना, मुकाबला करना, होड़ करना आदि अतः तुलना का वास्तविक, सामान्य एवं व्यावहारिक अर्थ किन्हीं दो वस्तुओं या व्यक्तियों का कतिपय सामान्य गुणों के आधार पर परीक्षण करना ही माना जाता है। साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन का मतलब एक ही भाषा साहित्य या विषय को दो साहित्यकारों की, दो विधाओं की, दो विचारधाराओं की तुलना करना या भिन्न भाषाओं साहित्यों के सजात्य-वैजात्य पक्षों का अध्ययन करके वैविद्यता तथा अनेकता में एकता का समर्थन करना है। तभी विश्वसाहित्य एवं सार्वभौमिक संकल्पना की स्थापना कर सकती है।

इन सबका मतलब यह है कि दो या दो से अधिक वस्तु या विषय के सकारात्मक एवं नकारात्मक तथा समान एवं असमान तत्वों को ज्ञात करने केलिए उन्हें एक साथ तुलना करके विवेचन-विश्लेषण करने की प्रक्रिया तुलनात्मक अध्ययन है।

1.4.2. तुलनात्मक साहित्य: परिभाषाएँ

जब दो भाषा साहित्य एक दूसरे साहित्य के संपर्क में आते हैं तब ऐतिहासिक, भौगोलिक दूरियाँ भी कम पड़ जाती हैं एवं इतिहास के विभिन्न युगों में एकमात्र भाषा एवं साहित्यिक परंपरा से अधिक बातों में अभिव्यक्त विशालतर दृष्टिकोण की आवश्यकता अनुभव होती थी। यों भाषाओं को एक दूसरे के संपर्क में देखने-समझने की ज़रूरत ही वर्तमान तुलनात्मक साहित्य की नींव है।'[9]

प्रारंभ में क्रोचे का कहना था कि- "तुलनात्मक साहित्य स्वतंत्र विद्यानुशासन नहीं बन सकता। क्योंकि किसी भी साहित्यिक अध्ययन केलिए तुलना एक आवश्यक अंग है।"[10] लेकिन प्रस्तुत परिभाषा गलत स्थापित हुआ है क्योंकि आज तुलनात्मक साहित्याध्ययन स्वतंत्र विद्याशाखा के रूप प्रचलित है। प्रस्तुत विधा पर शोध भी बहुत अधिक किए जा रहे हैं।

तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में अमेरीकी आचार्य हेनरी रेमकि का कथन इसप्रकार है-"तुलनात्मक साहित्य किसी एक देश

की हदबन्दी या सीमा के पार जाकर साहित्य का किए जानेवाले अध्ययन है। साथ ही यह एक ओर ज्ञान और विकास के, दूसरे क्षेत्रों एवं साहित्य के बीच किया जानेवाला अध्ययन है। ये दूसरे क्षेत्र चित्रकला, स्थापत्य कला, वास्तुकला, संगीत कला, दर्शन, इतिहास एवं समाजविज्ञान के क्षेत्र हैं। जिसमें राजनीतिविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान और धर्म सभी समाविष्ट है। संक्षेप में यह एक साहित्य का दूसरे साहित्य के साथ किए जानेवाले अध्ययन है, साथ ही मानवीय अभिव्यक्तियों के अन्यान्य क्षेत्रों के साथ साहित्य का किए जानेवाले तुलमात्मक अध्ययन है।"[11]

मैक्स मुलर तुलमात्मक साहित्य पर परिभाषा इस प्रकार दिया है- "हर उच्चशिक्षा या उच्च ज्ञान तुलना द्वारा प्राप्त है एवं तुलना पर आधारित है।"[12] (All higher knowledge is gained by comparison and depend on comparison).

डॉ. सीतालक्ष्मी के शब्दों में- "एक साहित्य के अन्य साहित्य से प्रभाव का अध्याय करते हुए तुलनात्मक साहित्य वास्तव मे, उस साहित्य की समय, संस्कृति का प्रभाव अन्य

साहित्यों पर स्पष्ट करता है। सम्यतः यह प्रक्रिया एक साहित्य के विद्वान को अपनी संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों की प्रशंसा करने को बाध्य करती है। इस प्रकार वह इस विभक्त संसार में जन-समुदायों को एक दूसरे के निकट लाने और मानव-जाति की भिन्नताओं की अपेक्षा एकता पर बल देने की चेष्टा करता है।"[13]

फ्रांक. जे. वार्रणेक के निरीक्षण में "अंग्रेज़ी क्षेत्रों मे मौजूद तुलनात्मक अध्ययन, अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच, जेर्मन, इटालियन, स्पानिष, रूसी और अवश्य ही लेटिन, पुरातन ग्रीक एवं बाइबिल के हिब् डिग्री के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों के साहित्य को नाममात्र मान्यता देते हैं।"[14] (The comparatis canon, as it exists in the English speaking area, gives scant recognition to any literature outside of English, French, German, Italian, Spanish, Russian and of course, Latin, Ancient Greek and the Hebrew of Bible.)

रेने वेलक -'तुलनात्मक साहित्य, साहित्य के समग्र रूप का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करता है। जिसके मूल में यह भावना निहित रहती है कि साहित्यिक सृजन और आस्वादन की

चेतना जातीय एवं राजनीतिक, भौगोलिक सीमाओं से मुक्त एकरस और अखंड होती है।'

पासेनट- 'साहित्यिक विकास के सामान्य सिद्धान्तों का अध्ययन निश्चय ही तुलनात्मक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है।'

क्लाईव स्कॉट- 'तुलनात्मक साहित्य' में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्यों अथवा उसके संक्षिप्त घटकों की साहित्यक तुलना होती है और यही उसका आधार तत्व है।

टी.एस. इलियट- 'तुलना और विश्लेषण आलोचक के प्रमुख औजार हैं। मूल्यांकन परक आलोचना की श्रेष्ठता को मापने केलिए तुलनात्मक पद्धति का लाभ उठाती है।'

वसंत बापट- 'एक की अपेक्षा अधिक साहित्य की तुलना की सहायता से किया गया अध्ययन।'

डॉ.नगेन्द्र- 'तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अन्तः साहित्यिक अध्ययन है जो अनेक भाषाओं का आधार मानकर

चलता है और जिसका उद्देश्य होता है, अनेकता में एकता का संधान।'

इन्द्रनाथ चौधुरी- "तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।"[15]

ब्रिस्टल के प्रोफेसर हेनरी गिफ़ई साहित्यिक अध्ययन के ढंग के रूप में तुलनात्मक साहित्य की हिमायत करते हुए अपने एक प्रकाशन में कहा है। "तुलनात्मक साहित्य अपने आप में एक अनुशासन होने का नाटक नहीं कर सकता। मैं पसंद करूँगा यह कहना कि वह रुचि का एक क्षेत्र है, एक ऐसा क्षेत्र, जिसकी घोषणा गोइथे ने 'वेल्ड़ लिटरेचर' (विश्व-साहित्य) की भविष्यवाणी के साथ की थी, जिसमें सभी राष्ट्र अपनी वाणी पाएँगे।"[16]

हिंदी में तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में कृष्ण बिहारी मिश्र के शब्द पढ़िए- "सही अर्थों में हिंदी में तुलनात्मक समालोचना का आरंभ द्विवेदी युग में हुआ। सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने हिंदी के प्रथम समालोचनात्मक ग्रंथ 'हिंदी नवरत्न' में इसका प्रयोग किया।

फिर हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधू विनोद' में उन्होंने कवियों का वर्गीकरण और उनके काव्य की तुलनात्मक श्रेष्ठता के अनुसार उनका श्रेणी-विभाजन किया।"[17]

तुलनात्मक साहित्य के विशेषज्ञ स्वप्न मज़ूमदार के पुस्तक 'कंपेरेटिव लिटरेचर, इंडियन डायमेंशन्स्' (Comparative Literature, Indian Dimensions) भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक प्रतिनिधि रचना है। इसमें इन्होंने तुलनात्मक साहित्य पर कहा है कि- "किसी तीसरी भाषा में अनूदित या सुनी-सुनाई पश्चिमी साहित्यिक कृतियों एवं विचारधाराओं से भारतीय भाषाओं के साहित्य की तुलना करने के बजाय भारतीय भाषाओं के ही साहित्यों की परस्पर तुलना से एक भारतीय तुलनात्मक साहित्य का उदय हमारेलिए वाँछनीय हैं।"[18]

भाषाओं का पारिवारिक स्वरूप जानने में तुलनात्मक साहित्यिक पद्धति का उपयोग हुआ है। ब्लूमफील्ड ने लिखा है- "तुलनात्मक पद्धति-प्राग् ऐतिहासिक भाषाओं के पुनर्वचन की केवल एकमात्र पद्धति पूर्णतया एक रूप भाषाण समुदायों और अचानक सुस्पष्ट विदरणों के स्थलों पर यथार्थता से काम करती

है। चूँकि ये पूर्वमान्यताएँ कभी भी पूरी नहीं होती है, तुलनात्मक पद्धति कभी भी यह दावा नहीं कर सकती कि वह पूर्व ऐतिहासिक प्रक्रिया को चित्रित कर रही है। जहाँ पुनर्रचन कार्य सरलता से चल निकलता है जैसे 'धित्ता' केलिए प्रयुक्त भारत यूरोपीय शब्द में अथवा कम विस्तृत पर्यवेक्षणों में, पूर्वज भाषा में विद्यमान भाषण रूपों के संघटनात्मक लक्षणों के संबन्ध में निश्चित रहते हैं। जहाँ कहीं, चाहे काल को लेकर, चाहे स्थान में निश्चित रहते हैं। जहाँ कहीं, चाहे काल को लेकर, चाहे स्थान को लेकर, विस्तृत पैमाने पर तुलना होती है, यह ऐसे अनेकानेक रूप एवं आंशिक समानताओं को प्रकट करती है जो वंशवृक्ष आरेख से संगत नहीं है। तुलनात्मक पद्धति केवल इस पूर्वकल्पना पर काम कर सकती है कि पूर्वज भाषा एक रूप है। तुलनात्मक पद्धति के यह पहले से मानकर चलती है कि उत्तरोत्तर शाखाओं में सुस्पष्ट विदरण हुआ है किंतु असंगत आंशिक समानताएँ यह दिखलाती है कि परवर्ती परिवर्तन पूर्ववत्ती परिवर्तनों द्वारा छोडे समभाषांश रेखाओं के आगे भी फैले हैं, पड़ोसी भाषाओं में सादृश्य

मध्यवर्ती बोलियों के विलोपन से उत्पन्न हुआ है एवं किसी विशिष्ट दृष्टि से विभेदीकृत भाषाएँ एक से परिवर्तन कर सकती है।"[19]

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाएँ पढ़ने पर, तुलनात्मक साहित्य अनेक भाषाओं के साहित्यों को आधार बनाकर किए गए अंतः साहित्यिक अध्ययन ही है जिससे विश्वमानव एवं विश्व साहित्य संकल्पनाएँ दृढ़ हो जावे साथ ही साथ अनेकता में एकता की एहसास लोगों को दिया जा सकें। इसके द्वारा साहित्य के साथ-साथ ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का भी विकास साध्य है।

1.4.3. तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप

पहले ही उल्लेखित किया है कि एक औपचारिक अध्ययन के रूप में तुलनात्मक साहित्याध्ययन को मान्यता दी है। इसका मतलब तो यह है कि साहित्य मीमांसा, साहित्येतिहास एवं साहित्य समीक्षा नामक तीन पाठ्यपद्धतियों के साथ आज तुलनात्मक साहित्याध्ययन का भी अपनी दर्जा है। क्योंकि भाषा,

देश एवं संस्कृति का वैविध्य यहाँ के साहित्य को भी वैविद्य बना देता है। लेकिन इस वैविध्य में भी एकता लाने का काम बाकी तीन पाठ्य पद्धतियों से अधिक तुलनात्मक साहित्याध्ययन की प्रवृत्ति है। पर यह संकल्पना सबसे पहले 'कंपेरेटिव लिटरेचर' नाम से यूरोप की ज़मीन पर जन्म लिया था। जार्ज के वुड़बेरी के अनुसार "तुलनात्मक पद्धति हर साहित्य की माता है।"[20]

फ्रांसीसी-जर्मन एवं अमरिकी संप्रदायों के अनुसार तुलनात्मक साहित्याध्ययन, साहित्यिक समस्याओं का अध्ययन जो एक से अधिक साहित्यों को इस्तेमाल करके रूपायित करता है। विविध साहित्यों की दृष्टि, उद्देश्य एवं कार्यान्वयों को तुलना करना ही इस कार्यक्रम का लक्ष्य है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से कहे तो तुलना एक साहित्य के अनुशासन, अध्ययन आदि की सीमा को पार करके अंतर साहित्यिक परिप्रेक्ष्य से जुड़ी हुई है। सिर्फ अंतर्साहित्यक नहीं, अंतर भाषिक परिप्रेक्ष्य में जुड़ा हुआ है। क्योंकि तुलना दो साहित्यों, दो साहित्यकारों, दो देशों, दो संस्कृतियों को जानने का

साधन है जिससे इन सबकी विशिष्टता उजागर हो सके। कुछ आलोचकों का काम है कि तुलनात्मक साहित्य को एक स्वतंत्र तथा अस्वाभाविक विशिष्टता युक्त शिक्षानुशासन के रूप प्रदान करना।

केवल विशिष्टताओं को अहमियत देकर किए गए तुलनात्मक कार्यों का महत्व कम दिखाई पड़ता है। साहित्य संबन्धी किसी भी बात को तुलनात्मक अध्ययन केलिए चुन सकती है। क्योंकि तुलनात्मक अध्ययन केलिए कोई निर्धारित विषय नहीं हैं। खुद की कोई शैली भी नहीं है। सामान्य साहित्यिक सिद्धान्तों को पार करके यह अध्ययन मानव मन के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न इतिहासों के ज़रिए खोलने का प्रयत्न है। हर देश के साहित्यों में निहित वैशिष्ट्य को बाहर लाना तुलनात्मक साहित्याध्ययन का धर्म है। साहित्य तो मानव मन का प्रतिनिधित्व करते हैं तो हर देशीय साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन करने पर मानव मन के विविध पहलुओं को उजागर कर सकते हैं। अपने खूबियो एवं कमियों की पहचान

दूसरों के साथ मिलाकर देखने पर ही होता है। उसी प्रकार हमारे साहित्यिक विशेषताओं एवं कमियों को दूसरे साहित्य के साथ तुलना करने पर ही समझ सकते हैं। साहित्य के सीमित मनोभावनाओं से मुक्त करके अपने को विस्तृत बनाना तुलनात्मक साहित्याध्ययन द्‌वारा ही हो सकता है। हर देशीय साहित्य को विश्वभर तक फैलाने का काम यह अध्ययन अपनाते हैं। जनता, विश्व तथा संस्कृति पर जनता के मन में एकता बोध जगाना इस तुलनात्मक साहित्याध्ययन का लक्ष्य माना जाता है। डॉ. के.एम. जार्ज के अनुसार- "किसी संस्था, आन्दोलन, साहित्य रूप, विषय, प्रेरणा या कुछ ग्रंथों का सामूहिक अध्ययन तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन का मकसद होगा। लेकिन दो या दो से अधिक भाषाओं को संपर्क में लाने से ही वह अध्ययन तुलनात्मक हो सकते हैं।"[21]

तुलनात्मक शोध में दो पक्षों के बीच तुलना की जाती है। संसार की किन्हीं भी दो वस्तुओं में जहाँ विषमता होती है, वहाँ समता के कुछ-न-कुछ बिंदु अवश्य उपस्थित होते हैं। भाषा और

साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन तो दो क्षेत्रों के पारस्परिक क्षमता (Equality) विषमता (Difference) की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं।

तुलनात्मक अध्ययन में समानता मुख्यतः तीन कारणों से होता है; एक तो सांस्कृतिक एकता के कारण; जैसे कि, भारत की संस्कृति एक है पर यहाँ भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती है फिर भी इन भाषाओं द्वारा प्रस्तुत अभिव्यक्तियाँ एक जैसे ही प्रतीत होती हैं। मानवीय प्रकृति की एकता के कारण भी विविध क्षेत्रों में समानताएँ आ सकती हैं। समानता दो क्षेत्रों के पारस्परिक प्रभाव के कारण भी हो सकते हैं। निराला पर इलियट के प्रभाव के कारण, पंत पर वर्डसवर्थ के प्रभाव के कारण दोनों के प्रवृत्तियों में समानताएँ देखने को मिलती हैं।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन मात्र साम्य-वैषम्य करानेवाला अध्ययन नहीं है बल्कि साहित्यिक-सांस्कृतिक विशेषताओं को एक पृष्ठभूमि प्रदान करनेवाली सामूहिक एकता दृढ़ करनेवाली, विविधता में एकता लाकर सार्वभौमिक साहित्य संकल्पना को

उजागर करनेवाली, सर्वोत्कृष्ट रचनाओं को देश-काल-वातावरण से परे, दूसरों तक पहूँचानेवाली अध्ययन है, जिससे एक अनेकान्तवादी, बहुआयामी एवं अंतर विषयी संकल्पना विकसित हो।

पाण्डेय शशिभूषण सीतांशु के मत में- "तुलनात्मक साहित्य कोई स्थिर संकल्पना नहीं, बल्कि गत्यात्मक संकल्पना रही है। यह एक सुनिर्धारिक संकल्पना नहीं, बल्कि एक विकासात्मक संकल्पना है। यह संकीर्णता से व्यापकता की ओर बढ़नेवाली संकल्पना है। इस विकास-क्रम को इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और निकाय वैभिन्न्य के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।"[22] इसका मतलब तो यह होगा कि तुलनात्मक साहित्य की गति हर दिन बदलते जा रहे हैं परिवर्तन तो प्रकृति नियम है। बदलती मानसिकता में साहित्य के रूप भी बदलेंगे तो तदनुसार तुलनात्मक साहित्याध्ययन भी अपने रूप बदलकर आगे चलते हैं।

मानवतावाद एवं विश्व-मानव रूपी भ्रातृ भावना को उजागर करना तुलनात्मक साहित्याध्ययन की विशेषता भी है एवं प्रवृत्ति

भी। इस प्रकार देखा जाए तो तुलनात्मक साहित्याध्ययन हमारे सीमित ज्ञान भण्डार को विस्तृत करती है और अपने मन के मानव मूल्यों को उजागर भी करता है।

आचार्य एन.ई. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत चार तत्व होते हैं। (1) प्रभाव (Influence), (2) अनुकरण (Imitation), (3) स्वीकार (Reception), (4) अतिजीवन (Survival)। इसमें 'प्रभाव' से उनका तात्पर्य एक संपूर्ण साहित्य द्वारा दूसरे संपूर्ण साहित्य को स्वीकार करके उनमें से कुछ बातों एवं प्रवृत्तियों को अपनाना। जब हम अपने को दूसरों से छोटा महसूस करने लगते हैं तब दूसरों से कुछ स्वीकार करने की बात उठती हैं। हिंदी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव उस बात का उदाहरण है। दूसरे साहित्यों का अनुकरण भी प्रभाव के साथ आज मौजूद है। पाश्चात्य साहित्य के 'स्वच्छन्दतावाद' का अनुकरण ही हिंदी में छायावाद के नाम पर से किया गया है। संस्कृत साहित्य की बहुत सारी बातों को सारे विश्व ने स्वीकार करके उसके सर्वश्रेष्ठ बना दिया है। स्वीकृति तो अधिकांश,

महत्वपूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ट रचनाओं को मिलती है, चाहे वह किसी भी भाषा की हो। तदुपरांत अतिजीवन की बात आती है। माईकल मधुसूदन दत्त एवं बंकिमचन्द्र चैटेर्जी अतिजीवन केलिए अंग्रेज़ी साहित्य की अतिप्रशंसा करते थे। क्योंकि उपनिवेशवाद के अंत होने पर भी अंग्रेज़ी की विरासत को हमने बनाया रखा है इसप्रकार तुलनात्मक साहित्य के इन चारों तत्वों को अपनाकर सार्वभौमिक संकल्पना की स्थापना करने की कोशिश कर रहे हैं।

1.4.4. तुलनात्मक अध्ययन के प्रकार

इस अध्ययन के कई प्रकार हो सकते हैं- जैसे दो क्षेत्रों के साहित्यों के बीच, या एक ही रचनाकार के दो रचनाओं के बीच आदि। उदाहरण केलिए पाश्चात्य एवं भारतीय भाषाओं के साहित्य के बीच; भारत में ही किसी दो प्रादेशिक भाषा साहित्यों के बीच, हिंदी में ही दो रचनाकारों के प्रवृत्तियों की तुलना जैसे प्रसाद और पंत की तुलना आदि कर सकते हैं।

अध्ययन चाहे किसी तरह के क्यों न हो, विषय और स्वरूप अनुरूप विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। अनेक आचार्यों के अपने-

अपने मत भी होंगे। नगेन्द्र की राय में विषय के अनुसार तुलनात्मक साहित्य अध्ययन प्रमुख चार प्रकार के होते हैं -

क. प्रभावाध्ययन

ख. परंपराओं एवं समान प्रवृत्तियों का अध्ययन

ग. समानांतर तत्व एवं विशेषताओं का अध्ययन

घ. ललित कलाओं तथा आधारित शास्त्रों से संबन्धित अध्ययन।

उनके अनुसार तुलनात्मक साहित्य का एक प्रमुख अंग है प्राचीन तथा समान धर्मी भाषाओं के प्रभाव का आकलन। निकटवर्ती एवं समान धर्मी भाषाओं के साथ अंतः संबन्ध तथा आदान-प्रदान का यह अध्ययन साहित्य के प्रामाणिक ज्ञान केलिए आवश्यक माना जाता है। दोनों साहित्यों में उपलब्ध समान परंपराओं एवं समान प्रवृत्तियों के विश्लेषण करने से विश्वसाहित्य की अवधारणा के विकास में सार्थकता एवं मदद मिलेगी। समानांतर तत्वों के अध्ययन में समान एवं विषम दोनों प्रकार के

प्रवृत्तियों का अध्ययन है। इस अध्ययन द्वारा साहित्य की सही पहचान की उचित परिप्रेक्ष्य का निर्माण होता है। ललित कलाओं तथा आधार शास्त्रों के साथ संबन्ध की तुलनात्मक अध्ययन इसलिए करता है कि साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने केलिए इन सबका अध्ययन ज़रूरी है।

डॉ. सीतालक्ष्मी जी के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन मुख्यतः दो प्रकार का है एक तो-एक ही भाषाई साहित्य के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन। दूसरा है- एक भाषा साहित्य का अन्य भाषा साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन। एक ही साहित्य के अंतर्गत के तुलनात्मक अध्ययन पर भी विषय सीमा के अनुसार कुछ भेद है –

क. दो लेखकों की तुलना: उदाहरण केलिए हिंदी साहित्य में कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा बिहारी और देव का तुलनात्मक अध्ययन हो चुका है। मतलब एक ही भाषा साहित्य के लेखकों का, उनकी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं के अनुसार अध्ययन विश्लेषण करना।

ख. दो प्रवृत्तियों की तुलना : उदाहरण रूप से समझाए तो भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन रचनाओं एवं साहित्यकारों की प्रवृत्तियों की तुलना।

ग. दो युगों की तुलना : जैसे हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन रचनाओं या रचनाकारों या विशेषताओं आदि की तुलना।

घ. एक ही लेखक की दो या अधिक रचनाओं की तुलना : हिंदी साहित्य जगत् के प्रमुख उपन्यासकार अज्ञेय जी के उपन्यासों का एक दूसरे के साथ अध्ययन विश्लेषण करके समानताओं एवं विषमताओं को उल्लेख करने का काम।

एक भाषा साहित्य का अन्य भाषा साहित्य के साथ जो तुलना हो, यह तुलना साहित्यिक, सांस्कृतिक समानताओं एवं विषमताओं को ढूँढने केलिए कर सकती है साथ ही साथ दोनों पर एक दूसरे के प्रभाव की भी जानकारी प्रदान करते हैं। जैसे कि मलयालम और हिंदी साहित्य की तुलनात्मक अध्ययन हो जाने पर उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के सांस्कृतिक विरासत को एक

सूत्र में बाँधकर एकता की भावना लोगों के मन में दृढ़ बन सकती हैं। दोनों साहित्यों के वैशिष्ट्य का विवेचन विश्लेषण करके सादृश्य निरूपण भी कर सकते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन का प्रकार विषय, प्रणाली, उद्देश्य या क्षेत्र के अनुसार भी निश्चित किया जा सकता है।

डॉ. आदेश्वर राऊ ने विषय के अनुसार तीन प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन को प्रधानता देता है-

- एक ही साहित्य के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन,
- एक साहित्य का अन्य साहित्य पर पडे प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन,
- दो या दो से अधिक भाषा साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन क्षेत्र के आधार पर तुलनात्मक साहित्याध्ययन दो प्रकार के माने जाते हैं-

- अंतरंग अध्ययन : इससे तात्पर्य एक ही भाषा या साहित्य की सीमाओं में बन्धित तुलनात्मक अध्ययन।
- बहिरंग अध्ययन : एक भाषा या साहित्य की सीमाओं से बाहर जाकर दूसरी भाषा एवं साहित्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन, बहिरंग अध्ययन के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार के तुलनात्मक साहित्याध्ययन में विभिन्न राष्ट्रों के साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता का परस्पर प्रभाव एवं परिवर्तित रूप, मानव जाति की भिन्नताओं को छोड़कर एकता पर बल आदि करने की चेष्ट विद्‌यमान है।

तुलनात्मक साहित्य के विश्वकोश प्रथम खंड के सिद्‌धांत एवं अनुप्रयोग की भूमिका में प्रो. गोपिनाथन ने तुलनात्मक साहित्याध्ययन को क्षेत्र विस्तार के आधार पर कई प्रकार से विभाजित किया है -

क. साहित्य के विभिन्न विधागत तुलनात्मक अध्ययन

ख. साहित्य के विधा-इतर तुलनात्मक अध्ययन

ग. साहित्य और कला के अंतर-विषयी तुलनात्मक अध्ययन,

घ. अन्य ज्ञानानुशासन परक तुलनात्मक अध्ययन (लोकतत्व, संस्कृति, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि पर)

ङ. भाषा और भाषा वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन

च. अनुवाद कार्यों के तुलनात्मक अध्ययन

छ. पत्रकारिता या संचार माध्यम क्षेत्र के तुलनात्मक अध्ययन।

प्रो. गोपिनाथन द्वारा संपादित यह विश्वकोश हिंदी में तुलनात्मक साहित्य का पहला मानक और स्तरीय ज्ञानकोश है, जो कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार के विभाजनों को पढ़ने से महसूस हुआ कि तुलनात्मक अध्ययन तीन प्रकार के हो सकते हैं, एक तो राष्ट्ररूपी सीमाओं से मुक्त होकर दोनों राष्ट्रों के बीच वहाँ के साहित्य पर

किए जानेवाले तुलनात्मक अध्ययन। दूसरा, एक ही राष्ट्र के प्रादेशिक भाषा साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन। भारत जैसे बहुभाषी देश में ऐसे अध्ययन को बहुत अधिक महत्व प्रदान करते हैं। तीसरा एक ही भाषा साहित्य के प्रवृत्तियों, रचनाओं, लेखकों आदि की तुलना। एक बहुचर्चित विधा या शैक्षिक संकल्पना होने के कारण एक क्रमिक अध्ययन करना बहुत ज़रूरी है।

1.4.5. तुलना सिद्धांत

डब्ल्यू. जे.टी मीत्शेल ने तुलना के तीन सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं-

क. संवेदन बोधीय (Perceptual)

ख. विवेचकीय तुलना (Discursive)

ग. प्रागलिबद्ध तुलना (Disciplinary)

यह तीनों क्रमशः दिखाना, कहना एवं विश्वास रखने पर आधारित है।

संवेदन बोधीय तुलना- इसमेंे वस्तु के साम्य और भेद परखने का अर्थ इंद्रियगम्य संवेदना होती है। किसी भी ऐंद्रिय संवेदना बोध से तुलना हो सकती है।

विवेचकीय तुलना- इसे ही तुलनात्मक विधानों को शब्द रूप देनेवाली प्रक्रिया कहा जाता है। यहाँ पर भी संवेदनात्मक तुलना की भांति साम्य-वैषम्य भेदों का साहचर्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

प्रणालीबद्ध तुलना- तुलना कब क्रमबद्ध और पद्धति बद्ध होती है, यह दर्शाने का काम प्रणाली बद्ध तुलना करती हैं।

संबोध तुलना एवं विवेचकीय तुलना में असंतुलन का खतरा होता है। उनमें जो त्रुटियाँ रह जाती है उन्हें प्रणाली बद्ध तुलना में सही किया जाता है।

1.4.6. तुलनात्मक साहित्याध्ययन क्षेत्र-निरूपण

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के दो क्षेत्रों को निर्धारित किया है-

क. साहित्य संदर्भ

ख. भाषा संदर्भ।

साहित्य संदर्भ में साहित्य के विविध आयामों को लेकर किए गए तुलनात्मक अध्ययन आते हैं। इसका भी दो भेद है-

- स्थूल आयाम
- सूक्ष्म आयाम।

स्थूल आयाम में साहित्य के स्थूलगत तत्वों का अध्ययन विश्लेषण होता है। बाहरी विशेषताओं की जाँज होती हैं। यह अध्ययन भी विविध प्रकार के हो सकते हैं -

एक ही साहित्य के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन।

एक ही कवि के कृतित्व के दो या दो से अधिक रूपों का तुलनात्मक अध्ययन।

एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव।

एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव चार प्रकार के हो सकते हैं-एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर प्रभाव, एक साहित्यिक व्यक्तित्व का अन्य साहित्य पर प्रभाव, एक साहित्यिक प्रवृत्ति का दूसरे साहित्य की प्रवृत्ति पर प्रभाव, दो या दो से अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

सूक्ष्म आयाम- मानव मूल्यों का उद्घाटन तथा ज्ञान राशि का प्रतिफलन, प्रकाशन ही तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। इसे साहित्यिक तुलनात्मक अध्ययन का सूक्ष्म आयाम कह सकते हैं। यह आयाम भी तीन प्रकार के होते हैं।

विचारधाराओं की तुलना- हर साहित्य की विचारधाराएँ कुछ न कुछ प्रकार अलग होते हैं। इस अलगाव में एकता एवं समता स्थापित करने की प्रवृत्ति तुलनात्मक अध्ययन का है।

चिंतन प्रणालियों की तुलना-हर देश अपने-अपने चिंतन प्रणालियों से संपन्न है। उस चिंतन प्रणालियों का आदान-प्रदान तुलनात्मक साहित्याध्यायन द्वारा संभव हे।

उच्चतर मानवमूल्यों की तुलना- कुछ राष्ट्रों की ख्याति वहाँ के सर्वोत्कृष्ट एवं उच्चतर रचनाओं, रचनाकारों व्यक्तित्वों के ज़रिए विकास होते हैं। यह इसलिए है कि प्रस्तुत कृतियाँ या व्यक्तित्व वहाँ के सर्वश्रेष्ठ मानवमूल्यों को अपनी ओर प्रतिफलित कराने की कोशिश करती है। इन कृतियों में अभिव्यक्त उच्चतर मानव मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी अपेक्षित है।

भाषा संदर्भ में भाषा के विविध आयाम एवं विभिन्न भाषाओं की तुलना की जाती है। यह मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं -

क. एक मूल बनाम एकाधिक मूल की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

ख. विभाषा बनाम भाषा का तुलनात्मक अध्ययन।

ग. भाषा का व्यापक बनाम गहन तुलनात्मक अध्ययन।

घ. भाषा का एक ज्ञानानुशासनात्मक बनाम अन्तर विषयी तुलनात्मक अध्ययन।

क. इसके अंतर्गत दो प्रकार का अध्ययन आता है-

(i) एक मूल की दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

(ii) दो विभिन्न मूलों की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

ख. विभाषा बनाम भाषा के तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत भी दो प्रकार के अध्ययन आता है-

(i) विभाषा एवं विभाषा का तुलनात्मक अध्ययन,

(ii) विभाषा एवं मानक भाषा का तुलनात्मक अध्ययन।

ग. भाषा की व्यापकता एवं गहनता का तुलनात्मक अध्ययन भी दो प्रकार के होते हैं-

(i) दो या दो से अधिक भाषाओं के व्यापक तुलनात्मक अध्ययन।

(ii) दो या दो से अधिक भाषाओं का गहन तुलनात्मक अध्ययन।

घ. एक ज्ञानानुशासनात्मक बनाम अन्तर ज्ञानानुशासनात्मक तुलना में एक ज्ञानानुशासनात्मक आयाम के विकासात्मक एवं संरचनात्मक तुलनात्मक अध्ययन एवं अन्तर ज्ञानानुशा-सनात्मक तुलनात्मक अध्ययन भी होते चले आते हैं। अन्तर विषयी भी चार दृष्टियों से होता है, वे हैं भाषा भौगोलिक दृष्टि से, मनोवैज्ञानिक भाषा दृष्टि से, समाज भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से और शैली वैज्ञानिक दृष्टि से।

इस तुलनात्मक साहित्याध्ययन हर दृष्टि से विस्तृत एवं विशाल अध्ययन विधा है। इसके क्षेत्र विस्तार भी अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

1.5. 'तुलनात्मक साहित्य' शब्द का प्रचलन एवं विकासक्रम

अंग्रेज़ी में तुलनात्मक शब्द का प्रयोग लगभग 1598 ईं से होता आया है। 1598 ई में मॉरेस के पुस्तक के एक भाग का

नामकरण इस प्रकार उन्होंने किया था-‘The Comparative discourse of our English poets with the Greek, Latin and Italian poets.’ 1800 ई में क्यूवी नामक वैज्ञानिक ‘अनाटमिक कंपारी’ नामक ग्रंथ का प्रकाशन किया। इस ग्रंथ को आधार बनाकर फ्रेंच भाषा में ‘लिटरेषे कंपेरी’ (Literature Comparee) नामक संज्ञा का विकास हुआ। 1829 ई में सोर्बोन विश्वविद्यालय में वील्माङ् नामक आचार्य ‘अन्य साहित्यों पर फ्रेंच भाषा साहित्य का प्रभाव’ विषय पर जो भाषण दिया था वह भाषण तुलनात्मक साहित्य के इतिहास की पहली घटना थी। इसलिए एबल फ्रांसुआ वीलमाङ्ग को तुलनात्मक साहित्य के पिता माने जाते हैं। एक शैक्षिक विधा के रूप में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का विकास 1897 ई में फ्रांस के एक विश्वविद्यालय में हुआ था। वहाँ से लेकर जर्मनी एवं इटली की ओर इस विधा, विकास प्राप्त हुआ।

जहाँ तक अंग्रेज़ी में इस शब्द का प्रयोग की मामला है, आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व सन् 1598 में फ्रांसीस मेयर्रस ने तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की दृष्टि में रखकर ही

अपना पुस्तक लिखा था। बाद में साहित्य के व्यवस्थित अध्ययन और अध्यापन केलिए संकलित सामग्रियों का प्रकाशन 1816 में 'Course de Literature Comparee' नाम से किया गया है। बाद में सन् 1848 में मैथ्यू अरनाल्ड ने पहली बार अपनी पत्रिका में 'कंपेरेटिव लिटरेचर' पद का प्रयोग किया था और 14 नवम्बर 1857 को ऑक्सफोर्ड में 'साहित्य में आधुनिक तत्व' (On the Modern Element of Literature) विषय पर अपने उद्घाटन सम्बोधन में कहा था "साहित्य में हर कहीं संबन्ध सूत्र है, हर कहीं भाष्य एवं व्याख्या है। कोई भी अकेली घटना, कोई भी अकेला साहित्य बिना दूसरी घटनाओं और दूसरे साहित्यों के संदर्भ के अपनी समीचीनता में बोधगम्य नहीं हो सकता है।"[23]

तुलनात्मक अध्ययन को एक स्वतंत्र शिक्षा शाखा के रूप में स्थापित करने का श्रेय एम.एम पॉसनेट को जाता है जिन्होंने 1886 में 'कंपेरेटिव लिटरेचर' नाम से अपनी एक पुस्तक का प्रकाशन कराया था। 1900 ई में लियोंग विश्वविद्यालय के आचार्य बलदाड् स्पर्रे तुलनात्मक साहित्याध्ययन करनेवाले

शोधार्थियों का एक विश्वव्यापी सम्मेलन का आयोजन किया। प्रस्तुत सम्मेलन का मुख्याध्यक्ष गेस्टॉन पॉरिस (Gaston Paris) का भाषण कुछ इस प्रकार है- तुलनात्मक साहित्य एक नई विज्ञान माना जाता है, जो मानव मन के इतिहास के अध्ययन की ओर आकृष्ट है। तुलनात्मक साहित्य सामान्य साहित्यिक क्षेत्र से अलग है।

काव्यशास्त्री लोग चाहे वह यूनानी हो या भारतीय, वे साहित्य सम्बन्धित विधाओं का अध्ययन विश्लेषण करके तुलना का भी उपयोग करते रहते थे। उदाहरण केलिए यूनानी विद्वान अरस्तू, दिमेत्रियस, लोंजाईंस आदि विभिन्न विधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया करता था। आगे चलकर होरेस ने यूनानी एवं लातीनी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। बाद में दांते ने इन दोनों भाषाओं के साथ इतालवी भाषा के भी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर प्रस्तुत प्रयत्न क्षेत्र को आगे बढ़ाया। इस प्रकार के अध्ययन विकसित होकर बहुआयामी रूप प्राप्त किया, जब जर्मनी के श्लेगल तथा गॉइते,

फ्रांस के बुबलो व सैंत व्यव और इंग्लैंट के डॉ. जॉनसन व ड्राइड़न आदि ने बहुभाषाई तुलनात्मक अध्ययन विश्लेषण प्रस्तुत किया। उसी प्रकार भारतीय काव्य शास्त्रियों में विभिन्न विद्वानों ने ग्रंथों उसके टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया हैं। उदाहरण केलिए आनन्दवर्द्धन एवं कुन्तक आदि ने संस्कृत और प्राकृत के कवियों एवं नाटककारों के सूक्ष्म गहन तुलनात्मक अध्ययन किया है।

'नरेश गुहा' अपने लेख तुलनात्मक साहित्य पूर्ववृत्त में 1910 ई. के प्रसिद्ध अमरीकी तुलनाशास्त्री एवं सिनसिनाहर विश्वविद्यालय के तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर पद पर नियुक्त एफ. डब्ल्यू-चंडलर के तुलनात्मक साहित्य पर किए भाषण को प्रागैतिहासिक रूप में देखते हुए कहते हैं- "तुलनात्मक साहित्य की समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में चेंडलर के उक्त भाषण का वैशिष्ट्य यह है कि उसमें यह प्रसंग सामान्य साहित्यानुशीलन विषयक कुछ प्रमुख प्रश्नों में समाहित कर दिया गया है और इसी अर्थ में उसे इस आधुनिक ज्ञान शास्त्र के

प्रागैतिहासिक के समरूप माना जा सकता है। उस प्रागैतिहास का आधारभूत सिद्धांत भाषण के आरंभ में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-तुलनात्मक विधि उतनी ही प्राचीन है, जितना प्राचीन स्वतः चिंतन हैं। अपने मत की पुष्टि उन्होंने ग्रीक, लैटिन और मध्ययुगीन समीक्षा के उपयुक्त अवतरण प्रस्तुत करके की है।"[24]

अगला उल्लेखनीय लेख हेनरी एच. रेमाक के 'कंपारिटिव लिटरेचर इट्स् डेफिनीशन एण्ड फङ्सन' जो 'कंपेरेटिव लिटरेचर एण्ड पेर्सपेक्टीव' नामक पुस्तक में प्रकाशित है। बाद में रेनेवेलक द्वारा 1965 में 'अमेरिकन कंपेरेटिव लिटरेचर एसोसिएशन' पर किए भाषण का रूप 1965 में ही कंपेरेटिव लिटरेचर के 17 वीं खण्ड में प्रकाशित हुआ। 1968 में रेनेवेलक का एक अन्य लेख स्टीफन एण्ड रीचर्ड द्वारा संपादित 'कंपेरेटिस्ट्स एण्ड वर्क स्टडीस इन कंपेरेटिव लिटरेचर' में छपा था जिसका नाम है 'नेम एणड नेच्चुर ऑफ कंपेरेटिव लिटरेचर' (Name and Nature of

Comparative Literature)। इन सारे के सारे प्रवृत्तियाँ तुलनात्मक साहित्याध्ययन को आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

धीरे-धीरे शिक्षा क्षेत्र में भी इस विधा कदम रखा। 1890 में हार्विड में सन् 1897 में ल्योन में चेयर्स स्थापित हुआ। इसके साथ फ्रांस और इटली में भी तुलनात्मक साहित्य विकसित हुआ। तब तक रूस, तुलनात्मक साहित्य का एक स्वतंत्र स्कूल बन चुका है।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के विकास क्रम को भारतीय संदर्भ में देखे तो 20 शताब्दी में ही तुलनात्मक साहित्य अपना स्थान अपनाया है। 1906 ई. में रवीन्द्र नाथ टैगोर को, तुलनात्मक साहित्याध्ययन पर विशेष भाषण देने केलिए यादवपुर विश्वविद्यालय की जनक संस्था 'राष्ट्रीय परिषद्' आमंत्रित किया पर उन्होंने प्रस्तुत विषय को विश्वसाहित्य नाम से संबोधित किया था। इसका मतलब रहा कि तुलनात्मक साहित्याध्ययन एवं विश्वसाहित्य एक दूसरे के पूरक है।

उसीप्रकार 1949 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में काबुल विश्वविद्यालय के प्रो. रैल्फ हेन्केल द्वारा किए गए भाषण, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय अपने निबन्ध पर किए तुलनात्मक विवेचन, बुद्धदेव बसु द्वारा यादवपुर में इस विधा केलिए नए विभाग की स्थापना, मैसूर विश्वविद्यालय में एम.ए अंग्रेज़ी के पाठ्यक्रम में इसके अध्ययन की योजना, भारत के अन्य विश्वविद्यालयों में भी यू.जी.सी द्वारा प्रचार प्रसार होकर इस विधा को अपनाना आदि तुलनात्मक साहित्याध्ययन की विशेष उल्लेखनीय बात है।

इस विषय से सम्बन्धित कई पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई है- सर्वप्रथम 'रिव्यू द लितरेचर कंपेरी' (Review the Literature Comparee), जो पेरिस विश्वविद्यालय से फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित हुई थी। फिर वार्षिकी जो केन्द्रीय हिंदी निदेशालय की ओर से प्रकाशित पत्रिका। कोचिन विश्वविद्यालय के 'अनुशीलन पत्रिका' का 'तुलनात्मक साहित्य' विशेषांक भी प्रारंभिक प्रयास के रूप में साराहनीय है। आज बहुत सारी पत्रिकाएँ इस विधा को

आगे बढ़ाते रहते हैं। ऑनलाइन पत्रिकाओं की भी भूमिका इस कार्य की ओर सराहनीय है। केरल साहित्य अकादमी का प्रवर्तन भी तुलनात्मक साहित्याध्ययन के विकास को आगे बढ़ाते हैं।

1.6. तुलनात्मक साहित्याध्ययन की प्रक्रिया

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के पाठ्यक्रम की मूर्त रूपरेखा तैयार करना है तो अध्येता को दो समस्याओं का सामना करना पड़ता है; एक विषयवस्तु से सम्बन्धित दूसरा माध्यम भाषा से सम्बन्धित। जहाँ तक विषयवस्तु से सम्बन्धित बातें आती है तो, विषय हमेशा अधिकांश साहित्य से सम्बन्धित होता है। साहित्य के समकालीन सामाजिक सांस्कृतिक विशेषताओं की जानकारी होना आवश्यक है। तुलनात्मक अध्ययन दो भाषा साहित्यों में होते तो दोनों की हर पहलुओं पर अध्येता को समान अधिकार होना चाहिए। क्यों उन दोनों में निहित एकता का निरूपण करना एवं सादृश्य निरूपण करना इस अध्ययन का उद्देश्य है।

नगेन्द्र के अनुसार साहित्य साहित्य शास्त्र का अनुशीलन साहित्य की प्रत्येक विद्या के विवेचन केलिए-विशेष रूप से

तुलनात्मक विवेचन कोलिए मौलिक पीठिका का निर्माण करता है। क्योंकि साहित्य-विधा के मूलसिद्धांतों से अवगत हुए बिना तुलनात्मक साहित्याध्ययन अपनी लक्ष्य प्राप्ति तक नहीं पहूँच सकते। भारतीय साहित्य के सदंर्भ में जहाँ प्राचीन साहित्य, संस्कृत काव्य शास्त्र से एवं आधुनिक साहित्य, शास्त्र साहित्यशास्त्र से प्रभावित है, दोनों साहित्यशास्त्रों का सम्यक् अध्ययन करके दोनों के संयोग से उत्पन्न तुलनात्मक साहित्य शास्त्र का निर्धारण अध्येता का दायित्व मानते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन केलिए माध्यम-भाषाओं का मौलिक ज्ञान होना ज़रूरी है। क्योंकि यह अध्ययन दो या दो से अधिक भाषा साहित्यों के आधार पर ही अधिकांश होते रहते हैं। तो अध्येताओं के सामने दो विकल्प रह जाएंगे कि, एक भाषा पर मौलिक अधिकार प्राप्त करने केलिए आवश्यक समय, दूसरा है अपनी परिधि के दो भाषाओं को लेकर अध्ययन करना। क्योंकि सिर्फ भाषाओं के गहरी अध्ययन एवं विवेचन करने पर अध्येता की साहित्यिक संवेदना एवं साहित्य की जानकारी कम हो जाने

की संभावना है। यह तो हमारी जानकारी की बात है कि भाषावैज्ञानिकों की साहित्यिक विमर्श कम दिखाई पड़ते हैं।

दो भाषा साहित्य पर अध्ययन करते वक्त अध्येता को किसी एक भाषा साहित्य का अनुवाद, जिन भाषा में वह अध्ययन विश्लेषण करता है उस भाषा पर करना पड़ता है। उदाहरण कोलिए हिंदी एवं अंग्रेज़ी साहित्य के किसी विधा में अध्ययन चालू है तो इन में किस भाषा को शोधार्थी अपनाती है उस भाषा पर दूसरी भाषा साहित्य का अध्ययन, अध्ययन भाषा को माध्यम बनाकर दोनों साहित्य का विवेचन विश्लेषण करना चाहिए।

अध्ययन सीमा को सीमित करके परस्पर सम्बन्धित प्रासंगिक भाषाओं को चयन करें तो तुलनात्मक अध्ययन और उपयोगी बन जाते हैं। तुलनात्मक साहित्य सादृश्य निरूपण केलिए अधिकांश प्रयुक्त होते है। लेकिन समानताओं के साथ-साथ विषमताऐं एवं व्यतिरेकी भावनाओं का भी अध्ययन करना है। क्योंकि इस अध्ययन विधा की सूत्र ही यह है कि-अनेकता में एकता स्थापित करना (Unity in Diversity)।

नगेन्द्र जी ने तुलना का आधार प्रभाव के विवेचन-विश्लेषण को मानता था। मतलब साहित्यों पर एक दूसरे का प्रभाव कितना पड़ता है, क्यों पड़ता है इन सबका अध्ययन। भारतीय साहित्य के संदर्भ में यह आदान-प्रदान बहुत पहले से ही देखने को मिलता है। संस्कृत साहित्य का प्रभाव भारत के अधिकांश भाषा साहित्य में देखने को मिलते हैं। हर साहित्य का विकास इसप्रकार के प्रभावों के आधार पर ही होता रहता है। हिंदी साहित्य में छायावाद, उत्तराधुनिक संकल्पना आदि का विकास पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण ही हुआ है।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन में सापेक्षिक मूल्यांकन के साथ-साथ विवेचन विश्लेषण भी होना अवश्य माने जाते हैं। क्योंकि सिर्फ सापेक्षिक मूल्यांकन से काम पूरा नहीं होता हैं उसके उचित विवेचन विश्लेषण भी करने से ही पूर्णता महसूस होगा। तुलनात्मक साहित्याध्ययन में निष्पक्षता एवं तटस्थता की ज़रूरत है। वैयक्तिक रागद्वेषों से मुक्त होकर निष्पक्ष भाव में अध्येता को अपना अध्ययन करना पडेगा। "अनुसंधान एवं तुलनात्मक

अनुसंधान में कुछ पार्थक्य दिखाई पड़ता है अनुसंधान प्रक्रिया में तुलना का भी इस्तेमाल कर सकता है और तुलनात्मक अध्ययन में भी गंभीर परीक्षण और निष्कर्ष आदि साहित्यिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रक्रियाओं से लाभ उठाया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन अनुसंधान की अपेक्षा आलेखन के ही निकड पड़ता है।”[25] क्योंकि विश्व के विभिन्न देशों के देशवासियों में निहित विविधथ या वैविध्यों के गहन अध्ययन करके उसमें समान भावना की तलाश एवं विश्व मानवीय संवेदना पाना तुलनात्मक साहित्याध्ययन का परम लक्ष्य है। रेनेवलक ने ठीक कहा कि “सच्ची साहित्यिक विद्वता स्थूल तथ्यों पर नहीं अपितु, मूल्यों तथा गुणों पर निर्भर करती हैं।”[26]

नगेन्द्रजी के अनुसार व्यापक दृष्टि से तुलनात्मक साहित्य के दो मूल उद्देश्य है-बृहतर परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर साहित्य के मर्म की सही पहचान और कला के सार्वभौम प्रतिमानों के आधार पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा। मतलब ने यह है कि विविध साहित्य में एक सार्वभौमिक संकल्पना की स्थापना

तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य है। प्रस्तुत उद्देश्य प्राप्ति केलिए एक क्रमिक अध्ययन की ज़रूरत भी दिखाई पड़ता है।

1.7. तुलनात्मक साहित्य की ऐतिहासिक भूमिका

तुलनात्मक साहित्याध्ययन, एक औपचारिक स्वतंत्र अध्ययन शाखा के रूप में आज सर्वत्र विकसित हुआ है। बहुत साल पहले से ही विद्वानों की यह राय है कि साहित्य किसी भी देश या भाषा का हो इसका स्वतंत्र अध्ययन प्रणाली ज्ञान भण्डार के विकास केलिए अपर्याप्त है। क्योंकि हर साहित्य एक दूसरे के संपर्क के साथ ही आने बढ़ते हैं, जब दो या दो से आर्थिक भाषाएँ साहित्य संपर्क में आते हैं तब सांस्कृतिक और भाषाई विशालता जनता के समझ में आता है एवं उनके मन में एकता की भावना भी जाग उठती हैं। इन भाषाओं तथा साहित्य को एक दूसरे के संपर्क में देखने-समझने की ज़रूरत ही वर्तमान तुलनात्मक साहित्याध्ययन की नींव है।

1.7.1. भौगोलिक संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य का इतिहास

साहित्य के अध्ययन के प्रति यूरोप में जो नया दृष्टिकोण विकसित हुआ आगे चलकर उसके परिवर्धित रूप जो है, तुलनात्मक साहित्य नाम से अभिहित किया गया। पहले इसका कार्य इटली एवं फ्रांस में हुआ था। बाद में 1602 ई॰ में विलियम फॉलबेइक (William Fubeike) ने 'ए कंपेरेटिव डिस्कॉर्स ऑफ द लॉस' (A Comparative Discourse of the laws) नामक पुस्तक प्रकाशित करके तुलनात्मक अध्ययन को महत्व दिया। 1765 में रेनेवेलक को 'ए कंपेरेटिव अनाटमी ऑफ ब्रूट अनिमल्स' (A Comparative Anatomy of Brute Animals) नामक जॉन ग्रिकरी (John Gregore) का पुस्तक प्राप्त हुआ। जॉन ग्रिगरी ने अगले साल ही अपनी दूसरी किताब 'ए कंपेरेटिव व्यू ऑफ द स्टेट एण्ड फेकाल्टीस ऑफ मैन वित दीस ऑफ द अनिमल वर्ल्ड' (A Comparative View of the State and Faculties of man with those of the Animal World) का भी प्रकाशन किया। दोनों पुस्तकों में तुलनात्मक अध्ययन कार्य ही हुआ हैं।

बिषप रॉबार्ट लॉत (Bishop Robert Loath) के पवित्र एवं गंभीरतापूर्ण काव्य के लेटिन व्याख्यान में जिस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन को आदर्श रूप से सूत्रित किया, इसे एक शैक्षिक विधा के रूप में विकसित करने केलिए वह व्याख्यान काफी था। उनका कथन इस प्रकार है कि- "हर चीज़ों को उनकी आँखों से देखना अनिवार्य है, उनके विचारों के अनुसार हर चीज़ों को आकलन करना है, हिब् डिग्री लोग जिसप्रकार एक 'हिब्रू' पढ़ते होंगे, उसी प्रकार उसे पढ़ने का प्रयास भी करता है।"[26] (We must see all things with their eyes, estimate all things by their opinions, We must endeavour as much as possible to read Hebrew as the Hebrews would have read it).

तुलनात्मक साहित्याध्ययन अगर दो या दो से अधिक साहित्यिक संस्कृतियों का विचार विवेचन है तो सबसे प्राचीन ईजिप्तियन ग्रंथ 'बुक्स ऑफ द डेड' (Books of the Dead) इस विषय से परिचित होंगे। हिब्रुओं के 'तालमदिल' में तुलनात्मक साहित्याध्ययन की सूचनाएँ देखने को मिलती हैं। क्योंकि बहुत सारी रचनाओं को इकट्ठा करके ही इसका विन्यास होता है जैसे

बाबिलोणियन तालमुद, जेरूसलेम तालमुद आदि। लेकिन सच में इसका अर्थ 'जुदाईज़म' (Judaism) (The Monothestic religion of the jews, having its ethical, ceremonial and legal foundation) लतीन एवं ग्रीक साहित्यकारों की तुलना करके ग्रीक जनता को आदर्श व्यक्तियों के रूप में सिसरो ने अपने ग्रंथ 'आरस पायटिक्स' में प्रस्तुत किया है। फ्रांसिस मेयार्स 1598 ई॑ में 'ए कंपेरेटिव डिस्कार्स ऑफ अवर इंग्लिश, पॉयट्स वित द ग्रीक, लेटिन एण्ड इटालियन पायट्स्' (A Comparative Discourse of our English Poets with the Greek, Latin and Italian Poets) में भी तुलनात्मक कार्य किया है। वैज्ञानिक विधा के रूप में इसका बदलाव फ्रेंच आलोचक शर्ल पेरों की रचना 'Paralleles Des Ancient et Modernes en ce qui regards les arts et les sciences' के कारण हुआ था। बाद में 'क्यूवी' अनाटमिक कंपारी नामक ग्रंथ की रचना की साथ ही अन्य अनेक आचार्यों की भी रचनाएँ इस विधा में प्रमुख स्थान मिलनेवाली हैं।

विभिन्न राष्ट्रीय साहित्य को तटस्थ एवं निष्पक्ष रूप से तुलना करने का श्रेय जर्मन आलोचक योहन एलियास ब्लेगल को मिला है जिन्होंने 'Vergleichung Shakesphere Und Adreas Gryphius' ग्रंथ में षेक्सपियर एवं आंड्रियस ग्रिफियस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। जॉसफ टेक्स्त 'Les etudes de Litterature Comparee 2 petranger et an France' ग्रंथ लिखकर खुद को इस विधा के पिता मान लिया है। जर्मन लेखन मदाम दस्ताल की रचनाओं में भी तुलनात्मक साहित्याध्ययन के लिए आवश्यक प्रेरणा हमें मिलती है। यूरोपीय साहित्य के परस्पर संबन्धों की ओर इशारा करके ऑगस्ट विल्हमान स्लेगल ने 'Comparison, entre la phedre de Racine et celle d Euripides' (1807) लिखा था जिसपर अतिगहन एवं सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन निहित है। अंग्रेज़ी काव्य मार्गदर्शक पुस्तक के प्रथम खंड में तोमस वार्टन (Thomas Warton) ने 'ए कंपेरेटिव सर्वे ऑफ द पॉयट्री ऑफ द अदर नेशन्स्' (A Comparative Survey of the Poetry of the Other Nations) लेख में इस विधा के महत्व के बारे

में उद्घोषित किया था। (Vol.1. London 1774) उसी प्रकार जॉर्ज एल्लिस (George Ellis) ने अपनी रचना स्पेसिमेन्स ऑफ एर्ली इंग्लिश पॉयट्स (1790) में तुलनात्मक आलोचना की थी।

1800 वीं शती में 'चार्लस डिब्डिन' (Charles Dibetin) 'ए कंप्लीट हिस्टरी ऑफ द इंग्लिश स्टेज, इन्ट्रोडूसड् बाई ए कंपेरेटिव एण्ड कॉम्प्रिहेंसिव रिव्यू ऑफ द एशियाटिक, द पोरच्युगीस, द जेर्मन, द ग्रशियन, द स्पानिश द इटालियन, द फ्रेंच एण्ड अतर थीयेटर' (A complete History of the English stage, introduced by a comparative and comprehensive Review of the Asiatic, the Grecian, the Roman, the Spanish, the Italian, the Portughese, the German, the French and Other Theatre) के पाँच खण्ड प्रकाशित करके इस विधा को एक नये आन्दोलन के रूप में आगे चलाया।

गैथे के 'विश्वसाहित्य' संकल्पना के प्रभाव से ही हेगल अपना अध्ययन किया था। विदेश साहित्य के साथ परिचित होने केलिए गैथे ने 'आर्ट एण्ड एण्डिक्यूटी' (Art & Anteguity) नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन भी जर्मनी में किया था। इन सबके

कठिन प्रयत्न के बावजूद भी तुलनात्मक साहित्याध्ययन का एक स्वतंत्र शैक्षिक रूप 19 वीं शताब्दी में ही चालू हुआ। 1816 में फ्रान्सोईस नॉयल एवं गोसालियन द प्लॉस ने 'कोर्स द लितरेत्युर कंपारी', 'Leconds Francaises de Litterature de Morale' नाम से फ्रेंच भाषाओं को मिलाकर एक संग्रह लिखा था उसपर 'तुलनात्मक साहित्य' (Zeitschrift for Vergleichende Litterature) शब्द का प्रयोग भी किया था। लेकिन तुलनात्मक साहित्याध्ययन की जड़ के रूप में उस भाषण को माना जाता है जो एबल फ्राँड्स्वा विल्मांग एवं उनके परवर्ती पीढ़ी के जाड. जाक.अंबएर आदि सोर्बन में फ्रेंच साहित्य के बारे में किए थे।

इंग्लेंट में सबसे पहले 'तुलनात्मक साहित्य' शब्द का प्रयोग 1848 को मैथ्यू अरनाल्ड ने किया था। जर्मन में 1854 में मॉरिट स्कॉरियन ने तुलनात्मक साहित्येतिहास का प्रारंभ किया। सुप्रसिद्ध प्राध्यापक विल हेल्म शेयर ने 'तुलनात्मक काव्य मीमांसा' नामक आशाय का विकास किया। अपने 'कंपेरेटिव

लिटरेचर' ग्रंथ में एच. एम. पासनेट ने (1886) तुलनात्मक साहित्य को शैक्षिक अध्ययन विधा के रूप में स्वीकृत किया।

जर्मन की दो पत्रिकाएँ भी तुलनाम्मक साहित्याध्ययन के विकास यात्रा में सुप्रधान है वे हैं- हूगो मेलट्सल द लॉनिट्स द्वारा आयोजित 'तुलनात्मक साहित्य' पत्रिका (Zeitchrift fur Verglei chende Litterturegeschrichte) जो 1877 से 1888 तक की कालावधि में प्रचलित थी। बाद में इसका नाम परिवर्तित होकर 'आक्टा कंपारिरिटियोणिस लितरारम् यूनिर्वेसारम्' बन गयी। दूसरी पत्रिका है- बेर्लिन से मॉक्स काँह 1887 से 1910 तक प्रकाशित-तुलनात्मक साहित्येतिहास पत्रिका (Zeitchrift fur Verglei chende Litterturegeschrichte)।

1.7.2. ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता

कुछ विद्वानों का मत है कि 'तुलनात्मक साहित्य' इतिहास की अपेक्षा करता है। दो कारण भी बताते है कि-तुलनात्मक साहित्य में साहित्य की ऐतिहासिक परंपरा के अध्ययन केलिए कोई स्थान नहीं है, तथा यह ऐतिहासिक परिवेश के प्रति सर्वथा

उदासीन रहता है। नगेन्द्र की राय में "इसमें संदेह नहीं कि तुलनात्मक अध्ययन में ऐतिहासिक परंपरा और परिवेश पर उतना बल नहीं रहता जितना की ऐतिहासिक पद्धति में रहता है। किंतु इतिहास के परित्याग का आरोप किसी प्रकार उचित नहीं है। साहित्य के विकास और ऐतिहासिक सापेक्षता का अध्ययन तुलनात्मक साहित्य के आवश्यक उपादान है, और पूर्ववर्ती साहित्य की परंपरा में परवर्ती साहित्य का अध्ययन तुलनात्मक पद्धति केलिए अनिवार्य है।"[27]

इसका मतलब यह है कि ऐतिहासिक परिवेश का विवेचन किए बिना तुलनात्मक साहित्याध्ययन की सफलता नामुमकिन है। उदाहरण केलिए आँड़ाल और मीराबाई के गीतों का अध्ययन तुलनात्मक ढंग से करने केलिए उनके देशकाल की परिस्थितियों का पर्यवेक्षण तो करना ही होगा। अतः तुलनात्मक पद्धति एवं ऐतिहासिक पद्धति का लक्ष्य अलग-अलग होकर भी प्रथम की सफलता दूसरे पर निर्भर होती है।

तुलनात्मकसाहित्य की ऐतिहासिक भूमिका पर विचार विश्लेषण करते समय उसे लेकर प्रचलित कुछ संकल्पनाओं की भी जानकारी ज़रूरी है -

- फ्रांसीसी संकल्पना था पेरिस-जर्मन स्कूल।
- अमरिकी स्कूल।
- रूसी स्कूल।
- कनेडियन संकल्पना आदि।

1.7.3. फ्रांसीसी संकल्पना

इस संकल्पना के जन्मदाताओं ने तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दिया है कि- "अंतरराष्ट्रीय और अंतरभाषीय साहित्यों की स्चनाओं को परस्पर बाँधनेवाली संकल्पना जो साहित्याध्ययन की एक विधा के रूप में स्वीकृत है।" (Comparative literature as a branch of literary study which traces the mutual relationship between two or more internationally and linglilstrally defferent literture or texts-Online). जीन मारिए कॉरे, मारिएस फ्रांन्कोइस गोर्य्याडस ने 'ल

लितरेच्चुर कंपारी' में तुलनात्मक साहित्य को साहित्येतिहास की एक विधा मानकर जिसकी और अंतर्राष्ट्री आध्यात्मिक धार्मिक संबन्धों को स्पष्ट करने के कार्य को कहते हैं।

फ्रांसीसी या पेरिस जर्मन स्कूल के प्रमुख संकल्पनाएँ निम्न लिखित हैं-

- प्रभावीय संकल्पना (The concept of influence)- इनमें साहित्यिक एवं गैर साहित्यिक प्रभाव; प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव दोनों को महत्व देते है।
- स्वीकृति संकल्पना- संस्कृति, सामाजिक, भाषाई स्वीकृति का अध्ययन।
- अनुकरण एवं आशय ग्रहण संकल्पना।
- सकारात्मक एवं कर्म प्रधान प्रक्रिया।

पेरिस-जर्मन स्कूल के अंतर्गत फ्रांसीसी विद्वान तथ्यात्मक संपर्कों एवं दस्तावेजों के विश्लेषण पर ज़्यादा बल देते हैं। 19 वीं शती के प्रथम चरण में गोयथे ने इस विचार का प्रारंभ किया। उनकी पहली पत्रिका 'रिव्यू द लितरेत्युर कंपेरी' फ्रांसीसी भाषा में

पारिस विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने से ही फ्रांस में तुलनात्मक साहित्याध्यन की और सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। 'क्वेस्ट च-क्वे त लितरेचर कंपेरी' में फ्रेंच धारा के विषय के संबन्ध में ब्रूनल, पियोयूस तथा रूसो ने कहा है कि फ्रेंच शब्द सिर्फ एक राष्ट्र का बोधक नहीं भाषा विषय को दिए हुए परिवेश भी है। उन तीनों के मतानुसार "फ्रेंच धारा शब्द ने एक सूक्ष्म और त्रुटिहीन इतिहास परंपरा की और ठोस अनुसंधान की बुनियाद स्थापित की। इसमें अच्छी भाषिक दक्षता से पोषित अतिशय राष्ट्रीय विद्वता का दायित्व और सभ्यता से जुड़े और बारंबार तिरस्कृत होने पर भी संबन्ध तनया की बड़ी संख्या की पुनर्गठन शामिल है।"[28] इन तीनों ने भाषाओं के प्रभाव पर दृष्टि डाली है।

रेमाक के 'द फ्रेंच डिसाइर फॉर सेक्यूरिट ईस डिट्रिमेंडल टू द अन्होल्टिंग्स ऑफ इन्नोवेटिव टॉपिक्स एण्ड मेतार्डस्' में तथ्यानुपरक संपर्कों के आधार पर तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का अर्थ है-उसकी परिधि से साहित्यालोचन को हटाकर

मात्र विषय संग्रह को तुलनात्मक साहित्य मान लिया है। फ्रांसीसी तुलनाशास्त्रियों ने तथ्यात्मक संपर्कों एवं दस्तावेज़ों के विश्लेषण पर ज़्यादा बल देती रही। आधुनिक आलोचक पीशवाज तथा रूसो ने तुलनात्मक साहित्याध्ययन को साम्य वैषम्य के विवेचन विश्लेषण तथा प्रभाव के सूत्रों का संश्लेषणात्मक दृष्टि स्वीकार की है। सोरबेन विश्वविद्‌यालय के फ्रांसीसी तुलनावादी विद्‌वान रेने एतिएम्बल ने अपने परिवर्तित दृष्टिकोण के द्‌वारा इस प्रक्रिया को ओर सरल बनाते हुए, साम्य-वैषम्य की दृष्टि से ही इस विधा को काफ़ी महत्वपूर्ण एवं सफल स्थापित किया। इन्होंने प्रभाव के सूत्रों को जानने केलिए संश्लेषणात्मक दृष्टि अपनायी है। फ्रेंच तुलनात्मक साहित्यकार 'पॉल वैन टीघम' ने 'ल-लिटरेचर कंपेरी' (La-Literature Comparee) में कई प्रकार से प्रभाव के कार्य-कारण सहित स्पष्ट अध्ययन का स्वरूप समझाया था।

फ्रेंच तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में प्रतिबिंबों का अध्ययन किया जाता है इसे प्रतिबिंब विज्ञान नाम से पुकारते भी है। इसका मतलब यह है कि साहित्य में प्रयुक्त हर क्षेत्रों के बिंबों

का अध्ययन। अधिकांश यह सांस्कृतिक विषय है। विश्वनाथ अय्यर ने डानियल हेनरी पेजी के उद्धरण लेकर कहा कि- “तुलनात्मक साहित्य से गृहीत विचारों का इतिहास मानसिकता व बौद्धिकता के अध्ययन से पूर्ण किया जाता है।”[29] फ्रांसीसी संकल्पना तुलनावादियों के विचारानुसार सिर्फ ‘वैज्ञानिक’ है। इन्द्रनाथ चौधरी ने भी इसपर गहन अध्ययन करके कहा कि “फ्रांसीसी संकल्पना के आलोचकों के मूल प्रतिपाद्य के अनुसार तुलनात्मक साहित्य काव्यशास्त्रीय सौन्दर्यात्मक कलापरक अनुशासन नहीं वरन् एक ऐतिहासिक अनुशासन है।”[30] इसका सम्बन्ध ठोस यथार्थ से हैं तथा साथ ही विभिन्न राष्ट्रों के कृतिकारों, कृतियों, पाठकों तथा दर्शकों के तथ्यात्मक एवं सचेतन संपर्कों से भी हैं।

इस प्रकार विश्लेषण करने पर यह जानकारी मिली कि फ्रेंच विचारधारा सीमित एवं नियमित होती है। यह तो बारिकियों एवं कठिन प्रविधियों पर ज़ोर देती हैं। लेकिन गहराई से साहित्यिक

तत्वों को देखने-परखने की कोशिश करती है और अंतर्राष्ट्रीय साहित्य प्रभावों पर ज़ोर देती है।

1.7.4. अमरिकी संकल्पना

यह संकल्पना 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित हई है। हेनरी रेमार्क के मतानुसार तुलनात्मक साहित्य को एक व्यवस्था या अनुशासन नहीं मानना चाहिए लेकिन दो विषयों को संबन्धित करनेवाली एक कड़ी के रूप में विद्‍यमान है 1890 में चार्लस मिल्स ने अमरीकी तुलनात्मक साहित्य संकल्पना के लिए एक रूपरेखा खींचकर विषय को साहित्यिक भाषाशास्त्र से नतिंङ मोर ओर लेस (Nothing More or Less) के रूप में कल्पित किया। इन लोगों ने ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ साहित्य के संबन्ध का अध्ययन एवं साहित्येतिहास के सामान्य संरचना में तुलनात्मक अध्ययन को महत्व दिया है। साहित्यालोचन को एक महत्वपूर्ण अंक के रूप में स्वीकार किया है। अमरीकी संकल्पना में कई तुलनाशास्त्रियों ने सादृश्यता, मोटिफ, शैलीपक्ष, विधा, साहित्यिक आन्दोलन तथा परंपरा का- तुलनात्मक अध्ययन के द्‍वारा

साहित्यिक कृतियों के कलात्मक स्वरूप को उद्घाटित किया है। “तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत ज्ञान के क्षेत्रों तथा प्रतीतियों की छानबीन, साहित्यिक तथ्यों को प्रकाश में लाने केलिए महत्वपूर्ण है।”[31] यह सच में एक अंतर्विधात्मक विषय है। सन् 1886 में एच.एम पासनेट ने अपने ‘कंपेरेटिव लिटरेचर’ ग्रंथ में तुलना करना मनीषी और समीक्षक के परंपरागत कार्य के रूप में स्वीकार किया है। इसके एक विपक्ष भी है। 1903 में इटली के कला समीक्षक एवं अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे ने तुलनात्मक साहित्य को एक विषय तक नहीं माना। इसे मात्र साहित्येतिहास के एक अध्ययन विषय मात्र मानते हैं।

1910 में अमरीकी तुलना शास्त्री एफ.डब्ल्यू. चैड़लेर ने तुलनात्मक साहित्य पर जो भाषण दिया, उसको 1966 में प्रकाशित ‘इयर बुक ऑफ कंपेरेटिव एण्ड जनरल लिटरेचर’ के 15 वें खंड में प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार- “तुलनात्मक विधि उतनी ही प्राचीन है, जितना प्राचीन स्वतः चिंतन है।”[32]

अमरीकी तुलनावाद का स्वरूप निर्धारण रेनेवेलक, हेरी लेबिन, डेविड़ मेलोन जैसे तुलनाशास्त्रियों द्वारा किया गया है। साहित्यिक इतिहास की परिधि में रहकर भी तुलनात्मक साहित्य का अमरीकी संप्रदाय साहित्य समीक्षा को इसके वैध अंग के रूप में अपनाते हैं। उन लोगों ने साहित्य की समानताओं मूल अभिप्रायों, शैलीगत तत्वों, काव्य विधाओं, आंदोलनों एवं परंपराओं को तुलनात्मक अन्वेषण पर बल देकर इस प्रक्रिया में साहित्यिक रचना के कलात्मक वैशिष्ट्य का उद्घाटन किया है। 1908 में स्पिनगार्न ने 'इंग्लिश क्रिटिकल एसेस ऑफ दि सेवन्टीन्थ सेंच्चुरी' तथा रेनेवेलक ने 'मार्डन क्रिटिसिज्म' आदि ग्रंथों में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। ग्रीक एवं हिब् डिग्री साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर राबर्ट लोथ का परम महत्वपूर्ण ग्रंथ 'यूरोपियन लिटरेचर एण्ड द लेटिन मिडिल एसेस' ने शिक्षा जगत में विवाद सहित लोकप्रियता स्थापित की। गयथे (Gayde) सन् 1949 में तुलनात्मक साहित्य को एक प्रकार के 'विश्वधर्म' घोषित किया।

तुलनात्मक साहित्य के अराष्ट्रीकरण (Depoliticization) अमरीकी तुलनात्मक संकल्पना को फ्रांसीसी संकल्पना से अलग करती हैं। बॉसनेरट इसके बारे में सोच रहे हैं कि “अंतरविषयक एवं सार्वभौमिक संकल्पनाओं की शुरूआत से ही तुलनात्मक साहित्य की अमरीकी संकल्पना आधारित होती है।”[33]

अमरीकी संकल्पना तुलनात्मक अध्ययन के दो क्षेत्रों को उद्घाटित करती है।

क. समांतरवादी सिद्धांत।

ख. अंतर-रचनात्मक सिद्धांत।

क. समांतरवादी सिद्धांत, अमरीकी एवं पूर्वी यूरोप के तुलनाशास्त्रियों द्वारा अंगीकृत है। जिसका आशय है- साहित्यिक विकासों के सामंजस्य की प्रवृत्ति।

ख. अंतर-रचनात्मक सिद्धांत (Phenomena), एक रचना से अन्य रचना का अध्ययन है। एम.इनानी (Enany) के अनुसार यह दो या दो से अधिक पाठों के अंतर-सम्बन्ध है जिससे एक नए पाठ के उत्पादन भी संभव है।

इन्द्रनाथ चौधुरी अमरीकी स्कूल के बारे में कहते वक्त प्रकट किया कि 'हमारी चिंतनधारा के पीछे एक परंपरा रहती है जिसे हम सामाजिक संदर्भ कहते हैं जो एक सामाजिक परिवेश से सम्बन्धित संस्कृति का एक हिस्सा होता है इसलिए साहित्य को उसके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक आधार तथा एतिहासिक संदर्भ में काटना असंभव है इसीलिए साहित्य का अध्ययन अनायास ही अंतरविषयी बन जाता है।'

अमरीकी संकल्पना यह भी मानती है कि साहित्य की तुलना ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ भी संभव है तथा वह तुलनात्मक साहित्य का विषय भी है। मगर ज्ञान के इन क्षेत्रों के सुसंगत होने पर एवं साहित्य से भिन्न एक स्वतंत्र तथा निश्चित अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित रहने पर ही इस प्रकार का अध्ययन संभव है।

इस प्रकार तुलनात्मक साहित्याध्ययन के क्षेत्र में दो नए क्षेत्रों का विकास करके अमरीकी तुलनाशास्त्रियों ने इस विधा को एक स्वतंत्र शैक्षिक विधा के रूप में उद्घोषित किया। लेकिन

शिक्षा के क्षेत्र तंत्र में तुलनात्मक साहित्य का विकास अमेरीका के विश्व विद्यालयों में बीसवीं सदी में हुआ। सर्वप्रथम कारनेल विश्वविद्यालय में, बाद में अमरीका के हार्वर्ड, येल, प्रिंसटन, शिकागो, वॉस्टन और पिलाडल्फिया के विश्वविद्यालयों में इस विधा की ओर लोकप्रियता उठी।

1.7.5. रूसी स्कूल

तुलनात्मक साहित्याध्यन के क्षेत्र में रूसी संकल्पनाएँ कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। डॉ. मनोरमा शर्मा के अनुसार- "रूसी स्कूल के विद्वानों केलिए यह तुलनात्मक साहित्य एक सार्विक साहित्यिक संवृत्ति (Phenomena) का सार संग्रह है जो विभिन्न देशों के जनसमूह के सामाजिक जीवन के ऐतिहासिक विकास पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में, इनके अनुसार तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत साहित्यिक विधाओं, आंदोलनों, प्रकारों था सार्विक साहित्यिक संवृत्ति का अध्ययन होता है।"[34] रूसी स्कूल की समाजशास्त्रीय संस्कृतिपरक यथार्थवादी दृष्टि के अनुसर विभिन्न सामाजिक जीवन में घटित होनेवाले समस्तरीय ऐतिहासिक परिवर्तनों एवं

उनके आपसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अन्योन्य-प्रक्रिया के आश्रय से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन किया जाता है।

विद्वान झुरमनस्की के अनुसार समाज साहित्य का आवश्यक अद्यःस्तर है तो साहित्य संयोग से उसकी अधिरचना है। इसलिए कला और साहित्य का विकास सामाजिक ऐतिहासिक विकास के समानांतर होता है। यूनान के अधिकांश प्रसिद्ध आलोचक अरस्तू, लॉजाइन्स, दिमेत्रियाद आदि आरंभ से ही कवियों एवं नाटककारों का तुलनात्मक अध्ययन करते रहते थे। होरेस ने भी अपने ग्रंथ 'आर्स पॉयटिका' में तुलनात्मक अध्ययन किया पर लोकप्रिय नहीं हो सका। पर 19 वीं सदी से ही यह अध्ययन शुरू हुआ। इन सभी विद्वानों ने तुलनात्मक साहित्य की व्याख्या करते हुए इस विधा की विशेषताओं को उजागर करने की खूब कोशिश भी की।

जेम्स जे वाई लिऊ ने 'एलिजाबेथ एण्ड यॉन' (1955) पुस्तक में एलिजाबेथीय युग के नाटकों के साथ सदूर-पूर्व के नाटकों का सादृश्यमूलक विवेचन किया। झुरमुंस्की ने फ्रांसीसी तथा रूसी

लोक गाथाओं के नायकों का सादृश्यमूलक अध्ययन किया है। इन सब में कार्य कारण सम्बन्ध के बिना 'ऐतिहासिक प्रारूपी सादृश्यता' देखने को मिलेंगी। साहित्यिक रचनाओं के इन समान प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन करने से ही साहित्यिक जगत का विकास संभव हो जाता हैं। तथा सामाजिक पूर्वप्रवृत्तियों के साधारण नियमों का अनुधावन एवं प्रत्येक साहित्य के इतिहास एवं जातीय चारित्रिक विशेषताओं की जानकारी भी मिलती हैं।

इस प्रकार रूसी संकल्पना में सादृश्यमूलक अध्ययन की अपेक्षा अधिक है। सादृश्यमूलक अध्ययन में प्रभाव एवं मूल्यांकन परक अध्ययन भी आता है। इसलिए रूसी, फ्रांसीसी एवं अमरीकी संकल्पनाएं एक दूसरे का पूरक मानना उचित होता है।

1.7.6. कानेडियन संकल्पना

केनाड़ा में दो भाषा साहित्य मौजूद हैं अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच। दो भाषी देश होने के कारण तुलनात्मक साहित्याध्ययन भी अपेक्षित होता है। नार्त्रोप फ्राँई (Northro Frye), विक्टर ग्रहाम (Victor Graham), डी.जे. जॉन्स, रोनाल्ड सतर्लेंट (Ronald Sutherland)

आदि तुलनाशास्त्रियों ने कानाड़ा में इस विधा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। एक संगठन का भी आयोजन किया, जिसका नाम है ‘कानाडियन कंपेरेटिव लिटरेचर एसोसिएशन’ एक पत्रिका भी शुरू किया कि ‘द कानोडियन रिव्यू ऑफ कंपेरेटिव लिटरेचर’।

सन् 1960 में ऑक्सफर्ड बुक आँफ कनाड़ियन वर्स में जे.एम स्मित के अनुसार- “प्रारंभिक युग से ही कनाड़ा के फ्रेंच एवं अंग्रेज़ी कवि जाने या अनजाने दो स्पष्ट व विभिन्न धाराओं में एक से जुडे रहे। एक दल कनाडियन जीवन के विचित्र या स्थानीय तत्व स्पष्ट करते थे तो दूसरा दल पूरे संसार के जीवन के साथ कनाडा के जीवन का जो सामान्य स्वरूप रहा उस पर ध्यान केंद्रित करते थे।”[35]

कनाड़ा के विद्वान लोग अनूदित ग्रंथ से बढ़कर तुलनात्मक साहित्य अध्ययन को महत्व दिया था। क्योंकि उनको ऐसा नमूना चाहिए जो पर्याय शब्द की कमज़ोरी की परवाह न करें। कानाड़ा

में दो भाषाएँ एवं दो इतिहास सीखनेवाले है। प्रत्येक भाषा को पढ़ना, तुलनात्मक प्रणाली केलिए पथ प्रदर्शक है।

रोनाल्ड सथर्लेंट, डी.जी. जैसे तुलनाशास्त्री लोगों ने दो साहित्य को बीच के दिमुखी संबन्ध की संभावना पर बल दिया है। उन्होंने अपने विषय वस्तु-प्रधान अध्ययनों के ज़रिए कनाड़ा के साहित्यों में एक साहित्यिक बंधुता एवं परस्पर आश्रय दिखाया है। रोनाल्ड सतरलेंट मुख्य वस्तुओं के समांतर विश्लेषणों से इंग्लिश कनेडियन एवं फ्रेंच कनेडियन साहित्यों के अध्ययन में कनाडियन तुलनात्मक साहित्यकारों का लोकप्रिय लगन स्पष्ट रूप में दिखाते हैं। संपूर्ण कानाडियन साहित्य में निश्चित धुरी के रूप में अभिन्नता की एकमात्र चेतना समाई है। वे उनके राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में नए पुनर्नवीकरण (Orientation) का अन्वेषण कराते हैं।

ई.टी. ब्लॉजेट बताते है कि आधुनिक कनाडियन तुलनात्मक साहित्यकार के मौलिक कर्तव्य दो होते हैं-एक आधारभूत साहित्यों

का द्विमुखी संबन्ध और दूसरा, एक या दोनों साहित्यों के साथ विचारणीय संबन्ध।

इसप्रकार कानेड़ीयन तुलनात्मक विचारधारा बहुभाषी साहित्य को एकजुट करके 'हम कौन है' प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश है। दो भाषाई साहित्यों के अलावा उनपर बहुत सारी प्रवासी साहित्यों का भी प्रभाव होने के कारण खुद को पहचानने की दृढ़ इच्छा यहाँ देख सकते हैं।

1.8. तुलनात्मक साहित्य: उद्देश्य, महत्व एवं प्रासंगिकता

- तुलनात्मक साहित्याध्ययन की प्रगति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। क्योंकि तुलनात्मक साहित्य के फल स्वरूप राष्ट्रों के बीच विश्व मानव चेतना या विश्व साहित्य संकल्पना विकसित होती जा रही हैं। उस विश्व मानवीयता, विश्व साहित्य संकल्पनाओं को दृढ़ बनाने केलिए आचार्य लोगों ने इस विधा को प्रधानता देकर एक स्वतंत्र विधाशाखा के रूप में इसे आगे बढ़ाया है। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन, सामाजिक, सांस्कृतिक भाषिक सीमाओं को पार करके सादृश्य निरूपण

कार्य कर रहे हैं। विभिन्न भाषाओं में रचित अनेक प्रकार के साहित्यों का अध्ययन करके उसमें सादृश्य निरूपण करके 'वैविध्यता मं एकता का संतान' तुलनात्मक साहित्याध्ययन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। वसुदैवकुटुम्बकम्' नामक भारतीय संकल्पना की सार्थकता वैश्विक एकता में अतंर्निहित है।

- एक साहित्य केन्द्र से परे जाकर विश्व साहित्य में नानाविध निरूपित ज्ञानों का परिचय प्रदान करना भी तुलनात्मक साहित्याध्ययन का लक्ष्य माना जाता है।
- विविध भाषा साहित्यों की भाषागत विशेषताओं में से साहित्यगत एकरूप या समानता का निरूपण करना तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।
- विभिन्न देशों के या विभिन्न भाषाई प्रदेशों के मानवजाति के मूलभूत एकता की चेतना को पहचानना एवं मानव मन में इस एकता का प्रसार करना भी इस विधा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है।

- संसार की नवीनता को ढूँढ़ निकालना भी तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का उद्देश्य है। "कुछ विद्वान ऐसे है जो किसी पूर्वाग्रह के बिना विविधताओं एवं अंतरों का महत्व मानते हैं। अपना साहित्य से भिन्न अन्य साहित्यों का ज्ञान साहित्यिक रचनाओं के विभिन्न नमूने देते है और नया अनुभव जगत पेश करता है। ऐसे संसार की नवीनता मानव जाति की एकता की पहचान जैसे प्रधान है।"[46]
- आचार्यों ने तुलनात्मक साहित्याध्ययन को ऐसे मूल्यांकित किया है कि यह विधा लोगों के समाजिक दृष्टिकोण पर एक क्रमिक विकास पैदा करती है। एच.एम पासनेट इस क्रमिक विकास को तीन सिद्धांतों द्वारा आविष्कार किया है-

इस प्रकार के एक शैक्षिक विधा के उद्देश्य, महत्व एवं प्रासंगिकता पर अध्ययन विश्लेषण करना बहुत ज़रूरी है।

1.8.1. उद्देश्य

पश्चिम में तुलनात्मक साहित्याध्ययन की सोद्देश्यता पर प्रश्न उठाया गया था। प्रस्तुत प्रश्न का यही उत्तर है कि विश्व

साहित्य विश्व संस्कृति एवं संकल्पनाओं की स्थापना केलिए। पश्चिम लोगों ने इस उद्‍देश्य को विश्व धर्म (World Religion) नाम से संबोधित किया है। तुलनात्मक साहित्याध्ययन का वास्तविक उद्‍देश्य निम्नलिखित है -

क. सामाजिक विकास।

ख. वैयक्तिक विकास।

ग. सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन में वातावरण का प्रभाव।

इन तीनों सिद्‍धान्तों को आधार बनाकर साहित्य में सांस्कृतिक अध्ययन करना तुलना शास्त्रियों ने अपना उद्‍देश्य मानकर कार्य किया।

इस प्रकार जनता, विश्व एवं संस्कृति के हर पहलू पर एकता बोध स्थापित करना तुलनात्मक अध्ययन का महत्वपूर्ण उद्‍देश्य मानते हैं। तब मानव के बीच में होने वाली भाषाई, सांस्कृतिक, सामाजिक, लड़ाइयों को मिटाकर 'वैविध्यता में एकता' एवं 'वसुदैवकुटुम्बकम्' आदि भाव जागृत कर सकते हैं।

1.8.2. आवश्यकता एवं महत्व

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के अधिकांश पहलुओं की ओर प्रकाश डाला चुका है पर इसकी आवश्यकता क्या-क्या है इस पर विचार किया गया है।

हमारे विश्व भाषाई वैविध्यता एवं उसी के अनुसार साहित्य संपत्ति से अनुग्रहीत है। इन सबकी सांस्कृतिक अवधारणा केलिए तुलनात्मक साहित्याध्ययन आवश्यक और अनिवार्य है। वरना हम ‘कुएं का मेंढ़क’ जैसे अल्पज्ञानी रह जाएगी।

तुलनात्मक अध्ययन पूर्ण एवं समग्र ज्ञान की प्राप्ति का साधन है। इसलिए इसकी आवश्यकता है।

हेनरी जार्ज के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन हमें संस्कृति का सार प्रदान करता है। मतलब वैविध्यतापूर्ण संस्कृतियों की जानकारी एवं सार ग्रहण करने केलिए तुलनात्मक साहित्याध्ययन अपेक्षित है।

- वैविध्यतापूर्ण भाषाएँ एवं भाषाई साहित्य के पारस्परिक आदान-प्रदान एवं संबन्ध सूत्रों को पहचानने केलिए यह महत्वपूर्ण विधा है।
- सिर्फ साहित्य का नहीं इससे परे कला, इतिहास, समाज-विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि के राष्ट्रों की सीमा को तोड़कर अध्ययन करके पारस्परिक तद्रूपता साम्य, वैषम्य एवं व्यतिरेकिता के ज्ञान केलिए भी तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।
- आज भूमण्डलीकरण एवं वसुदैव कुटुम्बकम् आशयों के समय में पारस्परिक सम्बन्ध सूत्र बनाने की एक आशय के रूप में तुलनात्मक अध्ययन महत्वपूर्ण माने जाते हैं।
- सामान्य अध्ययन से जो कुछ विशेषताएँ छूट जाती है उसे तुलनीय पक्षों द्वारा उद्घाटित कर सकती है।
- तुलना कवि एवं कृतियों में एक नवीन रूप दर्शाते हैं। उस नवीन रूपों एवं सादृश्य सम्बन्ध स्थापित करने केलिए तुलनात्मक साहित्याध्ययन महत्वपूर्ण है।

- यह भाषा एवं साहित्य के परस्पर संपर्क को बढ़ावा प्रदान करते हैं।
- एक अलग भाषा साहित्य के अध्ययन विश्लेषण केलिए उस भाषा के साहित्य की अनूदित कृतियाँ मातृभाषा में मिलेंगे तो उस सामग्री का उपयोग करके अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरण केलिए हिंदी विद्यार्थी को अंग्रेज़ी भाषा साहित्य के अध्ययन केलिए उस साहित्य का हिंदी में अनूदित कृतियों को अपना सकते हैं।
- पारस्परिक संपर्क एवं आदान-प्रदान द्वारा भाषा एवं साहित्यों की सीमाओं को विस्तृत कर सकते हैं।
- भारत जैसे बहुभाषी देश में एकता एवं निकटता लाने केलिए प्रेरित करके एक सूत्र में बाँधने का प्रयास तुलनात्मक साहित्याध्ययन की महत्वपूर्ण विशेषता है। साथ ही साथ सत्य की पारदर्शिता सामने आ जाती है।

- विश्व मानव एवं विश्व साहित्य की प्रतिष्ठा करके मानव के सीमित विचारों एवं ज्ञान क्षेत्र को विस्तृत करके सारे फिज़ूल बंधनों को तोड़ने का कार्य तुलनात्मक अध्ययन करते हैं।
- ज्ञान-विज्ञान की कई दिशाओं का उद्घाटन, भाषा-शैली एवं अभिव्यंजना की मनोहारिता, राष्ट्रीय एवं भावात्मक ऐक्य का विश्वसनीय प्रतिपादन, विश्व मानव चेतना का संश्लेषण, बहुमुखी प्रकट रूप, जाति धर्म एवं रूढ़ियों द्वारा आरोपित भिन्नता में अंतरनिहित सामाजिक आदर्श एवं त्याग प्रधान भारतीय संस्कृति का संस्थापन एवं अनेक न्यूनताओं के प्रति सतर्कता तुलनात्मक अध्ययन द्वारा संभव है।
- देशों की विविधता एवं विचित्रताओं में समाहित या सम्मिलित एकता का अन्तदर्शन तुलनात्मक अध्ययन द्वारा संभव है।
- भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो भाषिक भिन्नता प्रचुर मात्रा में है। विभिन्नता में अभिन्नता की खोज तथा अभिन्नता में विशिष्टता की खोज तुलनात्मक अनुसंधान की एक विशेषता है।

- सादृश्य निरूपण से प्राप्त भावात्मक एकता का एहसास आनुषंगिक लाभ है जो आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण बात है।
- राजूरकर अपनी संपादकीय रचना 'तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप एवं समस्याएँ' में तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को कहीं इसप्रकार जिक्र किया है कि 'असल में तुलनात्मक नज़रिए से देखने पर रचनाओं का सापेक्ष महत्व दृष्टिगोचर होता है, विशिष्टता की गहरी पहचान होती है, तथा मूल्यांकन में एक व्यवस्था एवं क्रम कायम करने में सहायता होती है। साहित्य की पहचान अधिक समग्र होने में सहायता होती है।'
- विशिष्टता के साथ वैश्विकता को मिलाकर अंतिम फल के रूप में समस्त साहित्य की आलोचना एवं तुलनात्मक साहित्य आलोचना एक ही उद्देश्य पर खडे हो जाते हैं।

इतनी सारी विशेषताएँ एवं महत्व के कारण से ही तुलनात्मक साहित्याध्ययन विश्वसाहित्य एवं विश्वमानवतावाद के साधन के रूप में आज इतनी प्रचलित एवं प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। विश्वमानवतावाद काफी महत्वपूर्ण दृढ़ संकल्पना है। उस दृढ़

संकल्पना को तोड़ना नामुमकिन सी बात है। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन के साथ-साथ कला, समाजशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र सभी का तुलनात्मक अध्ययन समानताओं एवं विषमताओं का विवेचन करके प्रादेशिक बंधनों को तोड़कर ज्ञान भण्डार को विकास की ओर ले चलते हैं। इसलिए अध्ययन की तुलनीय पक्ष को और दृढ़ बनाकर विकसित करना है।

1.8.3. प्रासंगिकता

तुलनात्मक साहित्याध्ययन की संकल्पना को अधिकांश पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती, प्राचीन एवं नवीन रूपों में वर्गीकृत कर देखा गया है। इसके नए पृष्ठों में भूमण्डलीकृत तुलनात्मक साहित्याध्ययन (Globalised Comparative Literature Study) सामने आया है। 2003 में गायत्री स्पाइवाक अपनी पुस्तक 'द डेत ऑफ डिसिप्लिन' (The Death of Discipline) में इन नवीन संकल्पनाओं को तीन रूपों में रेखांकित एवं विवेचित किया है-सीमा पार करना (Crossing boarders), सामाजिकता (Collectivity) एवं प्लानटेरिटि (Planatarity) यहाँ क्षेत्रीय अध्ययन के सीमित परिवेश की महत्व

के नामंज़ूर करके उसी सीमाओं से मुक्त करके ले जाने की प्रवृत्ति देखने को मिलती हैं। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की प्रासंगिकता पर डॉ. के सीतालक्ष्मी के अनुसार-अब प्रश्न है कि 'विश्व संस्कृति' से आशय क्या है और अब तक इसका अर्थग्रहण किस रूप में किया गया है?

आये दिनों, प्रायः तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में वैश्वीकरण की बात की जाती है। पर यह वह वैश्वीकरण है, जो बाज़ारवाद पर आधारित है एवं विकसित देशों की देन है। ध्यान रहे कि इसके मूल में सभ्यता है, संस्कृति नहीं है। जैसे कि कार्लायल की बात यहाँ प्रसक्त है- 'Civilization is what we use, But culture is what we are' सीता की दृष्टि से देखे तो बाज़ारवादी, वैश्वीकरण सभ्यता के विकास का परिणाम है, यह संस्कृति की कोई देन नहीं है। इसलिए बाज़ारवादी वैश्वीकरण को विश्वसंस्कृति के साथ जोड़ना उचित नहीं पर उसका अध्ययन तो कर सकते हैं। विश्वसंस्कृति एवं विश्व साहित्य पर इन सबका किस प्रकार है तुलनात्मक अध्ययन करने पर ही पता चल जाएगा। एवं प्राचीन सभ्यता तथा

आधुनिक सभ्यता का भी जड़ तुलनात्मक साहित्य अध्ययन द्वारा समझ सकते हैं।

1.9. तुलनात्मक साहित्य समस्याएँ

आज के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य सिर्फ एक शैक्षिक विधा या पद्धति नहीं बल्कि एक स्वतंत्र अवधारणा भी है। इस क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओं पर अध्ययन करना ज़रूरी है। तुलनात्मक अध्ययन में कुछ प्रमुख हस्ताक्षरों को सशक्तीकरण के सहारे प्रस्तुत करने की जो कोशिश हो रही है वह सही आलोचनात्मक दृष्टि में नहीं है। क्योंकि तुलनात्मक आलोचना साहित्यिक आस्वादन के धरातल को व्यापक कभी नहीं बनाती तब तक निरर्थक अध्यवसाय बनकर रह जाएगी।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन एक बहुभाषाई प्रयत्न है। विविध भाषाई साहित्य में प्रवीण होना इसका बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। क्योंकि साधारणतया मातृभाषा में हमारी जो पकड़ है, वह दूसरी भाषा में नहीं होगी। तब हम अपने प्रादेशिक भाषा में अगर उसके अनूदित सामग्री मिली तो उसे लेकर पढ़ सकते

क्योंकि इस अध्ययन में अनुवाद की भूमिका तो अद्युदीय है। पर अनुवाद जब मूल रचना के साथ विश्वसनीय नहीं रह जाते तो वह असफल अनुवाद सहायक बनने के बदले मुसीबतें पैदा करते हैं।

साहित्य सम्बन्धी नए-नए विचारों एवं सिद्धांतों को हम बराबर पश्चिमी अभिमुखी बने हुए हैं। इसलिए तुलनात्मक साहित्य को भारतीय साहित्य पर बंध करने का विचार भारतीयों के संकुचित मानसिकता को प्रतिफलित करेगा। क्योंकि तुलनात्मक साहित्य अध्ययन, विश्व मानव एवं विश्व मानवतावाद की संकल्पना से जुडे विश्व साहित्य माने जाते हैं।

राजूरकर अपने पुस्तक में दो प्रकार की समस्या को उल्लेखित किया है-भारतीय संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन की पहली समस्या भारतीय बौद्धिकों की मानसिकता है जो आज भी उपनिवेशवाद से प्रभावित है। दूसरी समस्या भाषा पर निर्भर है। तुलनात्मक अध्ययन की आधार भाषा क्या हो? तीन विकल्प भी उन्होंने दिये हैं -

क. तुलनात्मक अध्ययन अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से हो सकता है।

ख. वह हिंदी के माध्यम से हो सकता है।

ग. वह विभिन्न भाषा साहित्य में अपनी-अपनी भाषा को आधार मानकर हो सकता है।

पर उनका यह भी मान्यता है कि दुर्भाग्य से अंग्रेज़ी के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन करनेवालों के मन में भारतीय भाषाओं के प्रति समादर भावना नहीं है। आज हिन्दी में जो तुलनात्मक कार्य हो रहे हैं उसपर साहित्य संस्कार का क्षीण होने के कारण अध्ययन सूक्ष्म नहीं होकर सिर्फ स्थूल बन जाते हैं तथा कृति व कृतिकारों की गंभीर तुलना करनेवाले आलोचनात्मक ग्रंथ हिंदी में अधिक उपलब्ध भी नहीं है।

उनके अनुसार भारतीय संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करते समय एक कठिनाई सामने आती है- यूरोप में अभिजातवाद, स्वच्छंदतावाद, यथार्थवाद एवं उनके अन्यन्य अंकुरों का बड़ा या

छोटा एक क्रमिक इतिहास मिलता है। क्योंकि ये सारी वाद या विचारधाराएँ ऐतिहासिक क्रम में किसी न किसी परिवेश के दबाव से वहाँ उत्पन्न हुई। भारत में उनका लगभग एक साथ प्रभाव पड़ने लगा। अतः यहाँ इस आन्दोलनों के बीच कालिक भेद दिखाना मुश्किल काम है।

डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर अपनी निबंध 'तुलनात्मक अध्ययन: समस्याएँ' में आधुनिक साहित्य के अध्ययन की ओर कतिपय प्रश्न उठाते हैं। पहला प्रश्न तो यह है कि "भारतीय संस्कृति, समृद्‌ध परंपरा की स्मृति क्षीण करने का जो प्रयास उपनिवेशवादी राजनीति का एक पैंतरा था, उसका स्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में कैसा था? उसका प्रतिपाद पुनरुत्थानवाद या प्रबोधन युग के विचारकों ने कैसे किया. . . . .?"[47] इन सबका अध्ययन आसान कार्य नहीं है।

तुलनात्मक साहित्य में निष्पक्षता की बात समस्या रूप में उठती है। तुलनात्मक अध्ययन निष्पक्ष रूप में संपन्न होना चाहिए। पक्ष-विपक्ष ढंग से तुलनात्मक कार्य किया जाए तो

अध्ययन पर असंदिग्धता आ जाती है। साहित्य बहुत सारे तत्वों से विकसित है। कई तत्वों से प्रेरित होकर साहित्य आगे बढ़ता है तो किन-किन साहित्यिक तत्वों की तुलना की जानी चाहिए इस समस्या पर भी चिंतन करना ज़रूरी है।

अर्थात सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् साहित्य के सौन्दर्य का मूलभूत तत्व है। साहित्य की यह पूर्णता मानवीय जीवन के यथातथ्य चित्रण से ही संभव हो जाती है। तब साहित्य की तुलना में इस मानवीय पक्ष को महत्वपूर्ण स्थान देना अनिवार्य है। वनजा के अनुसार- "तुलनात्मक साहित्य एक जटिल विषय है क्योंकि एक से अधिक भाषा साहित्य में अपार विद्वता एवं विशाल सार्वभौमिक दृष्टिकोण के अभाव में तुलनात्मक साहित्य में जो गहनता और सूक्ष्मता अपेक्षित है वह कभी भी संभव नहीं होगी, इसलिए एक कठिन सरणी सदैव बाल के खाल निकालनेवाले पंडितों में एक समस्या ही रह जाएगी।"[48]

हर साहित्यिक विधाओं को कुछ न कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समस्याओं के अतिजीवन करने पर ही

सफलता प्राप्त होती है समस्याएँ नहीं है तो अगे बढ़ने के बगैर निष्क्रिय बन जाते हैं। मतलब यह है कि तुलनात्मक साहित्य नामक शैक्षिक विधा के विकास के लिए समस्याएँ होना और उसे पार करना अपेक्षा की बात है। इसलिए जो समस्याएँ अब इस विधा को सामना करना पड़ती है इन सबके समाधान करके यह शैक्षिक विधा और महत्वपूर्ण बन जाएँगी।

1.10. निष्कर्ष

तुलनात्मक साहित्याध्ययन के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन विश्लेषण करने पर ऐसा महसूस हुआ कि यह विश्व के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक धरातलों को एक जुड़ करने केलिए अपेक्षित विधा है। विविध राष्ट्रीय साहित्यों की ऐतिहासिक अवधारणा केलिए एवं विश्व मानव संकल्प को सुदृढ़ बनाने केलिए तुलनात्मक साहित्याध्ययन हमेशा निरख रहते हैं। इसलिए 'विश्व साहित्य' नामक आशय की जड़ और मज़बूत हुई। सिर्फ साहित्य विधा पर ही नहीं विश्व की हर विधाओं एवं आयामों पर तुलनात्मक अध्ययन लागू है। जैसे विज्ञान, कला, समाज शास्त्र,

मनोवैज्ञानिक आदि विधाओं के विविध आयामों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं एवं कर रहे हैं।

'विश्व साहित्य' रूपी एकता का भविष्य, हर साहित्यों को एकजुड़ करके विश्व साहित्य का विकास, हर राष्ट्रीय साहित्य दूसरे साहित्यों को बिना कोई तकलीफ, अपनाने की प्रवृत्ति; इन सारी प्रवृत्तियों को स्थापित करना एवं विश्वमानवतावाद की स्थापना तुलनात्मक साहित्याध्ययन का अंतिम लक्ष्य ही है। भारत जैसे बहुभाषा एवं बहुसांस्कृतिक देश में तुलनात्मक अध्ययन की ज़रूरत को भी अध्ययन किया है। हिंदी साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन की शुरूआत आधुनिक काल से ही हुआ है। और तुलनात्मक साहित्याध्ययन को हिंदी साहित्य के शोध की दिशा में भी आज महत्वपूर्ण स्थान मिला है। इस प्रकार आज सिर्फ भारतीय धरातल पर भी तुलनात्मक साहित्याध्ययन बहुचर्चित है। क्योंकि आज भूमण्डलीकृत दुनिया में दूरियाँ कम हो चुकी है। लेकिन विडम्बना इस बात पर है कि मानव के विचार आज संकीर्ण हो चुका है। सबके मन में दूसरों के प्रति घृणा एवं

तिरस्कार की भावना पनप रही हैं, एवं प्रेम के बंधन ढ़ीले पड़ रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में बदलाव केलिए विश्वमानव चेतना अनिवार्य है। क्योंकि आज सबसे अधिक क्षति 'मानवता' की होती है। उस मानवता को जगाना एवं 'वसुदैवकुटुम्बकम्' का पुनःस्थापन तुलनात्मक साहित्याध्ययन द्वारा ही संभव है। इन सबकेलिए तुलनात्मक साहित्य एक सफल एवं सार्थक भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. तुलनात्मक साहित्य - सं.डॉ.नगेन्द्र, पृ. सं. 68.
2. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत- नरेन्द्र कोहली – पृ. सं. 126.
3. हिन्दी जागरण ट्विटर

4. भारतीय काव्य शास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन- डॉ.सभापति मिश्र - पृ. सं. 567.
5. वही – पृ. सं. 592.
6. तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य - इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ. सं. 14.
7. सम्मेलन पत्रिका, एप्रिल-जून 2012 निबन्ध: तुलनात्मक अध्ययन का परिप्रेक्ष्य- डॉ. छबिल कुमार मोहरे - पृ. सं. 30.
8. सम्मेलन पत्रिका, एप्रिल-जून 2012, सं. विभूतिमिश्र निबन्ध: तुलनात्मक अध्ययन का परिप्रेक्ष्य-डॉ. छबिल कुमार मोहरे - पृ. सं. 30.
9. तुलनात्मक साहित्य : एन.ई.विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 45.
10. तुलनात्मक अध्ययन का परिप्रेक्ष्य - डॉ. छबिल कुमार मोहरे, सम्मेलन पत्रिका, एप्रेल-जून 2012, विभूतिमिश्र।
11. तुलनात्मक साहित्य विश्वसंस्कृति और भाषाएँ-डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 14.

12. तुलनात्मक साहित्य भाग 1 में, Proceeding of the Second Congress of the I. Comparative Literature Association - पृ. सं. 22.
13. तुलनात्मक साहित्य विश्वसंस्कृति और भाषाएँ-डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 23.
14. Interdisciplinary Alternatives in Comparative Literature: Edi-E.V. Ramakrishnan, Harish Trivedi & Chandra Mohan - P. No. 3.
15. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप एवं समस्याएँ-संपा. डॉ. भ.ह. राजूरकर और राजकमल बोरा - पृ. सं. 35.
16. तुलनात्मक साहित्य - डॉ. नगेन्द्र - पृ. सं. 27.
17. तुलनात्मक साहित्य - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 1.
18. तुलनात्मक साहित्य - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 21.
19. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप एवं समस्याएँ-संपा. डॉ. राजूरकर - पृ. सं. 107.
20. The Comparative Method is the Mother of all Classicism- C.L.E.Y George. K. Woodberry - $P_2$11.

21. तारतम्यसाहित्य समीक्षा-डॉ. टी.जी. रामचन्द्रन पिल्लै - पृ. सं. 30.
22. तुलनात्मक साहित्य:विश्व संस्कृति और भाषाएँ- डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. 12.
23. तुलनात्मक साहित्य:विश्व संस्कृति और भाषाएँ-डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 11.
24. शोध त्रैमासिक सम्मेलन पत्रिका: 2010, तुलनात्मक साहित्याध्ययन:विकासक्रम; सं. विभूति मिश्र।
25. तुलनात्मक साहित्य:विश्व संस्कृति और भाषाएँ-डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 18.
26. तुलनात्मक साहित्य:विश्व संस्कृति और भाषाएँ-डॉ. के. सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 21.
27. तुलनात्मक साहित्य - डॉ. नगेन्द्र - पृ. सं. 20.
28. तुलनात्मक साहित्य - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 32.
29. तुलनात्मक साहित्य - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 34.

30. तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य-इन्द्रनाथ चौधुरी-पृ. सं. 19.

31. वही - पृ. सं. 20.

32. तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र, पृ. सं. 2.

33. कंपेरेटव लिटरेचर : ए क्रिटिकल इंट्रोडक्शन- सूसन बस्नेट - पृ. सं. 33.

34. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप एवं समस्याएँ - संपा.डॉ. भ.ह. राजूरकर और राजमल बोरा - पृ. सं. 36-37.

35. तुलनात्मक साहित्य - एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 41.

36. तुलनात्मक साहित्य : विश्व संस्कृति और भाषाएँ - डॉ. के सीतालक्ष्मी - पृ. सं. 24-25.

37. तुलनात्मक साहित्य- एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं.44.

38. तुलनात्मक साहित्य - डॉ. नगेन्द्र - पृ. सं. 68.

39. भारतीय काव्य शास्त्र एवं पाश्चात्य काव्य चिंतन- डॉ. सभापति मिश्र - पृ. सं. 102.

40. वही - पृ. सं. 37.

41. तुलनात्मक अध्ययन का परिप्रेक्ष्य- डॉ. छबिल कुमार मोहरे, सम्मेलन पत्रिका, एप्रेल-जून 2012, संपा. विभूति मिश्र।

42. हिन्दी और तेलुंगू वैष्णव भक्ति साहित्य: एक तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. के. रामनाथन।

43. तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य- इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ. सं. 30-31.

44. वही - पृ. सं. 31-32.

45. तारतम्य साहित्य समीक्षा- डॉ. एम.एम. करीम् - पृ. सं. 35.

46. तुलनात्मक साहित्य - एन.ई. विश्वनाथ अय्यर - पृ. सं. 47.

47. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ, डॉ.राजूरकर- पृ. सं. 71.

48. तुलना और तुलना - डॉ. वनजा - पृ. सं. 16.

दूसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यास का उत्तर-आधुनिक परिदृश्य

2.1. भूमिका

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में साहित्य, समाज-विज्ञान एवं साधारण जन-जीवन में जो-असामान्य परिवर्तन दिखाई देता है, उसे उत्तर-आधुनिकता या आधुनिकता के बाद की अवस्था मानी

जाती है। उत्तर-आधुनिकता किसी एक दर्शन के प्रति नहीं बल्कि सम्पूर्ण आधुनिक यूरोपीय दर्शन के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया भी मानी जाती है। यह एक विचारधारा या लक्ष्य केंद्रित या नियम अनुशासित आंदोलन न होकर पश्चिमी मानवतावाद की एक विचलित अवस्था विशेष होती है। टॉयनबी के मतानुसार आधुनिकतावाद के बाद उत्तर-आधुनिकता तब शुरू होती है जब लोग कई अर्थों में अपना जीवन, विचार एवं भावनाओं में अपोलोनियन तार्किकता (The Appolonian and Dionysian is a Philosophical and Literary Concept. Relating to the rational, ordered and self-disciplined aspects of human nature) एवं संगति को त्यागकर डायोनिसियन अतार्किकता एवं असंगतियों को अपना लेते हैं। उत्तर-आधुनिकता की चेतना विगत को एवं विगत के प्रतिमानों को भुला देने के सक्रिय उत्साह में दीख पड़ती है।

उत्तर-आधुनिकता के बारे में चिंतन-मनन करने से पहले आधुनिकता क्या है एवं आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर

की साहित्यिक यात्रा पर थोड़ा सा विचार करना अनिवार्य लगता है।

2.2. आधुनिकता

आधुनिकता को सिर्फ एक विचारधारा के रूप में नहीं बल्कि एक जीवन प्रणाली के रूप में देखना चाहिए जो मानव को आज के समग्रता का दर्शन दिखाती है। हर समय अपनेलिए आधुनिक है। डॉ. राजेन्द्र के अनुसार- “आधुनिकता आज मनुष्य की सभ्यता का मानक है, वह नवजागरण है जो समकालीन विचारदर्शन से जुड़ी है। उसमें वैज्ञानिक क्रांति, रोमानीवाद मार्क्सवाद, डारविनवाद, मनोविश्लेषण एवं अस्तित्ववाद एक शामिल हो गया है। वह इतिहास का बिम्ब है जो वर्तमान से जुड़कर अनवरत है। काल की समस्या उसकी प्रमुख समस्या है फिर भी ग्लोबल होना आधुनिकता है।”[1] आधुनिकता तो समय सापेक्ष है। "आज" को लेकर चलता है आधुनिकता। "आज" के बिना हमारा अस्तित्व संभव नहीं है। परसों-कल ऐसा था, कल ऐसा हो जाएगा दोनों हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन जो आज संभव है उसके साथ भूत

एवं भविष्य को जोड़ना वही आधुनिकता का काम माना जा सकता है। इसलिए राजेन्द्र ने हमारे इतिहास को वर्तमान से जोड़ने की बात पर बल दिया है। तभी हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह जाएगा। राजेन्द्र के अनुसर- "आधुनिकता घटनाओं का दस्तावेज़ नहीं, वह मानवता की विचारधारा है जो अतीत के अनुभवों को वर्तमान में रूपांतरित कर भविष्य के परिवर्तन को निश्चित करती है।"[2]

अंग्रेज़ी में "आधुनिक" केलिए "मॉर्डन" (Modern) शब्द का इस्तेमाल करता है जो मूलतः लेटिन भाषा की देन है। इसका मतलब तो यह है कि "वर्तमानकालिक"। डेनियल लर्नर (Daniel Lerner) के मतानुसार- "आधुनिकता मुख्यतः मन की एक अवस्था है, प्रगति की आकांक्षा, विकास की ओर झुकाव तथा स्वयं में परिवर्तन ग्रहण करने की शीघ्रता है।"[3]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार हिंदी साहित्य का सातवाँ दशक 1960 से लेकर 1970 तक आधुनिकता से प्रभावित है। उन्होंने यह भी बताया है कि "यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और

बौद्धिकता से सम्बन्धित है, जिससे नवीन आशा उभरी और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। देश, धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि की नयी-नयी व्याख्याएँ की जाने लगी।"[4] राजेन्द्रमिश्र के विचारों से बिल्कुल भिन्न है डॉ. नगेन्द्र के विचार। डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिकता को मानव के खोए हुए व्यक्तित्व की खोज प्रक्रिया मानी है। आज मानव सिर पर सिर्फ मशीनों का दबाव है। लेकिन लोगों का मानना यह है कि आधुनिक काल की वैज्ञानिक प्रगति मानव को बुद्धि सम्मत बना दिया है। पर सच तो यह है कि आज सब कुछ मशीन से चलते हैं। मनुष्य को तन और मन दोनों स्तर पर आलसी बना दिया है। उनको न कुछ सोचना पड़ता है न चिंतन-मनन। बौद्धिक जगत होने के कारण आध्यात्मिक दर्शन का महत्व घटते जा रहे हैं। नीत्शे ने ठीक घोषणा की थी कि "ईश्वर मर गया"। मतलब आज किसी के मन में आध्यात्मिक, नैतिकता का बीज तक नहीं हैं। विज्ञान के ज़रिए आज बहुत कुछ हो रहा है जो ईश्वर रूपी कल्पना भी नहीं कर सकता।

भूगोल और इतिहास को तकनीकीकरण के विकास ने सीमा रहित बना दिया है। आधुनिकता का अर्थ ग्लोबल विलेज में बदल गया है और एक पराए मानसिकता रूपांतरित हुई है। इस पराएपन की मानविकता तो मनुष्य को अमानवीय बना दिया है। पुराने ज़माने में जो हमारे अंदरमन में है वही बाहरीजगत में प्रतिफलित होता था लेकिन आज सिक्का तो बदल गया है मन में कुछ ओर बाहर बिल्कुल अलग। जो अंदरमन में विद्‌यमान है वह अंदर ही अंदर दबा देता है और बाहर के नए-नए बदलाव, पाश्चात्य सभ्यता आदि को अपनाकर ऐश ज़िन्दगी जीने का व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं।

मानव अपनी धरती एवं प्रकृति को स्वर्ग तुल्य या स्वप्नतुल्य बनाने की कोशिश में है। लेकिन प्रकृति को अपनाकर, पर्यावरण के अनुकूल बनाकर नहीं बल्कि उसे तोड़ मरोड़कर। अपनी ज़िन्दगी सुविधाजनक बनाने हेतु वे दिन-प्रतिदिन प्रकृति का शोषण करते रहते हैं। प्रो. रामाश्रय राम के अनुसार- “इस प्रयास के कारण धरती-आकाश का अंतराल कम हुआ, काल और

देश की सीमाएँ टूटी हैं, विभिन्न संस्कृतियों के समीप आने के कारण जातियों-प्रजातियों के बीच की दूरी कम हुई है और आवागमन का सिलासिला यातायात के साधनों की प्रचुरता और लोगों की अर्थ-संपन्नता के कारण बढ़ा है। तीन सौ वर्षों में सारे संसार में आधुनिकता का प्रसार हो गया है, इसकी जड़े गहरी हो गई है।”[5]

भारतीय आधुनिकता के नाम पर विकास की जितनी भी कोशिश करें उन सबका फल पश्चिमी जगत् के साम्राज्यवादि शक्तियों को ही मिलेगा।

2.3. आधुनिकता बनाम उत्तर-आधुनिकता

आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता की तुलना इसलिए करता है कि कुछ विद्वानों के मतानुसार उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता की दूसरी कड़ी है। लेकिन कुछ आधुनिकता की संरचना को तोड़कर जिस विचारधारा का विकास हुआ है उसे उत्तर-आधुनिकता मानते हैं।

आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिकता को पाण्डेय शशिभूषण शीतांशू ने इस प्रकार विवेचित किया है- “उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता की विरोधिनी है। इसके विरोध में उपस्थित होने का आधार हैं। यह सम्पूर्णता या समग्रता (Totality) की अवधारणा को तोड़ती है, उस पर प्रहार करती है और आधुनिकता को खारिज करती है। आधुनिकता के मूल में जहाँ विवेक (Rational) है वहाँ उत्तर-आधुनिकता के मूल में इच्छा है। आधुनिकता अपनी श्रेष्ठ पारम्परिकता के प्रति प्रत्यागमन करती है, पर उत्तर-आधुनिकता हर तरह से अपने को ऐतिह्य, अतीत से मुक्त करती है। आधुनिकता में कुछ प्राचीन मूल्यों का पुनर्जन्म प्राप्त किया था। यहाँ कई श्रेण्य प्रादर्शों, प्रतिमानों का पुनरन्वेषण किया गया था। पर उत्तर-आधुनिकता केवल वर्तमान केंद्रित है। यह उसकी कालिक चेतना का स्वरूप है। आधुनिकता में विचारधारा (Ideology) को स्थान प्राप्त था, पर उत्तर-आधुनिकता विचारधारा की समाप्ति की घोषणा है। इसमें विचारधारा वर्ग-संघर्ष जैसी अवधारणाओं को संकट ग्रस्त कर दिया है। आधुनिकता में वृत्तांत विवेकशीलता के

विचारधारागत प्रादर्शों के प्रति गैर जवाबदेही गैर ज़िम्मेदारी के दरवाज़े खोल दिए हैं।"[6]

जहाँ पुराने मूल्यों में परिवर्तन नज़र आते हैं वहाँ आधुनिकता का बीजारोपण हुआ था। लेकिन इस परिवर्तन का भी एक नया मोड़ हमारे सामने आया है। आधुनिकता के इस नए परिवर्तन मोड़ को, चाहे वह आधुनिकता के पक्ष हो या विपक्ष उसे उत्तर-आधुनिकता कहना शुरू किया।

2.4. उत्तर-आधुनिकता का विकास

भारत में उत्तर-आधुनिकता की शुरूआत लगभग बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दिखाई देने लगी लेकिन पश्चिम में तो सौ वर्ष पूर्व ही दिखाई देने लगी। पश्चिम के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान आरनोल्ड टॉयनबी ने "उदार मानवतावाद" के पतन को केन्द्र में रखकर इतिहास लिखते हुए सन् 1920 ई में ही "पोस्टमॉर्डन" शब्द का प्रयोग किया एवं आधुनिकता के अंत के लक्षणों की ओर इशारा भी किया।

उत्तर-आधुनिकता किसी विषय पर केंद्रित विचारधारा तो नहीं है इसलिए इस विचारधारा को न कोई निश्चित लक्ष्य है न कोई निश्चित संस्थापक। यह एक विकेंद्रित एवं बहुलतापूर्म विचारधारा है जो आज के बहुसांस्कृतिक समय में लागू हो सकते हैं। उत्तर-आधुनिकता तो समाज की एक अवस्था है। उत्तर-आधुनिकतावाद तो कलारूपों में आई बृहत परिवर्तनों एवं विकास को इंगित करता है।

उत्तर-आधुनिकतावाद की शुरूआत को लेकर कृष्णदत्त पालीवाल का मत इस प्रकार है- “बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध दरअसल उत्तर-औद्योगिक क्रांति का अद्भुत युग है। इस युग में समाज, संस्कृति, राजनीति, कला, साहित्य, दर्शन, संगीत, इतिहास अर्थव्यवस्था तथा पूरे मानव चिंतन में जो परिवर्तन चक्र तीव्रगति से घूमा है-उस स्थिति परिस्थिति की ओर ध्यान दिलानेवाला नाम है- "उत्तर-आधुनिकतावाद"।”[7] इस कथन से यह प्रामाणित हो जाते हैं कि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में आये जो परिवर्तन आन्दोलन है, जो पाश्चात्य सभ्यता का अतिक्रमण है, सांस्कृतिक

पलायन है, उसे उत्तर-आधुनिकता कहा जा सकता है। और तत्संबन्धी वाद-विवाद एवं विमर्श को उत्तर-आधुनिकतावाद करते हैं।

उत्तर-आधुनिकता शाब्दिक रूप में अंग्रेज़ी के "पोस्ट माडर्निटी" (Post Modernity) शब्द का हिंदी रूपांतरण माने जाते हैं। 1870 ई॰ में प्रचलित अतार्किक चिंतन एवं मानवतावाद की जनप्रियता के ह्रास का इतिहास लिखते हुए पश्चिमी आलोचक अर्नोल्ड टॉयनबी ने 1920 ई॰ में इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले किया था। उनका प्रसिद्ध पुस्तक है "द स्टड़ी ऑफ हिस्ट्री"। टॉयनाबी ने फ्रेडरिक नीशो को "उत्तर-आधुनिकता के मसीहा" मानते हैं। उनके मतानुसार उत्तर-आधुनिकता तब प्रारंभ होता है जब लोग कई अर्थों में अपने जीवन, विचार, दर्शन एवं भावनाओं में अपोलोनियन तार्किकता एवं संगति को त्यागकर डायोनिसियन अतार्किकता एवं असंगति को अपना लेता है।

सन् 1967 ई॰ में जॉन बर्थ ने सर्वप्रथम कला के संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया है। सन् 1974 में पीटर बर्जर ने

इसका विवेचना भी किया है। 1983 में ज्यॉ फ्रैकोस ल्योतार 'Answering the Question: What is Post-Modernism' पुस्तक का प्रकाशन किया था, अपने अध्ययनों के द्वारा उनका उद्देश्य उत्तराधुनिकता को समसामयिक घटनागत तत्वों के बीच उसकीअपनी समीचीन जग्हा स्थापित करने का था। 1983 में फ्रेडरिक जेम्सन 'Post Modernism and Consumer Society' लिखा था। जेम्सन ने उत्तर-पूँजीवाद के सांस्कृतिक तर्क को प्रायः प्रत्यक्ष तौर पर वाम-उदारवादी बौद्धिकों के रीगनवाद (Reagonism) के साथ गहरी बेचैनी को अभिप्रेरित किया था। उसी साल में ही बौद्रिआ की 'In the Shadow of the silent Majorities & Simulation' नामक पुस्तक छपा था, उन्होंने इसमें अतियथार्थ को अभिप्रेरित किया था। लेकिन बात तो यह है कि ल्योतार वह पहला व्यक्ति था, जिसने उत्तर-आधुनिक लीक पर विज्ञान और पश्चिमी दर्शम में हुए विकासों का विश्लेषण किया। बौद्रिआ तो आधुनिक और उत्तर-आधुनिक समाजों के बीच एक बुनियादी विच्छेदों के सिद्धान्त लागू किया है। आधुनिक समाज जहाँ उत्पादन प्रक्रिया के चारों

और घूमते हैं वहाँ उत्तर-आधुनिक समाज बिंबों एवं संकेतों की क्रीड़ा और छद्म रूप के इर्द-गिर्द संघटित होते हैं। उनकी दृष्टि में उत्तर-आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिक समाज अ-विभेदीकरण और अन्तः स्फोट के द्वारा अपनी पहचान उपस्थित करता है।

उत्तर-आधुनिकता में चाक्षुषता एवं श्रवणशीलता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन चाक्षुषता से भी एक कदम आगे का स्थान है श्रवणशीलता का। श्रवणशीलता तो देरिदा की विखंडनवाद द्वारा ही संभव हो पाती है। बिना जॉक देरिदा के "विखंडनवाद" के बिना उत्तर-आधुनिकता का कोई स्थान नहीं है। इसलिए उत्तर-आधुनिक संदर्भ में देरिदा का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

गिलेस डिल्यूज़ (Gilles Deleuze) तथा फेलिक्स गुएटरी (Felix Guattaie) महत्वपूर्ण पाश्चात्य उत्तर-आधुनिक विचारक हैं। गुएटरी 1996 में प्रकाशित उनके पुस्तक 'The Post-Modern Impress' में उत्तर-आधुनिकता की एक संक्षिप्त, वर्णनात्मक अध्ययन किया है। उन लोगों ने उत्तर-आधुनिकता को आधुनिकता

की अंतिम चरण के रूप में देखा समझा एवं समझाया है, जो एक प्रकार के प्रतिक्रिया के रूप में समाज के सामने आयी है।

उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में फ्रेडरिक जेम्सन की भी अपनी एक विशिष्ट भूमिका है। उन्होंने उत्तर-आधुनिकता केलिए गैर-वैभिन्यीकरण (De-Differentiation) नामक प्रक्रिया को अपनाया है। उनके अनुसार "उत्तर-आधुनिक साहित्य आधुनिकतावादियों की तरह लोकप्रिय पाठों को महज उद्धृत नहीं करता है, जैसा जेम्स ज्वायस ने अपनी कृतियों में किया है बल्कि यह अपने अंतर्गत उन पाठों को समाविष्ट कर लेता है और वह भी उस सीमा तक जाकर करता है, जहाँ इसके बीच की सीमाएँ मिट जाती है।"[8]

इन सबके साथ-साथ अम्बर्टो इको, एन्डोनियो ग्राम्शी, मिखाइल फूको, रिचर्ड रोर्टी, जॉन केज आदि आलोचकों ने पाश्चात्य जगत में उत्तर-आधुनिकतावाद के विकास केलिए अपना चिन्तन व्यक्त किए हैं। हिंदी में कृष्णादत्त पालीवाल, पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु, देवशंकर नवीन, नामवरसिंह, सुधीश पचौरी आदि आलोचकों मुख्यतः उत्तर-आधुनिकता के सैद्धान्तिक पक्ष का अध्ययन

विश्लेषण करके अपना अलग-अलग विचारों को व्यक्त करके उत्तर-आधुनिकता को आगे बढ़ा रहे हैं।

2.5. उत्तर-आधुनिकता: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

पहले भी जिक्र किया है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में "उत्तर-आधुनिकता" ने एक विचारधारा के रूप में अपना पहला कदम रखा है। यह आधुनिकता के बाद की स्थिति है जो उसके आगे की कड़ी भी कहा जा सकता है, एक विकास भी और एक विरुद्‌ध अतिक्रमण भी माना जा सकता है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें सारा विश्व एक विशाल बाज़ार के रूप में समेटते हैं।

आज मानव से लेकर हर चीज़ एक बिकाऊ माल मात्र रह गया है अब कोई प्यार, जीवन दर्शन, निश्चित विचारधारा आदि बाकी नहीं रह गए हैं। इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा का कोई मूल्य नही है। इसलिए उत्तर-आधुनिकता को इतिहास का अंत, संस्कृति एवं परम्पराओं का खण्डन माना जाता है। अब तकनीकी ही सर्वस्वीकृत है। तकनीकी क्षेत्र का विकास इतना बढ़ रहा है कि मानव मस्तिष्क भी मशीनीकृत बन रहा है।

2.5.1. अर्थ

उत्तर-आधुनिकतावाद 'Post Modernism' का शाब्दिक अनुवाद है जिसको एक अर्थ में बॉटना नामुमकिन है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'आधुनिकता के बाद की स्थिति'। औद्योगिकीकरण के "उत्तर" रूपी अवस्था व्यवसाय की नयी करवट, मानव मूल्यों में आए बदलाव आदि समाज में होनेवाले हर परिवर्तन को "उत्तर-आधुनिकता" नाम से पुकारा जाता है। हिंदी साहित्य जगत केलिए उत्तर-आधुनिकता एक नई संकल्पना है। यह प्रकृति और मानव के बीच में एक नया संबन्ध खोजने की प्रवृत्ति मानी-जानी चाहिए। उत्तर-आधुनिक या Post Modernism एक व्यापक अवधारणा भी है, साथ ही सथ एक अत्यंत विवादास्पद शब्द। यह एक व्यापक एवं संश्लिष्ट अवधारणा है इसके अनेक अर्थ होंगे, जटिल दुरूह एवं गहरे अर्थ भी।

2.5.2. परिभाषा

किसी भी शब्द के साथ जब 'उत्तर' शब्द का प्रयोग होता है तो सामान्यतः इसके दो अर्थ हो सकते हैं कि उस शब्द में निहित

या उसके द्वारा व्यंजित पूर्व-स्थिति अब नहीं रह गई है और कोई नयी स्थिति उभरकर सामने आई हैं अथवा उत्तर-स्थिति, पूर्व-स्थिति का अगला चरण या विस्तार है। "उत्तर आधुनिकता" ऐसी एक अवधारणा है जिसे परिभाषा में बाँधना बहुत मुश्किल है। क्योंकि यह एक बहुआयामी संकल्पना है। फिर भी बहुत सारे विद्वानों ने इसे परिभाषित करने की कोशिश की है।

2.5.2.1. प्रसिद्ध हिन्दी आलोचकों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

उत्तर-आधुनिकता के प्रमुख लक्ष्णों को एक साथ सूत्रबद्ध करते हुए डॉ. निर्मला जैन ने कहा है- "उत्तर आधुनिकतावाद के इस परिदृश्य में समीक्षा और ऐतिहासिकता दोनों खन्म हो जाती हैं। उत्तर-आधुनिकता में सिद्धान्त निर्माण नहीं होता। कुछ नए निमर्श है जो अपने आप में पूर्ण है। इनमें आर्थिक भविष्यवाणियों और बाज़ार अध्ययन से लेकर धार्मिक पुनर्जागरण, फिल्मी

समारोह की समीक्षा या व्यक्तिपूजा सब शमिल हैं। सब अपने में पूर्ण है।”[9]

"उत्तर-आधुनिकतावाद की ओर" नामक पुस्तक की भूमिका में कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर-आधुनिकता को इस प्रकार परिभाषित किया है कि- “उत्तर-आधुनिकतावाद प्रत्येक क्षेत्र में नव-बौद्धिकतावादी क्रांति की एक अदृश्य आइडियॉलजी है-एक ऐसी आईडियॉलजी जो सभी पुरानी विचारधाराओं के "उत्तर" या समाप्ति की उद्घोषणा करती है।”

पाण्डेय शशिभूषण शीतांशू ने उत्तर-आधुनिकता पर अध्ययन विश्लेषण करके "उत्तर-आधुनिकता: बहुआयामी संदर्भ" नामक पुस्तक छपा है। इसमें उन्होंने उत्तर-आधुनिकता को इस प्रकार परिभाषित किया है कि- “उत्तर-आधुनिकतावाद दार्शनिक प्रतिज्ञप्तियों के ऐसे समुच्चय को भी निर्दिष्ट करता है, जो ज्ञानोदय की, परियोजना की यथार्थवादी ज्ञान-मीमांसा के खारिज होने के चारों ओर निहित है . . . यह वह विषय है, जो भाषा की पारदर्शिता यथार्थ की अभिगम्यता, सार्वभौम आधार की संभाव्यता

इत्यादि पर आधारित है। आत्म निर्धारण के साथ इसके इगडे में यह स्वयं को वस्तुनिष्ठ, अलौकिक एवं शाश्वत के बतौर पेश करता है। यहाँ उत्तर-आधुनिकतावाद अपर निर्धारण, इच्छा, अनिश्चय, आकस्मिक परिवर्तन, अन्तर और आत्म और अर्थ की अनुपस्थित पर बल देता है।"[10]

इन्द्रनाथ चौधरी के मतानुसार- "पाश्चात्य शब्दावली में आधुनिकता का अर्थ स्थापित नियमों, परम्पराओं एवं मान्यताओं से अलग हटकर विश्व में मनुष्य की स्थिति एवं इसके कार्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण अपनाना है। भारत में आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिकता एक दूसरे के विपरीत न होकर पूरक है।"[11]

सुधीश पचौरी उत्तर-आधुनिकता के एक प्रसिद्ध आलोचक है। इनके मतानुसार "उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार भी है और अंतिम बिंदु भी है। वह अनुपस्थिति की उपस्थिति है। वह प्रतिनिधित्व-रहित की उपस्थिति है। उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता की तरह एक यूरोपीय इतिहास है। लेकिन आधुनिकता के दौर से काफी अलग। विकेन्द्रित होता हुआ।"[12]

इस प्रकार हिंदी आलोचकों ने उत्तर-आधुनिकता विकेंद्रित रूप प्रदान किया है। जिससे सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आ सके।

2.5.2.2. पाश्चात्य परिभाषाएँ

समाजशास्त्री ल्योतार ने "पोस्ट-मॉर्डन कंडीशंस" पुस्तक लिखकर यह बताया है कि आज उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में सभी "महाख्यानों का अंत" (Death of Meta Narratives) हो गया है।फ्रांसिस फूकोयामा ने "दि एंड़ ऑफ हिस्ट्री" लिखकर "इतिहास का अंत" भी घोषित किया है। फिर डेनियल वेल ने "एंड ऑफ दि आइडियॉलजी" और शेलां बार्थ बोले कि "लेखक का अंत"। यह तो एक अंतवाद जैसे प्रतीत होते हैं कि सबका अंत होते जा रहे हैं।

मैकगोवान जो स्वयं उत्तर-आधुनिकता का एक समीक्षक है, उनका कथन यह है कि- “मैं नहीं जानता कि हम किसी ऐसे नए ऐतिहासिक काल में हैं जो पिछले से अलग है, ताकि हम इस नए "ब्राण्ड" को उचित ठहरा सकें। लेकिन मुझे पूरा यकीन हो चला है कि समकालीन बुद्धिजीवियों को अपने कर्म की भूमिका की

अवधारणना बदल गई हैं। बीसवीं सदी में निश्चित की गई प्रतिरोध की रणनीतियों नए विद्रोहियों को प्रभावी नहीं लगती।"[13]

2.5.3. स्वरूप

"उत्तर-आधुनिकता" का मतलब यह है कि "सीमित, अपूर्ण एवं परिवर्तनशील'। प्रस्तुत विचारधारा यह मानती है कि जीवन से सम्बन्धित कोई भी रचनाकार्य न सर्वव्याप्त है, न स्थायी, न अंतिम और न अपने आप में पूर्ण है। उत्तर-आधुनिकता को पूर्वनिर्धारित एवं सुनिश्चित शब्दों से स्वरूपित करना मुश्किल काम है। यह विचारधारा एक यूरोपीय आन्दोलन के रूप में हमारे सामने आकर खड़ा है। विकेन्द्रित रूप में सर्वत्र नज़र आते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्रकृति और मानव के बीच की परिवर्तित नए संबन्धों की खोज है। यह एक भूमण्डलीय ज्ञान अवस्था है जिसमें दुनिया के हर व्यक्ति-वस्तु-स्थान शामिल है। यहाँ सर्वस्वीकृत, व्यवसाय का उपभोक्तावाद के रूप में बदल जाने की अवस्था है उत्तर-आधुनिकता।

जिस प्रगति की कल्पना विगत कुछ शताब्दियों से हम देखकर आई है, आज हमारे सामने साक्षात् रूप धारण करके उपविष्ट है। औद्योगीकरण का विकास उत्तर-औद्योगीकरण के रूप में हो गया है। यह उत्तर-औद्योगीकरण व्यवसायों को नए-नए स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। इन सारे बदलावों से समाज में एक वर्ग संपन्न या अमीर बनते जा रहे हैं दूसरी ओर आर्थिक गरीबी एवं सामाजिक तौर पर पिछडेपन की जड में डूबी है। अमीरी-गरीबी के बीच इतनी गहरी दरार संभवतः उत्तर-आधुनिक संदर्भ में जितना मिलना है उतना आधुनिकता के संदर्भ में नहीं था। इस नए-नए अमीर लोगों के कारण भारतीय मानव जीवन में पाश्चात्य संस्कृतियों एवं विदेशी सभ्यता की झंझलाहट आज इतना बढ़ता जा रहा है कि उसके गुण-दोष विवेचित करना मुश्किल बन पड़ा है।

जो टूटा है वह कुछ नए बनने को हैं। मतलब तो यह है कि उत्तराधुनिक संदर्भ में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक रूढ़ीगत मान्यताओं को टूटते नज़र आते हैं। इस टूटने की वजह कुछ नए-

नए मूल्यों की तलाश एवं निर्माण है। वही नए मोड़ को ही हम उत्तर-आधुनिकता कहते हैं। मनव अपने खोए हुए व्यक्ति अपनेपन, प्यार केलिए संघर्ष और खुद की तलाश कर रहे हैं जो उत्तर-आधुनिकता का मखर रूप बनते जा रहे हैं।

उत्तर-आधुनिकता पर विचार करनेवाले विद्वानों के अनुसार उत्तर-आधुनिकता इतिहास का अंत है, कहीं वह आधुनिकता के केन्द्रवाद का अपकेंद्रण है। कहीं वह उत्पादन से उपभोक्ता की ओर अपसारण है; कहीं वह देश का अंत है, भूमण्डलीय स्थिति है, राष्ट्र-राज्यों की सांस्कृतिक सीमाओं का अंत है, विगलन है, माध्यमीकृत यथार्थ है, बोध न होने की अबोधता है, या बोध होकर भी अबोध बनकर जीवन बितानेवाले लोगों की अवस्था है। यह विचारधारा सामयिक मूल्यों, मानवतावाद, आधुनिकतावाद, पूँजीवाद, मार्क्सवाद आदि अवधारणाओं को चुनौतियाँ देकर उन सबको खण्डित करनेवाले सशक्त प्रणाली है।

इस विकेंद्रित अवस्था में भी व्यक्ति चिंताएँ सिर्फ आत्म केंद्रित है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, मीडिया एवं तकनीकी के विकास

रूपी रस्सी में बँधी मानव की व्यस्त ज़िन्दगी आज सर्वत्र नज़र आती हैं। इस व्यस्तता के कारण सारी मानव संवेदनाओं को खो बैठा है। आपसी संपर्क एवं संवेदनाओं को याद दिलाने केलिए एक-एक दिन मनाया जाता है। जैसे कि खुद की जन्मदात्री को याद करने केलिए "मदर्स डे"। वह भी मीडिया के ज़रिए मनाते हैं जैसे कि माँ के "मदर्स डे" बधाइया भेजकर, माँ के साथ सेल्फी लेकर फेसबुक में डालकर, लइकों को गिनगिनकर। यही तो बात है कि तकनीकी एवं माध्यमों के विकास के अंधी दौड़ में माध्यमीकृत यथार्थ को सब मानते हैं। साल के हर दिन माध्यमों केलिए किसी न किसी बात को लेकर "डे" मनाने का ही शौक बन गया है।

उत्तर-आधुनिकता को अनुपस्थिति की उपस्थिति भी माने जाते हैं। उदाहरण केलिए विश्वमानव संकल्पना, वैश्विक गॉव संकल्पना आदि सिर्फ और सिर्फ अमरिका को तीसरे राष्ट्रों की ओर अपना वर्चस्व दिखाने केलिए बनाए गए कल्पना मात्र ही है। जिसकी अनुपस्थिति में भी उसकी उपस्थिति के बारे में आज

चर्चाएँ चल रहे हैं। मूलतः यह संपन्न पश्चिमवाद का नया विचार, वैचारिक अस्त्र है जो विश्वविजय के लिए गढ़ गया है। तकनीक का पश्चिमवादि अश्वमेध। घोड़ा अमरिका का है और कोड़ा फ्रांस ब्रिटेन का। अपनी रौंद वह पूरी दूनिया में मार रहा है और "ग्लोबल कल्चर" में विचरण कर रहा है।

विभिन्न विद्वानों ने उत्तर-आधुनिकतावाद को ज्ञान और संस्कृति की एक दशा मानते हैं। जिसमें आधुनिक सामाजिक संस्थाएँ कमज़ोर हो जाती है तथा एक ग्लोबल या भूमण्लीकृत समाज का निर्माण होता है। ये लोग उत्तर-आधुनिकता को एक विखण्डित आन्दोलन मानते हैं जिसमें सैकड़ों फूल खिल सकते हैं तथा बहु संस्कृतियों का निवास हो सकता है। यह निरपेक्ष और अखण्ड़ित विचार के बजाय खण्ड़ित सांस्कृतिक तत्वों का स्वीकार तथा महानवृत्तांत का अस्वीकार है। महावृत्तान्तों के अस्वीकार के साथ-साथ आधुनिकता के केन्द्रवाद का अपकेंद्रण भी है। कहीं राष्ट्र राज्यों के सांस्कृतिक सीमाओं का विगलन है तो कहीं

सांस्कृतिक उपकेन्द्रों के स्थापना। मूलतः ये विद्वानगण इसे कोई विचारधारा से बढ़कर स्वयं उत्तर की उत्तर संरचना मानते हैं।

उत्तर-आधुनिक व्यक्ति स्वायत्तता को महत्वपूर्ण मानता है और उसके पक्ष में तर्क-वितर्क भी करती है। यह विचारधारा व्यक्ति को, सामाजिक तंत्र का पुर्जा न मानकर उसे अस्मितापूर्ण अस्तित्व प्रदान करती है। क्योंकि यह विचारधारा तो व्यक्ति केंद्रित भी माना जाता है।

पाश्चात्य विद्वान बौद्रिआ के मतानुसार उत्तर-आधुनिकतावादी अवधारणाओं पर विश्लेषण करते समय तीन महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना अनिवार्य हैं- प्रतिच्छाया या अनुरूपण (Simulation), अन्तः स्फोट (Impulsion) और अधि-यथार्थ (Hyper Reality)। जेम्सन के मतानुसार भूमण्डलीय अवस्था मानव के राष्ट्रीय-सामाजिक एवं वैयक्तिक स्वत्वों, मूल्यों को जीर्ण बनाते हैं। ऐसी एक अवस्था में देशीय संस्कृति को भी अपना मूल्य एवं अर्थ त्यागना पड़ता है। मनुष्य को अपना इतिहास भूलना पड़ता है। इसप्रकार की अवस्था को हम उत्तर-

आधुनिकतावाद कहते हैं। साहित्य के विविध विचारधाराओं के क्षेत्र में देरिदा के विखण्ड़नवाद को भी उत्तर-आधुनिक विमर्श माना जाता है। इस विचारधारा पर ज्याँ क्रोंकोइम ल्यॉतार की भी महत्वपूर्ण भूमिका हैं। उन्होंने आधुनिकता पर आक्रमण करके उत्तर-आधुनिक के नए फ्रांसीसी धर्म को प्रतिष्ठित किया है। उनके मतानुसार उत्तर-आधुनिक स्थिति तथाकथित महान वृत्तान्तों की विफलता और पराजय का परिणाम है, जो वैधीकृत आधुनिकता या नयी नींववाली आधुनिकता है।

उत्तर-आधुनिकता आज के धनाढ्यता की परिवर्तनीय एवं अपरिवर्तनीय स्थितियों को अभिमुख करते हैं, जो पूर्ण व्यापक एवं उत्तर-आधुनिकता का नेतृत्व करता है। आज का धनाढ्य व्यक्ति किस प्रकार आत्मकेंद्रित बन जाते हैं ये बात भी पहले बताए गए मानवीय स्वायत्तता के अंदर आते हैं। लेकिन उत्तर-आधुनिकता को समाज-राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में होनेवाले परिवर्तनों से जोड़कर देखा गया है। एक ओर से उत्तर-आधुनिकता को नवजात

शिशु या आधुनिकता की नवजात स्थिति मान गया है तो दूसरी ओर उसे आधुनिकता के भस्म से उत्पन्न।

उत्तर-आधुनिकता पर इतना विचार प्रस्तुत किया गया है। अब आई उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना की भारी। पाण्डेय शशिभूषण शीतांशू ने उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना के चार प्रमुख उपकरण के बारे में बताते हैं –

i. विमोहक लीलाभाव बनाम उत्पादन की सक्रियता,
ii. सांस्थानिक परम्परा का अतिक्रमण,
iii. सांस्कृतिक अनुशासन से पलायन,
iv. श्रवणशीलता बनाम चाक्षुषता।

प्रथम में ऐन्द्रियजन्य माया-मोह भाव है जिसके अनुपस्थिति में भी उपस्थिति जैसी क्रीड़ा है। विज्ञापनों को लेकर आज मानव सिर्फ यही करता है कि सतर्क होकर भी बॉट कल्चर के सिलसिले में सब कुछ भूलकर उसके पीछे दौड़ते हैं। जिससे समाज में उनको सम्मान मिलेगा। यही तो कहते हैं मानव बोध होने पर भी अबोध अवस्था में हैं। यह तो एक प्रकार की विमोहक लीलाभाव

है जिससे लोगों को उत्पादनों के पीछे उपभोक्ता बनकर दौड़ना पड़ता है। यह क्रीड़ा "विवेक के ज्ञानोदय" के विपरीत और वैज्ञानिक तथ्यपरता के विपरीत चलती है।

दूसरे में सीमाबद्धता को तोड़कर सीमातीतता की ओर प्रस्थान करने की बात आती है। सामाजिक संस्थाओं और परम्पराओं के चलती प्रथाओं को काटकर आगे बढ़ने की क्षमता को उत्तर-आधुनिकतावाद के दौर में रखते हैं। यद्यपि परंपरा से अतिक्रमण, साहित्य में पहले भी देखने को मिलते हैं। विभिन्न वादों ने पहले भी अपने-अपने ढ़ंग से परंपरा को तोड़ने की प्रवृत्ति करती आयी है। पर जिस प्रकार समग्रता में मूलच्छेद करने की नियत से उत्तर-आधुनिक प्रहार पर प्रहार करती है, ऐसा प्रहार साहित्य में इससे पहले कभी होता ही नहीं है।

आज यथार्थ से नहीं बाल्कि प्रतिच्छाया की ओर आकृष्ट होकर पलायन देखे जा सकते हैं। वही तो अपनी संस्कृतियों से भी होते जा रहे हैं। आज विश्वनागरिकता रूपी जो संस्कृति

रूपांतरित होते हैं, उसकी और गमन-आगमन होता रहता है जो अपनी संस्कृतियों से पलायित करके जाते हैं।

चौथे और अंतिम में चाक्षुषता और श्रवणशीलता की भारी है। उत्तर-आधुनिकता चाक्षुषता पर उतना बल नहीं देते हैं जितना श्रवण शीलता को मिलते हैं। रचनाओं में जो अनसुनी गूँज है उसे सुनना, सुनाना उत्तर-आधुनिकता केलिए महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि इस उत्तर-आधुनिक श्रवणशीलता की अपनी एक निश्चित दार्शनिक सैद्धान्तिकता और सक्रियात्मकता है।

उत्तर-आधुनिक आलोचना जैसे विस्तृत बात को नियमित रूप में वर्गीकृत करने की शीतांशु की जो प्रवृत्ति है, एक बहुत बड़ा योगदान ही है। क्योंकि इस आलोचना क्रम को संक्षिप्त रूप में समझाना आम बात तो नहीं है। बहुत सरल एवं आसानी से उन्होंने उत्तर-आधुनिक आलोचना का विचार-विमर्श किया भी है।

2.5.3.1. उत्तर-आधुनिकता: विशेषताएँ

उत्तर-आधुनिकतावाद की विशेषताओं को पालीवाल इस प्रकार उल्लेखित किया है -

1. नारी तथा दमित-दलित विषयों का गहरा अध्ययन,
2. पापुलर कल्यर तथा लोक कलाओं का मिलाप,
3. बहुलतावाद या बहुसंस्कृतिवाद,
4. विकेंद्रियता की सिद्धान्त दृष्टि,
5. वर्ग संघर्ष की अपेक्षा नस्ल-जाति-लिग भेद पर अधिक बल,
6. महान आख्यान तथा शाश्वतावादी समालोचना सिद्धान्तों से मुक्ति,
7. अर्थ की अनेकतता तथा अनिश्चितता,
8. बुद्धिवाद तथा पराभौतिकतावाद पर बढ़ता विश्वास,
9. विभेद और विभिन्नता,
10. स्थानीयता और क्षेत्रीयता पर ध्यान,
11. तकनीकी क्रांति में आस्था-कंप्यूटर युग का स्वागत,

12. विभिन्न जातीय संरचनाओं में मेल-जोल,

13. उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर निर्भय यात्रा,

14. यूरोपीय विचार क्रांतियों के पिछलग्गू बनने में ही मानव मुक्ति का स्वप्न,

15. इतिहास, संस्कृति, दर्शन, धर्म, कला, साहित्य की पुरानी अवधारणाओं एवं मूल चिंताओं से मुक्ति,

16. लोकप्रियता संस्कृति की ओर उन्मुखता,

17. युगल विपरीतता के सिद्धांत को स्वीकृति,

18. विखंड़नवाद की महत्व प्रतिष्ठा।

इन तमाम विशेषताओं के अध्ययन के ज़रिए पालीवाल उत्तर-आधुनिकतावाद के संपूर्ण पहलुओं का अध्ययन विश्लेषण करके उसे एक साथ जुड़ने की प्रक्रिया में सफल हुआ है।

उत्तर-आधुनिकतावाद का कुछ मूल तत्व है, वे हैं बहुलतावाद, स्वायत्तता, विकेंद्रीयता, स्थानीयता, विभिन्नता, युगल-विपरीतता

आदि। बहुलतावाद की मतलब है वैविध्यता। एक ही व्यवस्था के नीचे विविध प्रकार के लोग, मत, विचार, दर्शन की विविधता। बहुसांस्कृतिक अवधारणा भी इस बहुलतावाद के ही दूसरी कडी माना जा सकता है। भारत में ही देखे तो विभिन्न प्रांतों में विभिन्न प्रकार के लोग, विभिन्न प्रकार की संस्कृति देखने को मिलेंगे। इसप्रकार के वैविध्यताओं को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास वैश्विक संस्कृति में हैं। वैश्विक संस्कृति का मतलब बहुलतावादी संस्कृतियों का जुड़ाव माना जाना चाहिए। स्वायत्तता का प्रश्न तो अस्मिता एवं स्वत्व से जुड़ी हुई है। व्यक्ति चाहे कुछ भी करें, पाश्चात्य संस्कृति एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों पीछे दौड़े, लेकिन खुद की अस्मिता एवं अस्तित्व की तलाश सबके अंदर ही अंदर चालू ही है। आज की राष्ट्रीय-राजनीतिक छल-नीतियों से बचकर खुद की अस्मिता को अपनाने की इच्छा सबके मन में शामिल है। उत्तर-आधुनिकता तो इस इच्छा (Will) से जन्मी है।

विकेंद्रीयता तो उत्तर-आधुनिकता का सर्वश्रेष्ठ तत्व माना जाता है। क्योंकि आधुनिकता के केंद्रवाद का खंड़न करके ही

उत्तर-आधुनिकतावाद अपना पहला कदम रख दिया। समाज में वैविध्यता एवं बहुलता के पनपते वक्त एक बिन्दु पर केंद्रित चिंतनधाराएँ व्यर्थ मालूम पड़ता है। ऐसे संदर्भ में इस विकेंद्रीय दृष्टिकोण के साथ उत्तर-आधुनिकता आज आगे बढ़ रहे हैं।

स्थानीयता को विकेंद्रीयता से जुड़कर देखना चाहिए। "स्थानीयता एक ऐसा मुद्दा है जो अपनी जड़ों की ओर लौटने, स्थिति को समझाने में मदद करता है।"[14] अपने-अपने प्रांत को लेकर उसके विकास को लेकर चिंताएँ एवं तर्क वितर्क तो आज हर जगह होते रहते हैं। विभिन्नता भी इन सबसे जुड़ी हुई नज़र आती हैं। विकेंद्रीयता एवं विभिन्नता, दोनों का क्रियात्मक रिश्ता है। क्योंकि यह विभिन्नता ही हर समाज की पूरी जीवन प्रक्रिया की गति का निर्धारण करती है।

इस प्रकार उत्तर-आधुनिकतावाद के कुछ विशिष्ट मुद्दों, को लेकर वाचन करते तो लगा कि इन सबके बिना उत्तर-आधुनिकता का कोई संभावना भी नहीं होते होंगे। उत्तर-आधुनिकता को इतना महत्व इन सबके कारण ही देते हैं कि यह समाज के चलते

परंपराओं से अलग हटकर कुछ नए की तलाश में है। इस तलाश को, इस जिज्ञासा को, इस प्यास को साहित्य जगत पूर्ण रूप से अपनाते हुए नज़र आते हैं।

2.5.4. भूमण्डलीकरण (Globalisation)

बीसवीं एवं इक्कीसवीं सदी के ये दौर वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का माना जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास को ही इसका महत्व माना जाता। भारत की परंपरागत सामाजिक संस्कृति मूलसापेक्ष है तो यह भूमण्डलीय संस्कृति मूल्य निरपेक्ष जाना जाता है। इसे 'भू' का मण्डीकरण कहकर आलोचकगण भूमण्डलीकरण का व्यंग्य भी उठाते हैं। इसे अपसंस्कृति भी मानते हैं। सूचना प्रौद्योगिगी एवं संचार माध्यमों द्वारा भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण प्रक्रिया इतनी तीव्र गति से चलते नज़र आते हैं। इस भूमण्डलीकरण तो वास्तव में अमरिकीकरण का दूसरा नाम माना जाना चाहिए, जो 1995 के विश्व व्यापार संघटन (World Trade Organisation) के बाद हुए अमरिकी वर्चस्व के कारण विकसित हुआ है। विश्व के अमरिकीकरण का

आर्थिक आधार भी यह संघटन ही था। भूमण्डलीकरण को परिभाषित करते हुए पुष्पपाल सिंह ने कहा है कि- "यह विश्व के विभिन्न देशों में एक दूसरे पर बढ़ती आर्थिक निर्भरता तथा राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर उत्पादों, पूँजी का अबाध आदान-प्रदान है।"[15]

इस भूमण्डलीकरण के ज़रिए आज गाँवों का क्षति एवं शहरों का विकास होते जा रहे हैं। भूमण्डलीकरण का प्रमुख विशेषता भी यह है कि बढ़ते शहरीकरण गाँवों को शहर के रूप में बदलाकर विश्वग्राम रूपी झूठी संकल्पना बनाने के विड़म्बना एवं साजिश हमारे सामने आज चालू है। मतलब, जहाँ गाँव का कोई अस्तित्व तक नहीं है वहाँ "विश्वग्राम" रूपी संकल्पना एक झूठी कडी के रूप में विकसित हो रहे हैं। सच कहे तो वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण रूपी झंझलाहट हमारी सांस्कृतिक समृद्धि एवं वैविध्यता सबको नष्टप्राय कर देता है एवं एक प्रकार की अपसंस्कृति का विकास कर देता है। वह भी एक झूठी एकरूपता के नाम पर। खुद की संस्कृति को नष्ट करके, खुद की धरती को

छोड़कर खुद की नागरिकता को नकार करके विकास कहाँ से आएगा?

भूमण्डलीकृत अवस्था में आज सबकुछ बदल गया है। हमारे मूल्य, मान्यताएँ, सोच-विचार, परम्परा, भाषा, भोजन सब कुछ। फास्टफुड़ कल्चर, ब्रांटकल्चर, बाजारीकरण आदि सब भूमण्डलीकरण के सिलसिले में आई बदलाव ही है। खुद की परंपराओं को तोड़कर कुछ ओर पाने की दौड़। इस अंधी दौड़ में हम अपने घर-परिवार, रिश्ते-नाते, मेले-ठेलों सबसे विमुख होकर दूर चले जाते हैं। एक दूसरे के आपसी संबन्ध तक टूटता जा रहा है।

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी के मतानुसार "भूमण्ड़लीकरण के नाम पर तीसरी दुनिया के देशों का नव पश्चिमीकरण हो रहा है। भूमण्डलीकरण की संस्कृति स्थानीय संस्कृति को स्थानांतरित कर रही हैं। उस खत्म कर रही है। आर्थिक साम्राज्यवादी उदारीकरण के कारण मनुष्य की पूरी दुनिया बदल गई है। अब आदमी-आदमी नहीं रहा, उपभोक्ता हो गया है।"[16]

2.5.5. ब्रांटड़ कल्चर एवं विज्ञापन

पहले ही जिक्र किया है कि भूमण्डलीकरण से जुडे हुए बात है ब्रांटड कल्चर एवं विज्ञापन। मतलब यह है कि भूमण्डलीकरण के कारण ही विदेशी संस्कृति जैसे ब्रांटड कल्चर, फास्टफुड़ कल्चर आदि सब भारत में पैर रखे हैं। छोटी-छोटी पर्स से लेकर हर चीज़ सुप्रसिद्ध ब्रांटों के बनाए हुए तो आम आदमी भी वही इस्तेमाल करेंगे जो उनके मूल्य से, गर्व से जुड़े हुए हैं। इसलिए ही आज हमारा पूरा का पूरा संसार बाज़ार बन गया है और विभिन्न मॉलस्, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों से भरी हुई है। लेकिन मानव क्या खरीदना चाहते हैं, यह बात आज मानव पर नहीं बल्कि विज्ञापन पर आधारित बात बन गया है। विज्ञापन की दुनिया, या दुनिया आज विज्ञापन में चल रहा है। ऐसी दुनिया में जीकर विज्ञापन से विमुख रहना मानव मस्तिष्क केलिए मुश्किल काम बन जाएगा। इस मज़बूरी को ताकत से छीनकर विज्ञापन आज मनुष्य को इस प्रकार नचाता है कि उन्हें क्या खाना है, पीना है, क्या पहनना है सब कुछ विज्ञापन ही तय व लगा है।

उद्योग जगत की सफलता भी आज विज्ञापन पर आधारित है। प्रोफेसर बेंजामिन ने हमेशा यह बताता है कि "विज्ञापन भूमण्डलीकरण के दौर में बच्चों को भ्रष्ट, वयस्कों को बचकना बनाता हुआ, सभी नागरिकों को पूरी तरह बिगाड़ रहा है।"[17] क्योंकि आज खुलेपन को बहुत महत्व दिए जाते हैं। सिर्फ बातों पर ही नहीं बल्कि वेश-भूषा में भी खुलेपन सीमातीत एक फैशन बन गया है। यही बात विज्ञापन जगत एक औज़ियार बनाते हैं और अपनेलिए एक ग्लैमरस जगत को रूपीकृत कर देता है। वहाँ औरतों की खुलीपन यानी नंगेपन का इस्तेमाल करके अपने उत्पादन की बिक्री बढ़ाते हैं जौसे कि नंगाई और कामवासना परोसकर मानव मन को उत्पादों की ओर आकृष्ठ करा देता है। इसप्रकार आज मानव शरीर में खून के जैसे ही ब्राण्टड कल्चर एवं विज्ञापनों का महत्व बढ़ते जा रहे हैं कि शरीर और दिमाग दोनों में पूरी तरह विज्ञापन कब्जे में कर देता है।

2.5.6. उपभोक्तावादी संस्कृति (Consumer Culture)

विश्व बाज़ारवाद का पूरा मामला आज सांस्कृतिक वर्चस्ववाद में बदल गया है- एक सांस्कृतिक उद्योग के बीच संस्कृति बना नहीं, बिक रही है, व्यक्ति अब वस्तु बनकर, उपभोक्ता बनकर समाज के सामने खड़ा है। यही है उपभोक्तावादी संस्कृति। पालीवाल के मतानुसार "उपभोक्तावादी संस्कृति" का निशाना है। संस्कृति का संहार और स्मृति-विहीन मानव की रचना। भारत के संदर्भ में कहे तो यहाँ के त्योहारों को भी आज के भूमण्डलीकृत समूह बेच देते हैं। त्योहारों को बाज़ारीकृति करके मूल्यों को बदलने का चाल चल रहे हैं। सब आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में हैं। त्योहारों को ऑनलाईन द्वारा मनाने की सुविधा रूपी दुविधा आज मानव जाति को आलसी बना रहे हैं। नए बाज़ार में जनसमूह द्वारा की जानेवाली उपभोगिता और आस्वाद का बोला-बोला चल रहा है। यह उपभोगवादी संस्कृति अन्य चलती संस्कृतियों को भी ज़बरदस्त अपने साथ जुड़ाने की कोशिश कर रही है। आज अर्थशास्त्र ऐसे मानव की सृष्टि करते हैं जो अपनी ज़रूरतों को पूरा करनेवाला,

बाज़ार में विचरण करनेवाला एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में। मनुष्य तो आज सिर्फ और सिर्फ उपभोक्ता बन गया है जो आत्मरति के शिकार बनकर खुद की संरचना करते हो। क्योंकि आज समाज हर विवेकशील व्यक्ति से भयभीत है, वह कहीं उपभोगवादी संस्कृति के खिलाफ बन जाए तो मुश्किल हो जाएगा न? बाज़ार तो वह संरचना है जो ठोस वास्तविकताओं को नकारकर एक प्रतीयमान वास्तविकता पैदा करती है और व्यक्ति को पहले उपभोक्ता बनाने हैं और बाद में उत्पाद। अगर विवेकशील है तो इन सारी बातों का पता चल जाने पर क्या होगा? इसलिए यह संस्कृति विज्ञापन के ज़रिए हर व्यक्ति को जाल में फंसाती रहती है। लेकिन व्यक्ति से उत्पाद तक की यह बहिर्यात्रा प्रगति या विकास नहीं बल्कि अपूरणीय विघटन का प्रमाण है।

यह संस्कृति ग्लेमर, स्टेटस और ज़रूरत बनकर इस तरह घरों में घुस गई है कि, मासिक बजट के एक बड़े हिस्से पर कब्जा कर बैठा है, लेकिन कोई डरा-धमाकर तो नहीं बल्कि

मामूली किस्तों के नाम पर बड़ी-बड़ी सुविधाओं का चुग्गा देकर। उपभोक्तावादी संस्कृति में बाज़ार व्यक्ति केलिए नहीं बल्कि व्यक्ति, बाज़ार केलिए जैसे बदल गया है। इस संस्कृति के कारण वैश्विक मानव (Global Man) को वैश्विक समाज (Global Society) के यहाँ के ब्रांटड़ चीजों के साथ भी संबन्ध की उम्र छोटी होती जा रही है। क्योंकी Use & throw संस्कृति एक नया विचार-दर्शन बनकर मानव आगे खड़े हैं। चीज़ों के साथ ही नहीं बल्कि रिश्ते-नाते, मानव संबन्ध में भी यही हालत है जो टूट फूट निकले हैं।

2.5.7. उत्तर-औद्योगिकीकरण (Post Industrialisation)

औद्योगिकीकरण या व्यवसायीकरण की संकल्पना तो यथार्थता को रूपधारम करके आधुनिक काल में भारत में आयी है। इसके बाद इक्कीसवीं शदी के प्रारंभ में एक नई क्रांति के रूप में उत्तर-औद्योगीकरण यहाँ पथारे गए हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अति-प्रसरण एवं नव तकनीकी विकास भी इस विकास का

प्रमुख कारण बन गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन तो विदेशी वर्चस्व को एक ओर बार फिर यहाँ की ओर गहराई से लाने की एक का बनते जा रहे हैं। इस विदेशी कंपनियों से, भारतीय उद्योगों पर आनेवाले संकटों को लेकर उत्तर-औद्योगीकरण की बात चलते हैं। इस प्रकार के विकास के कारण मुनाफा तो सिर्फ और सिर्फ विदेशी कंपनियों को ही मिलते हैं। भारत में तो कुछ अमीर लोगों को भी फायदा मिला होगा लेकिन बाकी सब तो गरीबी की गहराइयों में डूबते नज़र आते हैं।

उत्तर-औद्योगीकरण के जाल के बारे में कृष्णदत्त पालीवाल का कथन इस प्रकार है- "राजनीतिक स्तर पर यह भरोसा दिलाया गया था कि इससे लोकतांत्रिक व्यवस्था मज़बूत होगी, कृषि उद्योगों के विकास से दरिद्रता के नाश होगा, पर स्थिति एकदम इसके विपरीत है। राजनीति में अपराधीकरण और भ्रष्टाचार का महाबली रावण उठ खड़ा हुआ है- इसके सामने राम लाचार है फैसला होता है विश्व-राजनीति केंद्र वाशिंगटन में और इस राजनीति का आधार है- बहुराष्ट्रीय निगमों की सत्ता को दृढ

बनाना। दुनिया की भलाई का हर फैसला देखते-देखते अमरिकीवाद के हित का रंग ले लेता है।"[18]

इस युग में समाज, संस्कृति, राजनीति, कला साहित्य अर्थ-व्यवस्था सब में परिवर्तन आई है। एक "ग्लॉबल पावर स्ट्रायर" हमारी अभ्यस्त जीवन शैलियों को पूरी तरह बदल दिया है। ऊँची दर्जा प्राप्त करने की सिलसिले में लापटॉप के साथ जीनेवाले युवागण चारों और विद्यमान है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने उनका पूरा का पूरा लाभ उठाकर अपने फायदों केलिए युवालोगों को पालने की दिखावा करते हैं। अपने कम्पनियों को किसी न किसी प्रकार विकसित करने की सोच के अलावा ओर कोई उद्देश्य उनको नहीं है। विदेशी कम्पनियों में नौकरी पाने केलिए आज के नवजवान लोग दौड़ते हैं। जिनको नौकरी प्राप्त होते हैं वे दर्जा बढ़ाने के हेतु दौड़ते हैं। दौड़ना तो हर कहीं बहुत ज़रूरत बन गया है। यही दौड़ उत्तर-औद्योगीकरण की उपलब्धि है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय एवं विदेशी कंपनियाॅ भारतीय उद्योगों को खुली तरह प्रतिस्पर्धा में पछाड़ रही हैं। लेकिन सच तो यह है कि इन

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आक्रमण पुराने ईस्ट इंडिया कम्पनि के आगमन से भी बहुत गुना अधिक शक्तिशाली है। इससे मुक्त होना भारतीय बाज़ार केलिए कभी संभव ही नहीं है।

2.6. उत्तर-आधुनिकतावाद: साहित्य संदर्भ में

पिछली शती के अंतिम दशकों से हमारे देश में जो भूमंडलीय स्थितियाँ बनती चली गई हैं, साहित्य की चिंता के केन्द्र में वही प्रमुख रूप से रूपायित हुई है। उत्तर-आधुनिक साहित्य एवं दर्शन केलिए विकेंद्रीकरण तथा अविरचना दो महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। उत्तर-आधुनिकता तो "साहित्य के अंत" की घोषणा के साथ आई थी। जैसे कि इलियट ने "उपन्यास की मौत", एड़मंड़ विल्सन ने "काव्य एक मरती हुई विधा है", टी.एच. लॉरेन्स ने "मानव सम्बन्धों का साहित्य मर गया है" आदि अनेक आलोचकों ने उत्तर-आधुनिक संदर्भ में घोषणा किया है। आज के वातावरण में तकनीकी विकास, सूचना प्रबन्धन, बाज़ार-वाद, भूमण्डलीकरण, उत्तर-औद्योगीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि

ने मानव-जीवन मूल्य, जीवन दर्शन आदि सब में जो परिवर्तन लाया है इन सबका उत्तर-आधुनिक साहित्य में भी प्रभाव डाला है।

अमरीकन साहित्य के अंत के संदर्भ में आल्विन कर्नेन का कथन इस प्रकार है-"विगत कुछ वर्षों में अमरिका में साहित्य की मृत्यु हो चुकी है। कुछ तो अपनी हाथों इसकी मृत्यु हुई है, कुछ बाह्य मामलों के कारण। सामाजिक तथा तकनीकी परिवर्तन ने शेष कमी पूरी कर दी है, जिसे हम उत्तर-आधुनिकता की संज्ञा से जानते हैं।"[19]

इस काल के साहित्य में जीवन के कुत्सित और कभी-कभी अतिशय कल्पित अशोभनीय यथार्थ का चित्रण साहित्य में हुआ करता है। भारतीय जीवन में आज सबसे अधिक परिवर्तन सांस्कृतिक पक्ष में आया है। नैतिकता, परम्परा, पुरानी मान्यताओं की ओर युवागण मुड़कर तक नहीं देखते हैं। आज का मानव सारे पुराने मूल्यों को नकारकर नए-नए मूल्यों को ढूँढकर जाता है। व्यक्तित्व विघटन, घुटन, कुण्ठा आजि का शिकार बनते जा रहे

मानव को साहित्य दिशा प्रदान करने की कोशिश कर रही है। इन सबका खुला चित्रण आज के साहित्य में विद्यमान है।

उत्तर-आधुनिक साहित्य इन सारी परिवर्तनों और सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन की विसंगतियों और विकृतियों को नए ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इसकेलिए साहित्य की हर विधा सफलतापूर्वक भूमिका निभाती हैं। चाहे वह कथा साहित्य हो या पद्य-साहित्य; दोनों अपनी शैलियों द्वारा समकालीन समय के साथ दौड़ते हैं। वैश्विक गाँव (Global vision) की अवधारणा ने जो हमारी पश्चिमीकरण, अमरिकीकरण किया उसका चित्रण और तीव्र प्रतिरोध साहित्य की प्रत्येक विधा में बड़ी गहराई से विवेचित हुई है। कथा साहित्य की प्रवृत्ति तो तत्कालीन समस्याओं को तीव्रगति में पकड़ना इसलिए उसमें अपने समय की चिंताएँ एवं प्रश्न अधिक गहनता से चित्रित एवं विश्लेषित होते हैं।

भयातू शंकरन ने आलोचना पर अपनी मलयाली पुस्तक "आधुनिकतयुडे जीर्ण मुखम्" (ആധുനികതയുടെ ജീര്ണ്ണമുഖം)

में आधुनिकता के अपकर्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। "अति-आधुनिकता के *(Extreme Modernism)* एक युग के बाद अब लेखक सीधे शब्दों में अपना संदेश पहूँचाने का इच्छुक हैं। यहाँ आधुनिकतावादी विचार पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया कि कुछ भी जो साधारण हो स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। अब यह स्थापित हो गया कि साधारण पाठ *(Text)* बहुत जटिल पाठेतर *(Extra textual)* संरचनाएं प्रस्तुत कर सकते हैं। कविता में लिखे गए सांस्कृतिक संदर्भों के अनेक अर्थ हो सकते हैं। वस्तुतः वर्तमान लेखक अपने सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व का पूर्ण अवलोकन प्रस्तुत करते हैं। बंगला समालोचना के गंगेयी पात्रा के दल ने इसे "संपूर्ण कविता" *(Total Poetry)* कहा है।"[20]

वर्तमान भारतीय कविताओं में शहरीय भावना, व्यग्य उक्ति, सामयिक एवं शाश्वतता की समस्याओं की चर्चा भी लगातार होती रहती है। इन्द्रनाथ चौधरी के मतानुसार- "अब उत्तर आधुनिकता के युग में स्वाभाविक बनने, भारतीय रहने, सामान्य जन के निकट आने और सामाजिक रूप से चेतन होने का प्रचार

हो रहा है। वस्तुतः उत्तर-आधुनिकता ने भारतीय होने की भावना जगा दी है। अब हमारे पास दलित साहित्य है जो एक समुदाय के उत्पीड़न को धोखा देता है और में पिछड़े एवं जाति-निष्कासित लोगों केलिए व्याचपूर्ण एवं यथार्थवादी भविष्य सुनिश्चित करने की मांग करता है। अब की लेखक इस विशाल देश के उपेक्षित क्षोत्रों के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं और अपने जीवन-अनुभवों के बारे में लिखते हैं।"[21]

उत्तर-आधुनिकता में कवि किसी निश्चित-काव्य प्रकार में रचना कहीं करते, मुक्त रूप से सर्जन करते हैं। काव्य रचना में जो अधूरी कल्पनाएँ होंगी उसे पाठक खुद कल्पना करके, अपने अनुभवों द्वारा समाधान ढूँढ़कर समझना पड़ता है। उत्तर-आधुनिक कविताएँ वाद-विहीन मानना पड़ेगा। दलित साहित्य, आँचलिक रचनाएँ, नारी-विमर्श की ज्वलंत रचनाएँ इस वाद का परिणाम माने जाते हैं। हमने पहले ही बताया कि आज कृति का अंत हो रहा है। पाठ, कृति का जगह ले रहा है। पाठ और विखण्ड़न उत्तर-आधुनिकतावादी है। साहित्य और कला तो आज मुनाफे से

सम्बन्ध हो गए हैं। वे जितना अधिक मुनाफ़ा देते हैं उतना हो मूल्यवत सिद्ध होता है। उत्तर-आधुनिक रचनाकार जो पाठ लिखते हैं उसकेलिए कोई भी पूर्वनिर्द्धारित नियम लागू नहीं है। कोई परंपरागत रीति शैली नहीं है। हर कृति खुद के अनुकूल नियम खोजती है या खुद केलिए नियम बनाती हैं। लेखक तो बिना नियमों के खोल-खेला जाता है। संभावना तो होंगे पर संभव नहीं हो जाएगा।

वास्तव में आज समाज की शक्ति और सत्ता के केन्द्र के बीच मोहभंग की स्थिति आ गई हैं। आज का रचनाकार तो एक प्रकार के अलगाव के बीच यथार्थ की दुनिया की तलाश करता है और अपने आत्मनिर्वासन और आत्महत्या से संघर्ष करते नज़र आते हैं। यह स्थिति उत्तर-आधुनिक साहित्य का ही है।

2.7. उत्तर-आधुनिक हिन्दी उपन्यासकार एवं उपन्यास एक परिचय

हिंदी में उत्तर-आधुनिक विचार धारा का विकास बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में हुआ था। लगभग 1980 से लेकर उपन्यास

जगत उत्तर-आधुनिकता के साथ आगे बढ़ रहे हैं। साहित्य को समय सापेक्ष माना जाता है। उसी प्रकार हर काल का उपन्यास उस समय के सारी प्रवृत्तियों को लेकर या अपनाकर चलते हैं। उत्तर-आधुनिक उपन्यास भी इन सभी परिवर्तनों को लेकर उपन्यास रचना करते हैं। तकनीकी दबाव से पीड़ित मनुष्य के पराजयबोध का चित्रण उत्तर-आधुनिक उपन्यासों में पनपते हैं। पहले तो उत्तर-आधुनिक स्थितियों के प्रति एक फैशनेबुल उत्सुकता थी। लेकिन अब इस झंझलाहट को पूर्ण रूप से समझने के कारण अधि यथार्थता की ओर उपन्यासकार अग्रसर है। जिस प्रकार तकनीकी तथा भूमण्ड़लीय पूँजीवाद ने दुनिया के तमाम देशों की भौगोलिक सीमाओं को हिल एवं सांस्कृतिक सीमाओं को तोड़ने का प्रयास किया उसी के उसी प्रकार उपन्यास उन सबको खुली ढंग से बताने का प्रयत्न भी शुरू कर दिया।

भारतीय समाज की जो ऐतिहासिक अवधारणा है वह आज अनुपयोगी एवं अप्रासंगिक हो गई है। क्योंकि आज ऐतिहासिक अवधारणा का नहीं बल्कि औद्योगिक, संचार माध्यमों एवं बाज़ार

में आए नए ब्रांटड चीज़ों की ओर पूरी दुनिया आकृष्ट है। वैश्विक बाज़ार का मूल तो विभिन्न क्षेत्रीयताओं को बाज़ार बनाकर मुनाफ़ा कमाना मात्र बन गया है। उत्तर-आधुनिक उपन्यासकार बिना कोई नियम, इन सारी बातों को पाढ़कों के सम्मुख रखते हैं।

चन्द्र किशोर जायसवाल के उपन्यास "पलटनियाँ" (2008) के केन्द में गाँव है। यह बदलतेत हुए ग्रामीण समाज की कहानी है जो तेज़ी से कस्बे और नगर में बदल रहा है।

उपभोक्तावाद के चेहरे की भयावहता को उदयप्रकाश ने "पीली छत्तरीवाली लड़की" में प्रभावी ढंग से उकेरा है। उपन्यास में उत्तर-आधुनिकता द्वारा आख्यानों के अंत की घोषणाओं तथा उपभोक्तावाद-बाज़ारवाद को जीवन में आए विस्तार को पूरी अनुभवजन्यता तथा सघनता के साथ प्रकट किया है।

गुलामी के खिलाफ एक लम्बी लड़ाई के इतिहास की विरासत को भूलकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों-उद्योगपतियों के आकर्षण व रहस्यमय मकड़जाल को व्यक्त करनेवाला एक ओर उपन्यास है प्रियंवद का "परछाई नाच"। इसके औपन्यासिक विषय

में पिछ्ले सदी के अंतिम दशक में पनपनेवाला बाजडारवाद ही है जिसके तहत देश-विदेश पूँजीपति देश की आम जनता को एक नई गुलामी में जकड़ना चाहते हैं।

कमलेश्वरजी कृत "अम्मा" (2006) तो एक फिल्मी उपन्यास के रूप में ख्याति आर्जित की है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से लेकर आज की पीढ़ि तक की कहानी है। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय की शांता नामक औरत अपनी घर-परिवार को संभालने केलिए सहती परेशानियों, समस्याओं, अंग्रेज़ी राजनीति विसंगतियों से लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी में आई मूल्यों के बदलाब, उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास आदि का चित्रण तीन पीढ़ियों के ज़रिए कमलेश्वर ने किया है।

विभूतिनारायण राय कृत "घर" समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य महत्वपूर्ण हस्ताक्षर माना जाना चाहिए। मध्यवर्गीय परिवार के खण्ड़न-मण्ड़न, घर के लोगों की मानसिक तनाव, अलगापन, कुंठाग्रस्त ज़िन्दगी, अकेलापन आदि को लेकर उपन्यास अपनी यात्रा करते हैं। परिवार में चार सदस्य रहकर भी चारों एक

दूसरे से अलग हटकर अपनी-अपनी ज़िन्दगी जीते हैं। उत्तर-आधुनिकता व्यक्तियों को जिस प्रकार अकेला कर देता है इसका ज्वलंत उदाहरण है प्रस्तुत उपन्यास "घर"। नाम "घर" होने पर भी इनकेलिए (पात्रों केलिए) ये सिर्फ मकान है। न कोई पारिवारिक अपनापन न कोई प्यार। सिर्फ चार दीवार के अन्तर सोते जागते प्राणियाँ रह जाते हैं। इसमें न कोई प्रधान पात्र भी है। घर के चार सदस्यों का अलग-अलग दृष्टिकोण विभिन्न अध्यायों के ज़रिए व्यक्त किया है। यहाँ "घर" शब्द ही "मकान" के रूप में तब्दील होकर रह गया है। एक ही छत के नीचे बिना कोई संवेदना से चार "प्राणियाँ" रह रहे हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं की ओर तीखा विरोध विभूती नारायण राय अपने उपन्यास द्‍वारा किया है।

राजेन्द्र मोहन भटनागर कृत "वेलाण्डाईन्स डे" भी संवेदशीलन मनुष्य के प्राकृतिक कुरूपताओं का वर्णन है। "वेलाण्डाईन्स डे" के संदर्भ में विभिन्न परिदृश्य में घटित-घटनाओं का चित्रण उपन्यास में किया है। "वेलाण्डाईन्स डे" नामक एक

भ्रम को लेखक व्यर्थ स्थापित करके सच्चे प्यार एवं मानवमूल्यों को एक "डे" दिन समेटने की उत्तर-आधुनिक प्रयत्न का खण्ड़न करना लेखक का उद्देश्य माना जाना चाहिए।

रवीन्द्र कालिया अपना नया उपन्यास "17 रानडे रोड़" में मुम्बाई के महानगरीय जीवन के विविध पक्ष प्रस्तुत करते हुए कथा के केन्द्र में मुम्बाई के ग्लैमर वर्ल्ड को रखते हैं। लेकिन इस पेज़ त्री दुनिया से लेकर वहाँ के चाल की ज़िन्दगी तक लेखक अपनी कलम रूपी कैमरा द्वारा खींचने का प्रयास इसमें किया गया है।

प्रकाश मनु का "यह जो दिल्ली है" (1993) पत्रकारिता जगत की घिनौनी वास्तविकताओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में पत्रकारिता जगत् में व्यक्त मूल्यहीनता, नए पत्रकारों का शोषण और एक ईमानदार पत्रकार के इस परिवेश की विरूपताओं से संघर्ष इस उपन्यास में बहुत संजीदगी के साथ चित्रित किया है।

1986 में कलम कुमार का पहला उपन्यास "अपार्थ" और उसके बाद "आवर्तन" (1992), "हैमबरगर" (1996), "यह खबर नहीं" (1999) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। "अपार्थ" में पारिवारिक परिवेश की, उस अमानवीय स्थितियों का अंकन किया गया है जो मनुष्य को आत्महत्या की ओर ले जाती है। "आवर्तन" में कालेज की पृष्ठभूमी में दाम्पत्य और दाम्पत्येतर सम्बन्धों का द्वंद्व का चित्रण है। भारतीय और पाश्चात्य जीवन दृष्टि के अन्तर और भारतीय जीवन दृष्टि की श्रेष्ठता में लेखक का विश्वास भी उपन्यास में व्यक्त हुआ है। "हैमबरगर" में पाश्चात्य परिवेश के भारतीय नारी संघर्ष वहाँ के परिस्थितियों के अनुकूल खुद को बनाने का संघर्ष एवं अपने पहचान को बनाए रखने की कोशिश का अंकन इसमें हैं। "यह खबर नहीं" में समकालीन व्यवस्था में फैली सडाँध का अंकन है, जो राजनीतिक अपराधीकरम, भ्रष्टाचार एवं षड्यंत्र के रूप में, प्रशासन में रिश्वत, राजनीतिज्ञों की खुशामद और सार्वजनिक धन की लूट आदि के रूप में व्याप्त है। इस प्रकार कमल कुमार उत्तर-आधुनिक जगम्

में व्याप्त हर समस्याओं का एक-एक पहलू को अपने औपन्यासिक संपत्ता के जरिए व्यक्त करता है।

विभाशु दिव्याल हिंदी औपन्यासिक जगत के नया कदम है, उनका उपन्यास "गाथा लंपट तंत्र की" (2012) चार लड़कों के माध्यम से देश के भ्रष्टतंत्र पर ऊँगली रखते हुए युवा आक्रोश को वाणी देते हैं। जनता के हाथ से ज़मीनों को निकालना, जंगलों का छिनते चले जाना, माँल संस्कृति और उपभोक्तावाद का बढ़ना खेल आदि उपन्यासकार की चिन्ता का बिषय बनते जा रहे हैं।

वीरेन्द्र सक्सेना अपने उपन्यास त्रयी "खंडित राग" (1989), "खराब मौसम के बावजूद" (1991), "खोजा तिन पाइयाँ" (1995) में विवाह के कुछ ही दिनों में समाप्त प्यार और दाम्पत्य जीवन का तनाव, आज के व्यस्त ज़िन्दगी की विसंगतियाँ आदि का चित्रण किया है।

विजयशर्मा का उपन्यास "दिमाग में घोंसले" (2010) कोलकत्ता के राजनीतिक परिदृश्य, विशेषतः युवा आक्रोश और यहाँ चल रही राजनीतिक सरगर्मियों, नौकरशाह का चरित्र, वहां पनप

चुकी हिंसा की राजनीति, राजनीति का अपराधीकरण, शहर के चरित्र को मटियामेट करती भूमण्ड़लीकृत अपसंस्कृति, मॉल और ब्रांटड़ संस्कृति आदि का बड़ा कुशल चित्रण मात्र 90 पृष्ठों में उपन्यासकार समेटते हैं।

द्रोणवीर कोहली के "नानी" उपन्यास (2000) दिल्ली में अमीर बनकर जीते महिला सरस्वती की कथा है जो अपनी बच्ची ओर पोथी को देखने, पालने केलिए उनके यहाँ अमरिका में जाकर एक परिचालिका के रूप में रहते हैं। अपनी ही बेटी एक परिचारिका जैसे उनसे व्यवहार करती है। वृद्ध समस्या ही प्रस्तुत उपन्यास के जरिए लेखक दर्शाना चाहता है। लेखक यह स्पष्ट करता है कि अमरिका जैसे विकसित और समृद्ध देश में पूरा जीवन यांत्रिक हो रहा है। उनमें से न संवेदना, न शील, न राग, न रस, न रिश्तों की मर्यादा की प्रतीक्षा कर सकते हैं। आज तो भारतीय पारिवारिक जीवन भी लगभग इस प्रकार ही है। अपना अन्य उपन्यास "चौखट" (1981) में उपन्यासकार "सुमित्रा" नामक आधुनिक नारी के खुले विचारों, मुक्ति की चाह, वैचारिक

मतभेद आदि के कारण पति को छोड़कर दिल्ली में नौकरी करते जाने की कथा है। साथ ही इसमें गाँधीवादी विचारधार को काटनेवाले आधुनिक मानव का चित्रण भी है। राजनीतिक षड्यंत्रों का खुला वर्णन भी प्रस्तुत उपन्यास के जरिए लेखक ने किया है। गिरिराज किशोर का लघु उपन्यास "स्वर्ण-मृग" वैश्वीकरण की अपसंस्कृति का चित्रण करते हुए धन के पीछे अंधी दौड़ पड़ती नई पीढ़ी की दुर्नियति का बयान बड़ी कुशलता से करता है। "चैटिंग" की ईमेल संस्कृति में पल रही पीढ़ी को आए दिन भरमानेवाले जो मेईल्स आते हैं, उसमें कैसे लाखों-लाखों चूना लगाकर आदमी को स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़-दिया जाता है-इन सब स्थितियों का त्रासद चित्रण उपन्यास उपलब्धि है।

इस प्रकार उत्तर-आधुनिक परिदृश्यों में युवा लेखकों की रचना बहुत अधिक आ रही है। जो आधुनिक वातावरण को अपनाकर, ऐतिहासिकता के खंड़न करके, परम्परा को तोड़ करके, वास्त-विकताओं को अपना सकें। लेकिन सिर्फ और सिर्फ लेखकों का ही नहीं बल्कि महिला उपन्यासकारों की भी इसमें बहुत बड़ा

योगदान दिया है। अगला कदम महिला उपन्यासकारों की उत्तर-आधुनिक काल की भूमिका को मापना है।

2.8. उत्तर-आधुनिक महिला उपन्यासकार एवं उपन्यास

महिला उपन्यासकार ने भी इस आन्दोलन में सशक्त रूप में भागीदारी की है। उत्तर-आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति, विज्ञापन जगत, उत्तर औद्योगीकरण की झंझलाहट आदि में सबसे अधिक प्रताड़ित वर्ग है नारी। सिर्फ आज नहीं परम्परागत दृष्टि से देखे तो हर जगह स्त्री का शोषण हो रहा है। चाहे घर में हो या नौकरी में स्त्री खुद अपने ऊपर हो रहे शोषणों को लेकर आज समाज के सामने आई है। इसके सशक्त हस्ताक्षर है बढ़ती संख्या में महिला उपन्यासकारों का हिंदी साहित्य जगत में प्रवेश। प्रमुख महिला उपन्यासकार एवं उनके उत्तर-आधुनिक उपन्यासों का परिचय नीचे दिए हुए हैं।

नासिरा शर्मा का "अक्षयवरट" (2000), "कुइयॉजान" (2005), "ज़ीरो रोड़" (2008) आदि प्रमुख है। अक्षयवट में इलाहाबाद शहर को केन्द्र में रखकर जीवन की द्वन्द्वात्मकता को प्रस्तुत किया

है। क्योंकि वहाँ एक ओर मानवीय मूल्यों की विरासत है, दूसरी और वर्तमान जीवन व्यवस्था की विकृतियाँ हैं। "कुइयाँजान" में आधुनिक तकनीकी के बढ़ते प्रवाह के कारण हुई समस्याओं का जिक्र किया है। ज़ीरो रोड़-दिल्ली जगत की एकाकिपन, वहाँ के लोगों की मानसिक कुंठाएँ आदि को लेकर आगे चलते हैं।

मंजुल भगत का औपन्यासिक विधाएँ भी उत्तर-आधुनिक तौर पर आती हैं। 'लेड़ीज़ क्लब' उनका दूसरा उपन्यास है। जिसमें धनाढ्य घर की स्त्रीयाँ आपस में अपने वैभव को प्रदर्शित करने केलिए कैसे एकत्रित होती हैं इस चित्रण हैं। उसी प्रकार "बेगाने घर में", "अनारों", "खातुन", "तिरछी बोछारे" आदि भी उत्तर-आधुनिक जीवन को समस्याओं को लेकर आगे चलते हैं।

शुभावर्मा के "बीते हुए" (1980) उपन्यास में बुद्धिजीवि वर्ग के स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के बिखराव को प्रस्तुत किया है। महानगरों में अतिव्यस्त और जटिल जीवन की विसंगतियों में दाम्पत्य जीवन भी बिखर जाते हैं। आज उत्तर-आधुननिक संदर्भ में शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग अपने आप में इतने केंद्रित हो जाते हैं

कि अपने सिवा किसी का कुछ नहीं सोचते हैं। अन्य उपन्यास "फ्री लॉसर" में कामकाजी नारी का वर्णन किया है। "मोहतरमा" में लेखिका ने आज के युग की नारी की नैतिकता सम्बन्धी नई दृष्टिकोण को प्रस्तुत करके नारी मुक्ति आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान करते हैं।

2.9. निष्कर्ष

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में उत्तराधुनिकतावाद के सैद्धान्तिक पक्ष पर अध्ययन करके उत्तराधुनिकता का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप आदि को संक्षिप्क्ष रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उत्तर-आधुनिकतावाद में हर महानता, सामान्य बन जाते हैं एवं इसमें समग्रता का विखड़न होते चले जाते हैं। यह सार्थक बहुलता को स्वीकार करते नज़र आते हैं। इसलिए बहुत सारी संस्कृतियों को भी उत्तर-आधुनिक संदर्भ में हमें देखने को मिलते हैं जैसे- भूमण्ड़लीकृत संस्कृति, ब्रांट कल्चर, विज्ञापन की बढ़ती परिदृश्य, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि। इन सबका भी अध्ययन विश्लेषण इस अध्याय में सम्मिलित है।

प्रौद्योगिकी, नई तकनीकी विकास लगातार हमारे ज्ञान एवं चेतनाओं को प्रभावित करती रहती है। अतः इन सबका वास्तविक गहरी ज्ञान प्राप्त होना उत्तर-आधुनिक संदर्भ में अति-आवश्यक है। इसकी ओर भी यहाँ इशारा किया है। उत्तराधुनिकता के समय के औपन्यासिक जगत को भी स्पष्ट रूप से बताने की कोशिश की है। इस काल में उपन्यास अपने लेखकों को छोड़कर एक मुक्त विचरम करते हैं। इसका सृष्टि तो "स्व" से बदलकर सर्वकेन्द्रित बन गई है। इस प्रकार के उत्तर-आधुनिक जगत के प्रमुख उपन्यासकारों एवं उनके उपन्यासों का सरल ढंग से व्याख्यान करना इस अध्ययाय का उद्देश्य था।

प्रौद्योगिकी नई तकनीकी का लगातार विकास मानव ज्ञान एवं चेतनाओं को भी प्रभावित करते रहते हैं। मानुषिक मूल्यों पर इन सबका गहरा असर पड़ रहा है। इस काल में साहित्य अर्थात् हर उपन्यास अपने स्रष्टा को छोड़कर एक मुक्त विचरण करते नज़र आते हैं। औपन्यासिक सृष्टी तो 'स्व' यानी लेखक से बदलकर सर्वकेन्द्रित बन गए हैं। इन सबका वास्तविक गहरा

ज्ञान अपनाना मेरा उद्‍देश्य था। इसलिए उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के प्रमुख उपन्यासकारों एवं उपन्यासों के माध्यम से इन सब बातों का अध्ययन एवं व्याख्यान करने की कोशिश की गई हैं।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. समकालीन विचार धाराएँ और साहित्य, डॉ. राजेन्द्र मिश्र – पृ. सं. 11.
2. वही – पृ. सं. 11-12.
3. सम्मेलन पत्रिका, उत्तर-आधुनिकता तथा भूमण्ड़लीकरण: पाश्चात्य उद्‍भव एवं दर्शन – पृ. सं. 39.
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपा. डॉ. नगेन्द्र – पृ. सं. 416.

5. साहित्य अमृत, वैश्वीकरण के दौर में आधुनिकता और परंपरा, ब्रजेन्द्र त्रिपाठी – पृ. सं. 65.

6. उत्तर-आधुनिकता बहु आयामी संदर्भ, पाण्ड़ेय शशिभूषण सीतांशु – पृ. सं. 24.

7. उत्तर-आधुनिकता की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल, भूमिका।

8. उत्तर-आधुनिकता बहु आयामी संदर्भ, पाण्ड़ेय शशिभूषण शीतांशु – पृ. सं. 152.

9. हिंदी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी – पृ. सं. 54.

10. उत्तर-आधुनिकता बहु आयामी संदर्भ, पाण्ड़ेय शशिभूषण शीतांशु – पृ. सं. 16-17.

11. 21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यास, संपा. प्र. सतीश पटेल, शीला पटेल – पृ. सं. 150.

12. उत्तर आधुनिकता कुछ विचार, सं. देव शंकर नवीन–पृ. सं. 17.

13. उत्तर-आधुनिक साहित्य विमर्श, सुधीश पचौरी– पृ. सं. 14.

14. उत्तर-आधुनिकता की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल– पृ. सं. 27.

15. 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह – पृ. सं. 13.

16. साहित्य अमृत: भूमण्ड़लीकरण अस्मिता और भाषा, ब्रजेन्द्र त्रिपाठी – पृ. सं. 64.

17. 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह – पृ. सं. 20.

18. उत्तर-आधुनिकता की ओर, कृष्णदत्त पालीवाल– पृ. सं. 89.

19. सम्मेलन पत्रिका, भाग 94, संख्या 3 – पृ. सं. 37.

20. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार, संपा. देव शंकर नवीन, सुशांत कुमार मिश्र – पृ. सं. 35.

21. वही – पृ. सं. 35.

22. रेहन पर रग्ध– काशीनाथ सिंह, भूमिका।

23. पंचशील शोध समीक्षा– पृ. सं. 111.

24. पंचशील शोध समीक्षा, अप्रिल-जीन 2012 – पृ. सं. 111.

25. हिन्दी का गद्य साहित्य: डॉ. रामचन्द्र तिवारी – पृ. सं. 234.

26. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी – पृ. सं. 250.

27. समीक्षा पत्रिका, श्याम कश्यप वर्षा 27, अंक 2.

28. मधुमति पत्रिका: आवां हिन्दी उपन्यास में श्रम और शिल्प का संकल्प, रमेश दबे – पृ. सं. 11.

तीसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य: उत्तर-आधुनिक उपन्यासों के विशेष संदर्भ में

3.1. भूमिका

विदेशी भाषा होकर भी अंग्रेज़ी को भारत में शिक्षा, साहित्य, विचार विनिमय, अभिव्यक्ति आदि स्तर पर बहुत

मान्यता दी जाती है। वैश्विक भाषा होने के कारण इसका प्रयोग भूमण्डलीय तौर पर एकता लाने केलिए प्रयुक्त की जा सकती है। भारत में भूमण्डलीकरण का आगमन विदेशियों के प्रभाव एवं अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग के साथ हुआ है। डच एवं पुर्तगली के चहल-पहल के साथ ही पाश्चात्य शिक्षा भारत में आया है। इस शिक्षा को एक व्यवस्थित रूप ईस्ट इंटिया कंपनी के आगमन के फलस्वरूप लगभग 1600 में मिला था। ईसाई मिशनरियों द्वारा चार्टर अधिनियम के घोषणा पत्र में (Charter Act 1813) आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं पाश्चात्य शिक्षा का संयोजन किया गया। लार्ड मैकाले के विवरण पत्र-1835 (Macaculay's Minutes-1835) की घोषण के पश्चात् शिक्षा का पश्चिमीकरण और दृढ़ बन गया है। मैकाले संस्कृत महाविद्यालय एवं अरबी-फारसी मद्रसों के भी विरुद्ध विचार प्रकट करते थे। अंग्रेज़ी भाषा की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है– "हमारी भाषा पश्चिमी भाषाओं में सर्वोत्तम है। जिसे इस भाषा का ज्ञान पाप्त है, उसे संसार के अपार सार भंडार की उपलब्धि हो सकती है। बहुत कुछ संभावना है कि यह पूर्व के

समुद्रों की वाणिज्य भाषा बन जाए।”[1] उनके मतानुसार हर भारतीय इस प्रकार होना चाहिए कि “रूप रंग में भारतीय लेकिन वेशभूषा, विचार, विनिमय एवं चिंताओं में अंग्रेज़ी सभ्यता।”[2] (Indian in colour & Blood but English in dress, conversation, idea & thoughts.)

उनके बाद भी ऐसे बहुत सारे व्यक्ति आए थे और अंग्रेज़ी का प्रयोग प्रगाढ़ बनाकर चला गया था। इनमें प्रमुख है- वुड़स् डेस्पॉच (Woods Despatch), सर विलियम हन्टर (Sir William Hunter), माईकल साड्लर (Sir William Hunter) आदि। लेकिन ये सब तो स्वतंत्रता पूर्व की बात है।

भारत को जब आज़ादी मिली तब सिर्फ विदेशी प्रशासन से मुक्ति मिली पर अंग्रेज़ी भाषा तो बीज के रूप में स्थिर होकर, पल्लवित होकर रह गया है। आज तो अंग्रेज़ी, शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान अर्जित भी किया गया है।

3.2. भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य का विकास

साहित्य में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग 18 वीं सदी के अंत में ही शुरू हुआ है। इसे इंटो-एँग्लियन लिटरेचर या भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य नाम से पुकारा जाता है। मतलब तो यह है कि भारतीय रचनाकार जो अंग्रेज़ी भाषा में अपना लेखन कार्य करते हैं ऐसी रचनाओं को भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य के अंतर्गत शामिल कर सकते हैं। कभी-कभार भारतीय प्रवासियाँ भी यह काम करता है। डॉ. राम सेवक सिंह के अनुसार– "भारत के बाहर भारत के बारे में प्राप्त होनेवाला सुलभ साहित्य इंडो-ऐंग्लियन साहित्य है।"[3] इस प्रयास का पहला पुस्तक है इंग्लेंट में सन् 1732 में सेइक डीन महोमत (Sake Dean Mahomat) द्वारा रचित "द ट्रावल्स ऑफ डीन महोमट" (The Travels of Dean Mahomat)।

भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य को आगे बढ़ाने में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी संभावना सराहनीय है। उन्होंने अपने प्रादेशिक भाषा बंगाली एवं अंग्रेज़ी दोनों में लेखन कार्य किया करते थे। अपनी ही रचनाओं का उन्होंने अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया था। कवि, नाटककार, अभिनेता, गीतकार, चित्रकार आदि हर क्षेत्र में उनका

नाम लोकप्रिय हैं। 1883 को उन्होंने एक नाटक रचना किया "सन्यासी" बाद में "द असेटिक" (The Ascetic) नाम से अनुवाद भी किया था। उनके सबसे प्रसिद्ध "गीतांजलि" का भी बहुत सारे अनुवाद आ चुके हैं। जो उन्होंने खुद भी किया था, दूसरों ने भी। "द क्रेसंट मूण" (The Crescent Moon) 'द गार्डनर' (The Gardner) 'लवर्स गिफ्ट' (Lovers Gift) आदि अंग्रेज़ी में लिखे गए मूल काव्य कृतियाँ हैं। ठाकुर के समान अन्य भारतीय अंग्रेज़ी लेखक है धनपाल मुखर्जी जो यु.एस से. प्रथम साहित्य पुरस्कार प्राप्त किया है।

भारतीय अंग्रेज़ी रचनाओं की गणना में राजाराम मोहनराय की संभावनाएँ स्मरणीय है। मैकाले ने जो मिनुट्स की घोषणा की है उससे पहले ही उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार-प्रसार और अध्ययन केलिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के महत्व का प्रचार भी करने की कोशिश की। उस समय के अन्य रचनाकार है- हेनरी

डेरोज़ियो, काशी प्रसाद खोशे, हसन अलि, राजगोपाल, माईकल मधुसूदनदत्त आदि।

3.2.1. भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य: एक संक्षिप्त परिचय

भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य समाज के बौद्धिक एवं भौतिक दोनों यथार्थताओं तथा सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को लेकर पाठकों के सामने खड़ा है। इसलिए यह सर्व स्वीकृत भी है। भारत के साथ-साथ विदेशों में भी इन रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान हैं। भूमण्ड़लीकृत समाज में होते सामाजिकता से वैयक्तिकता, आध्यात्मिकता से भौतिकता तक के विभिन्न बदलावों को चित्रित करने का सशक्त माध्यम है कथासाहित्य। भौगोलिक दृष्टि से अंग्रेज़ी में लिखित रचनाओं का स्थान एवं महत्व इसलिए बढ़ रहे हैं कि इन रचनाओं के ज़रिए वैश्विक स्तर पर भारत की वैविध्यता पहचाने जाते हैं। क्योंकि भारत के ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पहलुओं एवं बदलावों का चित्रण शुरू से भारतीय अंग्रेज़ी कथासाहित्यों में उजगार किया है या अभिव्यक्त करते आ रहे हैं। स्वतंत्रतापूर्व अंग्रेज़ी कथा साहित्य

विदेशी शासन की क्रूरताओं एवं अमानवीय प्रवृत्तियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साधन मात्र होकर भी प्रचलित थे। उनमें एक विधा है कहानी साहित्य। छोटी-छोटी घटनाओं के ज़रिए भारत की शोषण एवं सांस्कृतिक गरिमा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहूँचाने का काम भारतीय अंग्रेज़ी कहानी साहित्य के ज़रिए होने लगा।

3.2.1.1. भारतीय अंग्रेज़ी कहानी

भारतीय अंग्रेज़ी कथासाहित्य के विकास की शुरुआत में ही अंग्रेज़ी में कहानी लेखन भी चालू हुआ। इसका वास्तविक विकास तो कमल सत्यनाथन के "इंडियन क्रिस्टियन लाइफ"- 1898 में प्रकाशित से हुआ था। लेकिन प्रामाणिक विकास तो 1930 में आए मुल्कराज आनंद, आर.के. नारायण एवं राजाराऊ नामी साहित्यकारत्रय पर निर्भर है। लेकिन इन तीनों की कहानियों के आने से पहले ही कई सारी अनूदित कहानियाँ इस विधा के अंतर्गत पैर रख चुकी हैं। 19 वीं शति के अंतिम समय एवं 20 वीं शती के प्रारंभ में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियाँ बंगाली में आयी थी बाद में उसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी आया। उनके

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कुछ कहानियाँ है- "हंग्री स्टॉन्स, एण्ड अदर स्टोरीज़" (1916), 'मासी एण्ड अदर स्टॉरीज़' (1918), 'ब्रोकन टाईज़ एण्ड अदर स्टॉरीज़' (1925), 'काबूलीवाला' आदि। बाद में एस.बी. बैनर्जी कृत 'टाइल्स ऑफ बंगाल' (1910-(1910-Tales of Bengal) नामक कथा संग्रह प्रकाशित हुआ था। उनके सारी कहानियों में तत्कालीन समाज का चित्रण है। मिस कोरेलिया सोराबाजी नारी की करुण दशा का वर्णन करते हुए "लह एण्ड लाइफ बिहइंट दि पर्दा" (1901), "सन बेबीज़" (1904), "बिटवीन द टॉयलाइट्स" (1904) कहानियाँ लिखी थी। इसी काल के और एक प्रसिद्ध कहानीकार है शंकरराम। दक्षिण भारत के ग्रामीण प्रांतों एवं ज़िन्दगियों का चित्रण करके "द चिल्ट्रन ऑफ कावेरी" नामक कहानी लिखी थी।

के.एस. वेंकटरमणी ने भी दक्षिण भारत के मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण करके "जटाधरण एण्ड अदर स्टॉरीज़" (1937) लिखा था। ये सब स्वतंत्रापूर्ण कहानीकार है। इनके साथ-साथ आनेवाले कहानीकार है- मोहम्मद हबीब "बेन्स एण्ड अदर

स्टॉरीज़" के सेठ कृत "मंकीज ऑन एक्सिविशन", ए.एस.पी अय्यर कृत "पंचतंत्र एवं हितोपतोर्श शैली' में समकालीन जीवन पर आधारित कहानियाँ, "सेन्स इन सेक्स एण्ड अदर स्टॉरीज़' (1929) आदि।

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में प्रमुख हैं मंजेरी एस ईश्वरन। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में बहुत सारी कहानियाँ लिखी थीं। लेकिन उन्होंने अपना लेखनकार्य 1947 से पहले ही शुरू किया था। स्वतंत्रतापूर्व की कहानियों में जीवन के करुण एवं दयनीय पक्षों का चित्रण किया है। "नैकेड़ शिंगल्स" (1939), "शिवरात्रि: ए लॉग स्टोरी" (1943) "ऐंग्री डेस्ट" (1944), "रिक्शावाला" (1946) आदि। स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में "फैसीटे टेईल्स" (1947), 'नो ऐंकल बेल्स फॉर हर' (1949), 'ईम्मरशन" (1951) तथा 'पेटंड टाइगर्स' (1955)। एस. नागराजन, हुमायुँ कबीर एवं दीवान शहर आदि ने भी लगभग एक ही समय में बहुत कहानियाँ लिखी हैं।

राजाराव, मुल्कराज आनन्द एवं आर.के. नारायण के साथ-साथ कथासाहित्य में ख्याति आर्जित रचनाकार हैं प्रावेर रूथ

झाबवाला, खुशवन्त सिंह, भवानी सहाचार्य आदि। मुल्कराज आनन्द, सामाजिक कार्यकर्ता एवं भारत के वास्तवकि दृष्टिकोण को प्रस्तुत करनेवाले लेखक है। आर.के तो सकारात्मक ढंग से जीवन प्रकृति था स्वरूप की खोज करनेवाला है। राजाराऊ की बात आने पर वे इन सारी बातों को प्रयोगात्मक तरीके से अपनाकर लेखन कार्य करनेवाला है। महात्मागाँधी, मार्क्स आदि समाज सुधार करने में किस प्रकार प्रभावित करते हैं उसी प्रकार कथा साहित्य लेखन में आनन्द, आर.के. एवं राजाजी का प्रभाव। राजाजी की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं– ‘द काऊ ऑफ द बैरिकाईड्स’ (1947), ‘द पुलिसमैन एण्ड द रोस’ (1978) तथा "ऑन द गंगा खट" (1989)! "द लॉस्ट चाईल्ड", "ग्रेइटस्ट शॉर्ट स्टॉरीज़" आदि आनंदजी का प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। आर. के.जी के प्रसिद्ध कहानी संग्रह है- "मालगुडी डेयस्" (1942), "एन ऑस्टॉलजेर्स डे", "ए हार्स एण्ड टू गोड्स", "अन्टर द बनियन ट्री" तथा "अदर स्टोरीस"।

आधुनिक समय में दृष्टि डालनेपर ऐसे बहुत सारे कहानकार नज़र आते है जो पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ छपते आए हैं। सबका परिचय दिलाना एवं अध्ययन विश्लेषण करना यहाँ मुश्किल काम है फिर भी कुछ आधुनिक लेखकों को ज़िक्र करना समीचीन ही है। केकी दारुवाला, अनिता देसाई, शशी देशपाण्डे, अरुण जोशी, कमलादास, जुम्पा लाहिरी, रविन्दरसिंह आदि ने भारतीय अंग्रेज़ी कहानी साहित्य एवं उपन्यास जगत में सर्वस्वीकृत एवं जनसामान्य लेखक गण हैं। उत्तर आधुनिक परिदृश्य में देखा जाए तो बहुत सारे कहानीकार हैं जो उत्तर-आधुनिक युगीन सारी विशेषताओं को सफल ढंग से मिलकर लेखन कार्य कर रहे हैं। इन लेखक गणों के द्‌वारा आज के सामाजिक स्थिति एवं आर्थिक वास्तविकता सबको अपनाकर लेखन कार्य करते हैं। दिना मेहता की कहानी संग्रह "द अदर वुमन एण्ड अदर स्टॉरीस" (1981) और ‘मिस मैनोन डिंड नोट बिलीव इन मैजिक एण्ड अदर स्टॉरीस’ (1994) जो स्त्री के नैसर्गिक घमण्ड, जल संवेदनशीलता आदि को लेकर लिखा गया

है। जयन्ता, महापात्रा, मनोजदास, शिव के. कुमार आदि अन्य उत्तर-आधुनिक कहानीकार हैं।

'भारतीय प्रारंभिक अंग्रेज़ी गद्य साहित्य'- एम.के. नाईक के मतानुसार भारतीय अंग्रेज़ी गद्य का विकास कंवेले बेंकट बोरिया कृत "अकांऊट ऑफ द जैन्स", द्वारा शुरु हुआ जो 1803 में प्रकाशित है। मौलिक न होते हुए भी इसे महत्व इसलिए दिया जाता है कि किसी भारतीय द्वारा अंग्रेज़ी में लिखने का पहला प्रयत्न उनका था। यह रचना 28 पृष्ठोवाली रचना है। प्रथम मौलिक एवं प्रमाणिक जाते हैं- राम मोहन राय कृत निबंध 'ए डिफेंस ऑफ हिंदी थीइम्ज़" (A Defence of Hindi Themes -1817)। रवीन्द्र नाथ ठैगोर उनको भारत में आधुनिक युग के उद्घाटक मानते हैं। बाद में रायजी कृत बहुत सारे लेखन आया था, पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। अलग-अलग विषयों पर लिखना भी शुरु किया था जैसे एकेश्ववाद पर, ईसाई धर्म में के अध्ययन पर, नारी समस्याओं पर एवं बईबिल के वचनों का भी

अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया था। उनके "लेटर ऑन इंग्लिश एजुकेशन" भारतीय पुनर्जागरण का घोषणा पत्र माने जाते हैं।

कविवर हेनरी डोरोज़िओ के शिष्यगणों ने प्रांभिक गद्य साहित्य को आगे बढ़ाया जिसमें कृष्ण मोहन बानर्जी, रामगोपाल घोष आदि प्रमुख हैं। कृष्णामोहन बैनर्जी तो हिंदूधर्म को कमज़ोर एवं विरोधाभास तथा जीसस क्राईस्ट को प्रजापति मानते थे। उनकी रचनाओं में भी ये सब देखने को मिलते हैं। 1831 के "द एनक्वायरेर" हिन्दू धर्म पर एवं 'आर्यन विटनेस" (Aryan witness) जीसस क्राईस्ट के महत्व को खींचने का प्रयास है। और भी बहुत सारे गद्य लेखक आया है जैसे हरीशचन्द्र मुखर्जी, राजेन्द्रलाल मित्र, गिरीश चन्द्र घोष, मन्मथनाथ घोष, दादोबा पांडुरंगा आदि जिन लोगों ने प्रारंभिक गद्य या गद्य साहित्य को एक नया मोड़ दिया था।

3.2.1.2. भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास तो इतना विपुल है कि, विकास को कुछ शब्दों में बाँटना मुश्किल बन जाते हैं। फिर भी कोशिश तो कर रही हूँ। भारत में प्रत्येक विधाओं की एक बृहत् परंपरा रही हैं। लेकिन जहाँ तक अंग्रेज़ी उपन्यास का सवाल है इसका अभाव है यानी की भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास का आविर्भाव होकर सिर्फ एक शतक से ज़्यादा नहीं हुआ है। भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास ने तो अपनी नीव पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव की सहायता से ही डाली है।

3.2.1.2.1. पूर्वपीठिका

डॉ. रामसेवक सिंह के मतानुसार रमेशचन्द्र दत्त ही पहला उपन्यासकार है जिनका दो उपन्यास अंग्रेज़ी में अनूदित हुए हैं। "दि लेक ऑफ पोयम्स" (1902), "दि स्लेव गर्ल ऑफ आगरा" (1909)। लेकिन मौलिक तौर पर भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य की शुरुआत बंकिमचन्द्र चैटर्जी कृत "राममोहन्स वाईफ" 1864 में धारावाहिक के रूप में तथा 1904 में पुस्तकाकार रूप से प्रकाशित हुआ। बाद में नई शताब्दी की शुरुआत में तरुदत्त, कृपाबाई

सण्यनाथन तथा शेवन्दीबाई एम. आदि लेखिकाएँ आई थी। उन्होंने भी भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक जगत को आगे बढ़ाने की कोशिश की। उनके द्वारा रचित उपन्यास है- "बिएन्का और द यंग स्पैनिश मैडेन" (1878-तरुदत्त), "स्टोरी ऑफ हिन्दू लाइफ" (1895-कृपाबाई), 'रत्नाबाई: ए स्केस ऑफ ए बम्बे हाई-कास्ट हिंदू यंग-वाइफ' (1895-शेवन्ती बाई एम. निकाम्बे) आदि। इन लेखिकाओं ने उस समय के नारी शिक्षण आन्दोलन को बढ़ाने में काफ़ी मदद की है।

19 वीं शती के अंत के साथ ऐसे बहुत सारे लेखक आये हैं, जिन्होंने उपन्यास के साथ-साथ बहुत सारे अन्य लेखन भी लिखा करता था। रोमेशचन्दर दत्त उनमें से प्रमुख है जो पद्य एवं गद्य दोनों रूपों में बहुत सारी रचनाओं का लेखन किया और अपने द्वारा बाड़ला में लिखित दो उपन्यासों का अनुवाद भी खुद किया गया है। बंगाल के उपन्यासकारों में प्रमुख है माधवय्या और टी. रामकृष्ण पिल्लाई। माधवय्या के दूसरे उपन्यास "तिल्लई गोविन्दन" जो अंग्रेज़ी में "ए पास्थुमस आटोवयोग्राफी एडिटेड

बाय पाम्ब" के रूप में 1908 में प्रकाशित हुआ जो बहुत रोचक आत्मकथात्मक ढंग से लिखित उपन्यास है। उपन्यास णें दक्षिण भारत के ग्रामीण एवं शहरी जीवन के रोचक चित्रण है। और भी उपन्यास अंग्रेज़ी में लिखा था- "नन्दा द पारिआ; हू ओवरकम्स कास्ट" (1923) और "लेफ्टिनेट पंजू: ए मार्डन इंडियन" (1924)। इनके साथ-साथ पंजाब के सरदार जोगेन्द्र सिंह अपने उपन्यास का प्रकाशन लन्दन से किया गया है, बंगाल एवं मद्रास प्रांतों के भी लेखक यत्र-तत्र इस क्षेत्र में दिखाई दे रहे हैं। एल.बी. पाल का "ए ग्लिंप्स ऑफ द जनाना लाईफ इन बंगाल" (1904) स्वर्ण कुमारी घोषाल का "टैगोर" (एतिहासिक रोमान्स), ‘द फेटल गर्लैंड’ (1915), टी.के. गोपाल पाणिक्कर का "स्टार्म एण्ड सनशईन" (1916), श्रीनिवास राव का "वारणसी: द पोतुर्गीज़ एम्बेसेड’ (1917) आदि।

गाँधी युगीन उपन्यासों में (1920-47) सर्वप्रमुख एवं प्रथम उपन्यासकार है के.एस. वेकटरमणी। उनके प्रसिद्ध उपन्यास "मुरुगन द टिलर" (1927) जो गाँधीवादी विचारधाराओं एवं

सिद्धान्तों पर आधारित है। उनका दूसरा उपन्यास कण्डन 'द प्रेट्रिअर: ए नॉवेल ऑफ न्यू इंडिया इन द मेकिंग' (1932) भी गाँधीवादी प्रभाव से भरा पड़ा है। लेकिन उनके उपन्यास की कमी तो यह है कि सम-सामायिक होकर भी तकनीकी दृष्टि से बहुत पुरानी है। बाद में ए.एस.पी. अय्यर ने इस विधा को आगे बढ़ाया। "थ्री मैन ऑफ जेस्टिनी", "द लीज़न यन्डन पॉस्ट' (1947) तथा "चाणक्य एण्ड चन्द्रगुप्त" (1951) आदि उनमें प्रमुख है। उनके साथी कृष्णरामस्वामी नागराजन ने भी दो अंग्रेज़ी उपन्यास लिखे हैं; जो वेंकर के उपन्यासों से भी बेहतर सिद्ध होते हैं- "अतावर हाऊस" (1937) तथा "क्राँजीकल्स ऑफ केदारम" (1961)।

भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक जगत की दिशा बदलकर क्रांतिकारि परिवर्तन लानेवाले तीन भारतीय उपन्यासकार हैं मुल्कराज आनन्द, आर.के. नारायण तथा राजा राव। तीनों के बारे में कहने का सबसे महत्वपूर्ण और विशेषता है कि भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। इन तीनों ने अपने-अपने उपन्यास सृजन से भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास क्षेत्र

में अपनी विशिष्ट उपस्थिति अंकित किया है। इन उपन्यास सामाटत्रयों के जिक्र करना बहुत ही अनिवार्य हैं। भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य में इन तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

मुल्कराज आनन्द का पहला उपन्यास "अनटेचेबल" जो 1935 में प्रकाशित हुआ था, इसमें अस्पृश्यता जैसे सामाजिक समस्या को केन्द्र में बनाकर लिखा गया है। इसमें देश के राजैतिक पिछडेपन का भी वास्तविक चित्रण करना लेखक का ध्येय था। उन्होंने 1946 में एक आत्मथात्मक उपन्यास लिखा है- "एपॉलोजी फॉर हीरोइज़्म"। इस उपन्यास से यह पता चल जाता है कि उस काल से ही भारतीय परंपरा के बगैर शिक्षा जगत् में पाश्चात्य सभ्यता का वर्चस्व बढ़ते जा रहे हैं। बाद में आनन्द ने सर्वहारा के एक वर्ग की ओर ध्यान आकृष्ट कराने का प्रयत्न किया वे है कुलि लोग। उन्होंने कुलियों के बारे में दो उपन्यास लिखे हैं- 'कुली' (1936) एवं "टू लीट्स एण्ड ए बड" (1937)। उनके "एक्रॉस द ब्लैक वाटर्स" (1941) उपन्यास भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखे पहला उपन्यास माना

जाता है। "द विलेज" 1939 तो ग्राम एवं शहरी सभ्यता के बीच की चंचलाहट एवं लडाईयों की कथा है तो "द स्वोर्ड एण्ड द स्किल" (1942) में तो साम्यवाद एवं गाँधीवाद दोनों का ही सम्मिश्र चित्रण आनन्द हल्के व्यंग्य के साथ पेश किया है। "द बिग हार्ट" (1945) तो आज़ादी पूर्व के अंतिम उपन्यास है, आज़ादी के बाद में तो "सेवन समर्स" (1951) "दि रोड़" (1961), "लैमेन्ट आन दि डेय ऑफ ए मास्टर ऑफ आर्टर्स" (1967) तथा "दि मार्निग फेस" (1968) आदि प्रकाशित हुए हैं। डॉ. रामसेवक सिंह के मतानुसार- “हर उपन्यास में आनन्द का व्यक्तित्व उसी संसा को बार-बार व्यक्त करता है जो समाज की कुरीतियों और परंपरा के अनावश्यक बन्धनों से त्रस्त है। यह संभव नहीं हुआ कि अपने व्यक्तित्व को मिटाकर कल्पना- लोक की सृष्टि कुछ इस प्रकार की जाय कि जीवन के विभिन्न पक्षों पर लेखक की दृष्टि का प्रतिफल देखा जा सके।”5 यह भी बताया है कि– “अपने प्रगतिशील विचारों को ही नहीं बल्कि समाज में ही दूसरों से

अलग कर दिए जाने की संभावना भी उनके उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है।”[6]

राशीपुरम कृष्णस्वामी नारायण नामी आर.के. नारायण तो विश्वविख्यात काल्पनिक गाँव मालगुडी के स्रष्टा है। उन्होंने अपने सरल प्यंग्य, गंभीर यथार्थवाद तथा काल्पनिकता से रचनाओं को संपन्न किया है। दक्षिण भारत के निवासी आर.के. तो भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य के सर्जक माना जाना चाहिए। उन्होंने अपने कालखण्ड के जो सच्चाईयाँ है उसे निष्पक्ष ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया करते थे, कला के उपासक बनकर, कलाकार बनकर जीवन बिताना उनकी इच्छा थी। पहला उपन्यास, "स्वामी एण्ड फ्रन्ड्स" (1935) में स्वामिनाथन नामक बच्चे की कहानी चित्रित है। इसकी विशेषता तो यह है कि सूर के बाल्सल्य वर्णन जैसे उन्होंने भी बच्चे की मानसिकता को पूर्ण रूप से अपनाकर उनकी संवेदना के साथ उपन्यास लेखन किया गया है। "दि बैचलैर आऑ आर्टस्" में (1937) वही बच्चा युवा बन जाते हैं और उस संवेदनशील युवक चंदन नाम से चित्रित है। विवाह संबंधी

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों के द्वन्द्व से त्रस्त युवक की कहानी है यह। तीसरा उपन्यास "द डार्क रूम" (1948) तो पहले दोनों उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न उपन्यास है, जिसमें सावित्री नामक युवती की बिखड़ती पारिवारिक जीवन, पति-पत्नि संबंध, एवं पति के अनौतिक संबंधों का चित्रण किया गया है। "द इंग्लिश टीचर" तो स्वतंत्रता पूर्वक अंतिम उपन्यास है जिसमें तीस साल आयुवाले अंग्रेज़ी अध्यापक की मनोदशा का वर्णन है जो "स्वामी एण्ड फ्रेंट्स", "दि बैचलर ऑफ आर्टस" की श्रेणी के तीसरा खण्ड माना जा सकता है। "ग्रेटफुल टू लाईफ एण्ड डेय" नाम से इस उपन्यास का प्रकाशन अमरिका में हुआ है। डॉ. रामसेवक सिंह के मतानुसार– "'द इंग्लिश टीचर" का नायक कृष्णन उस शिक्षा प्रणाली का उपज है जो "हम लोगों को निर्बुद्ध", सांस्कृतिक दृष्टि से निर्बुद्ध बनाती थी और एक बार तैयार किए गए मुद्दों के सहारे विद्यार्थियों को वर्षों तक सौ रूपकों की खातिर धोखे में रखने की वृत्ति उत्पन्न करती थी।"[7]

स्वतंत्रता के बात नारायण की रचनाएँ परिपक्वता के स्तर तक पहूँची हैं। उनके स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में प्रमुख है- "मि. सम्पत्त" (1949), "द फिनान्शियल एक्सपर्ट" (1952), ‘वाइटिंग फॉर महात्मा" (1955), "द गइड" (1958), "माई डेयट्लस डायरी" (1960), "द मैन ईटर ऑफ मालगुडी’ (1962), "द वेंडर ऑफ स्वीट्स्" (1967)।

मि. संम्पत्त एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो लगातर काम करते थकावर में से मुह मुडते हैं। उतना परिश्रमी है कि वह कभी हार मानने को तैयार ही नहीं था। वह हमेशा खुद पर विश्वास करता था और दूसरों को विश्वास दिलाता भी था। डॉ. रामसेवक सिंह अपनी रचना भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य में इस उपन्यास पर विचार करते हुए टिप्पण किया है कि- ""वह इतना विनोद प्रिय था कि परेशानियों में भी मुस्कुराता रहता। भयंकर गरीबी में भी बहुत बड़े परिवार को देखभाल करना उसे बहुत कठिन नहीं लगता था”। लेकिन उपन्यास का अंत तो त्रासदी निकला कि उनको पूरी तरह पराजित होकर मालगुड़ी छोड़कर जाना पड़ रहा

है। मतलब तो उपन्यास की शुरुआत कितनी भी सक्रिय एवं सकारात्मक पक्ष से हुआ हो लेकिन अंततः निराशाजनक है बन जाते हैं। यही उल्टवासियाँ भी लेखक की विशेषता माना जाना चाहिए।

उनके अंतिम श्रेणी के उपन्यासों को पढ़ते वक्त- ‘द फिनान्शियल एक्सपर्ट’, "द गाईड़’, ‘द मैंन-ईटर ऑफ मालगुड़ी और द वेंटर ऑव स्वीट्स्"- हम एक आकर्षक दुनिया में पहूँचते हैं जहाँ मालगुडी के बाहर से आए बहुत सारे ऐसे व्यक्तियों को देख सकते हैं जो अधूरे मन से ख्यालों में खोये रहते हैं, साथ-साथ कलाकारों, खायिशों के बल पर जीने वाले लोग, फिल्मी लोग, सन्यासी लोग आदि सबके इमदाद से कथा आगे की ओर बढ़ रहे हैं।

बदलते भारतीय परिदृश्य को लेकर नारायण अपने उपन्यासों को जीवन प्रदान किया है। भारत अति ग्रामीणता भी देख सकते हैं। साथ-साथ तकनीकी विकास का भी अत्याधुनिक परिदृश्य चल रहे हैं। नारायण के उपन्यासों में जीवन और विचार की

विड़म्बनाओं पर ही नहीं बल्कि स्थिति, समय, चरित्र और इच्छाओं का भी चित्रण यथेष्ट चल रहा है। उनके समकालीन समय के परिवेश, परिस्थितिजन्य विशेषताओं को भी काल्पनिक नगर मालगुडी के ज़रिए लेखक अपने उपन्यासों में व्यक्त करने में सफल बन गया है।

उपन्यासकारत्रयों में सबसे छोटा है राजाराऊ (1909)। बाकी दोनों की अपेक्षा राजाजी का लेखन, मात्रा में थोड़ा सा है। चार उपन्यास लिखे हैं – ‘कांतापुरा’ (1938), "द सर्पेंट एण्ड द रोप" (1960), "द कैट एण्ड शेक्सपियर" (1965) और "कॉमरेड़ किरीलॉव" (1976)। कांतापुरा ही इनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिनमें गाँधीयुग का सशक्त एवं सर्वश्रेष्ठ चित्रण है। यह दक्षिण भारत के मलबार क्षेत्र के गाँवों की कथा है। वहाँ के रूढ़ीवाद एवं पुराणपंथी ताकतों के कारण गाँधीवाद निष्क्रिय पड जाती है। इसमें महात्मा को हिंदू परंपराओं का अवतार पुरुष मानते हैं। आज़ादी के पूर्व के उपन्यास होने के नाते उस समय की सारी समस्याओं एवं विडम्बनाओं को उजागर करने का प्रयास इसमें देख सकता है। स्वतंत्रता केलिए

सक्रिय मानव की कथा है यह। एम.के. नाईक के मतानुसार ""कांतापुरा, राष्ट्रीयभावना कितनी गहराई तक बैठी है उसकी पड़ताल करने का वैभवपूर्ण प्रयास है जो सुदूर गाँवों में भी नवोत्थान पारंपरिक धार्मिक विश्वासों के साथ धुल मिलकर भारत की आत्मा की पुनः तलाश कर रहा था।”[9]

"दि सर्पेंट एण्ड दि रोप" उनका साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास है। लेखक ने खुद इस उपन्यास का कथ्य मानवीय अस्तित्व की अनुर्वरण तथा अर्थहीनता और परम सत्य की पिपासा माना है। इसमें ऐसी एक पात्र की कहानी है जो आत्मविभोर अपनी उत्तरदायित्वों से भागने वाले हैं। मतलब तो यह निकला कि यह एक आत्मकेंद्रित उपन्यास मानना उचित लगता है। उपन्यास का नायक अपने इच्छानुसार घरवालों से मुक्ति चाहकर विदेश चले जाते हैं। पुरानी ज़िम्मेदारियों को छोड़कर जाते वक्त वहाँ नई ज़िम्मेदारियों का सामना करना पड़ता है और उनसे भी पीछे मुड़कर चले जाते हैं। उनके मन में नारीवर्ग के प्रति घृणा भाव है। उनकी दृष्टि में नारी सिर्फ मांस

का टुकडा एवं व्यक्तित्वहीन अनामिका है। अपनी सौतेली माँ, बहन, साली सबकी मांसलता की ओर वह आकर्षित है बल्कि न कोई आत्मीय संबंध स्थापित करते हैं। निष्कर्ष रूप में उपन्यास के बारे में यह कह सकते हैं कि एक कुठाग्रस्त आदमि की कथा है "द सर्पेंट एण्ड द रोप", जिनकी आत्मकेंद्रित भावनाएँ अपने ही दु:ख का कारण बन जाते हैं।

तीसरा उपन्यास "द कैट एण्ड द शेक्सपियर" गोविन्दन नायर के जीवन दर्शन का निरूपण है। शीर्षक में "द कैट एण्ड शेक्सपियर" कहकर विश्वविख्यात लेखक शेक्सपियर को उपन्यास में सम्मलित किया है। उपन्यास में भी ऐसे कई महत्वपूर्ण संकेत है कि जो शेक्सपियर की याद दिलाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का प्रधान पात्र है बाबू रामकृष्ण पै एवं गोविन्दन नायर, साथ-साथ एक बिल्ली को भी स्थान दिया है। सच कहे तो यह उपन्यास एक प्रकार के हास्य प्रहसन है। एम.के. नाईक ने इस पर टिप्पणी करके बताया गया है कि– "बिल्ली का प्रतीक' 11 वीं शतीं के दार्शनिक, रामानुजाचार्य के संशोधित अद्‍वैतवाद से उठाया गया है,

जिसके अनुसार मनुष्य अपनी सुरक्षा, ज्ञान के बदले आत्म समर्पण द्वार ही कर सकता है। रामानुज के देहान्त के पश्चात यह सिद्धान्त "मर्कड न्याय", या "मार्जार’ (बिल्ली) ‘न्याय" के नाम से जाना गया। "मर्कड न्याय" के अनुसार मानव की आत्मा को ईश्वर से मिलन का प्रयत्न उसी प्रकार करना चाहिए जैसे बन्दर का बच्चा अपनी माँ के निपटा रहता है . . .”[10]

कॉमरेड किरीलॉव उनका सबसे ताज़ा एवं अंतिम उपन्यास है। एक लंबी कहानी या एक रेखा-चित्र का भी आभास देता है। इसका "किरिलॉव" एक भारतीय बुद्धिजीवि पद्मनाभ अय्यर है। वह अपने बारे में इस प्रकार बताते हैं कि उनका नाम अनाम है, बहस करना उनका कर्तव्य है और साम्यवाद उनका मातृभूमि भी, लेकिन राजाराऊ के पात्र कीरीलॉव खुद को साम्यवादी कहने पर भी भीतर से एक ढेठ भारतीय है। प्रस्तुत उपन्यास तो 20 वीं सदी के लन्दन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। लेकिन लेखक को किरीलॉव के चरित्र, उतना सफल नहीं बना सकता जितना वह सच में हैं। इस प्रकार उपन्यासकार त्रयों का औपन्यासिक

समृद्धि के कारण भारतीय अंग्रेज़ी गद्य साहित्य प्रसिद्धि के शिखर प्राज किया है।

आनन्द, नारायण एवं राजाराऊ के साथ-साथ गांधीयुगीन उपन्यासकारों की परंपरा में ओर भी कुछ लेखक आते हैं, वे हैं- अहमद अली (ट्वाइलाइट इन डेल्ही, ओशन ऑव नाइट), इकबालुन्निसा (परदा एण्ड पॉलीगेमी लाईफ इन एँन इन्डियन मुस्लिम हाउस- होल्ड (1941) अमीर अली (कॉन्फ्लिवट वाया जेनेवा एवं एसाइन्मेंट इन कशमीर) धनगोपाल मुखर्जी (कारी द एलिफेंट, हरि द जंगल लैंड, गेनैक द स्टॉरी ऑफ द पिज़न, द चीफ ऑफ द हर्ड और गोंट द हन्डर) आदि। मुखर्जी के आत्मकथात्मक उपन्यास है "माय बदर्स फेंस"। इस प्रकार गाँधीयुगीन झंझावत में इतना सारा अंग्रेज़ी लेखन प्राप्त है जो भारतीयों के शैक्षिक क्षमता एवं दक्षता के प्रतिरूप बनकर अंताराष्ट्रीय स्तर तक पहूँचा है।

3.2.1.2.2. उत्तर-पीठिका

भट्टाचार्या एवं मनोहर के उपन्यासों के जिक्र किए बिना स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासों के बारे में बताना कठिन था नाइन्साफी होगा। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के सामाजिक यथार्थवाद, भारतीयता की और उन्मुख प्रयोगवाद आदि की परंपरा को आगे बढ़ाने में ये लेखकगण भी एक हद तक सफल हुए हैं। भट्टाचार्य और मनोहर मुलगावकर इसके पहले श्रेणी में अर्थात् सामाजिक यथार्थवादि उपन्यासकारों की श्रेणी में आते हैं। एम.के. नाईक को लगता है कि "भट्टाचार्य पर रवीन्द्रनाथ और गाँधी का गहरा प्रभाव था जबकि विचार एवं व्यवहार दोनों दृष्टि से वे मुल्कराज आनंद से अधिक नज़दीक हैं।"[11] उन्होंने अपने पुस्तक भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य का इतिहास पुस्तिका में भट्टाचार्य के कथन इस प्रकार ले लिया है कि– "कला का परोक्ष उद्देश्य जीवन के यथार्थ चित्रण द्वारा समाज को शिक्षित करना है। कला उपदेश तो देती है किंतु ऐसा वह सत्य का निरूपण करते हुए ही करती है। यदि वह प्रचार है तो भी इस शब्द से परहेज़ करने की ज़रूरत नहीं है।"[12] मतलब यह है कि वह अपने रचनाओं को

सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध माना है। अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत विषय का उद्देश्य एवं सामाजिक दृष्टिकोण स्पष्ट होना उनको महत्वपूर्ण लगता है। उन्होंने समाज में जो कुछ देखा, झेला एक द्रष्टा की तरह इन घटनाओं के मूल्यों को आंककर अपने चरित्रों को जीवन प्रदान करते हैं। कौतुहलता एवं जिज्ञासा उनका एक महत्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में वैयक्तिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक हर धरातल से जाकर उसे एकत्रित करके प्रस्तुत करने की कोशिश की है। अन्य विशेषता यह है कि अन्य लेखकों की तरह वैयक्तिक विशेषता पर ज़ोर देते वक्त बाकी की तथ्यों को खो बैठना उनके बस की बात नहीं है। इतने ध्यानपूर्वक लिखने के कारण कहीं भी भट्टाचार्य के विचार एवं दृष्टिकोण विकृत नहीं देख पाते हैं।

उनका पहला उपन्यास "सो मैनी हंगर्स" (So many hungers - 1947) में प्रकाशित हुआ है। आत्माभिमानी भारतीय की खुल्लमखुल्ला चित्रण इस उपन्यास में हैं। जहाँ भारतीय नाम से भी परतंत्रता झेलना नहीं चाहे वहाँ वह "स्वतंत्र" होने की स्वतंत्रता

को कैसे स्वीकारेंगे। अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बनाए रखने केलिए, ऊपर पड़े विपत्तियों के सम्मुख हिम्मत न हारनेवाले भारतीय जो अपने आदर्शों को स्थाई रखने केलिए सखुश सूती पर चढ़नेवाले भारतीयों का चित्रण भट्टाचार्य ने किया है। दूसरा उपन्यास "म्यूज़िक फार मोहिनी" 1952 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कोलक्कता में जन्मे एक ब्राह्मण युवती की कथा है उनका नाम है मोहिनी। रूपलेखा उनकी ननद है। दोनों लड़कियों के माध्यम से लेखक दो धरातलों का चित्रण मार्मिक ढंग से हैं। एक तो मोहिनी जो शहर में पले पड़ें हैं। जिनकी शादी गाँव के एक लेखक जयदेव के साथ हुई है। दूसरा तो रूपलेखा-जयदेव की बहिना उनकी शादी एक शहर के लड़के के साथ हुआ है। ऐसे विपरीत वातावरण में दोनों के बैठे-बिठाव किस प्रकार है कैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और अंत में क्या हो जाता है इन सबका वर्ण और साथ-साथ परंपरागत बनाम आधुनिक जीवन शैली का एक राग भी यहाँ देख सकते हैं।

तीसरा उपन्यास "रौडो फ्राम लद्दाख" 1966 में प्रकाशित है, जो चीन की आक्रमण के खिलाफ लेखक के मन में उभरा है। गाँधीवादी के रूप में सत्यजीत एवं अत्याधुनिकवादी के रूप में भास्कर को भी इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के पात्र बीरेश को इंग्लैड़ में शिक्षित एवं व्यावहारिकता, सामान्यज्ञान तथा सक्रियता का प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। परतंत्र भारत की नारी अपनी आदर्शों को जीने केलिए अपने अन्दर की नारी तत्व को नकारते थे। प्रस्तुत उपन्यास के पात्र सुरुचि पति के आदर्शों पर चलनेवाली एक नारी थी। लेकिन उनको आत्मसंयम के नाम पर अपने नारीत्व को त्याग देना पड़ा था। खुद की पुत्री पर जब अत्याचार होते है तो वह सारी आदर्शों भूल जाते हैं। इसमें सुमिता दूसरे प्रकार की युवति है जो आज़ादी के बाद की नारी का प्रतीक बनकर पाठकों के सामने आते हैं। उनके अनुसार नारीत्व की सार्थकता तो जीवन को स्वीकारने में और उसे पूर्ण रूप से जीने में होना चाहिए। इन सारे पात्रों का जिक्र लेखक ने इस उपन्यास में सफल ढंग से किया गया है।

इस उपन्यास सृजन के लिए लेखक को 1967 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार भी दिया गया है।

"ही व्हू राईड़स ए टाईगर" अगला उपन्यास है जिसमें गंभीरतम चिंतन प्रस्तुत किया है। इसमें व्यंग्यात्मक उलटबासियों का भी प्रयोग है। इसके कथानक कई विषय एक दूसरे से उलझे हुए है जैसे बनावटीपन और असलियत, संपन्नवर्ग और सर्वहारावर्ग, धार्मिक पाखण्ड आदि। लेकिन लेखक ने यथार्थता के बगैर काल्पनिकता को अपना लेते हैं।

"ए गोडेस नेड्म्ड गॉल्ड" में प्रधानपात्र आत्माराम गाँधी या टैगोर का पर्याय एवं मीरा स्वतंत्र भारत की आत्मा का पर्याय माना जाना चाहिए। इस प्रकार सारल भाषा पाण्ड़ित्य एवं प्रवाहमयी विचारों के साथ भट्टाचार्य अपनी लेखन क्षमता को दिखाया है। उनके उपन्यासों की लोकप्रियता का मुख्य कारण लेखक की गरीबों के प्रति हुई सहानुभूति एवं संवदेना, आदर्शोन्मुख मानवतावाद, प्रतीकात्मक दक्षता, संवेदन-शीलता, लचीलापन आदि

है। हर दृष्टि से उनके उपन्यासों की प्रसिद्धि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ है।

मनोहर मुलगाँवकर की चिंताएँ भवानी भट्टाचार्य से बिल्कुल भिन्न है। उन्होंने किसी एक उद्देश्य को लेकर लेखन करने की पक्षधर है। सहृदयता केलिए शुद्ध मनोरंजन होना ज़रूरी है। भट्टाचार्य के विपरीत मूलगांवकर के उपन्यासों में पुरुषप्रधानता देखने को मिलते हैं। नारी तो लेखक के विचारनुसार सिर्फ पुरुष को आनन्द प्रदान करनेवाला साधन मात्र है। औपन्यासिक जगत में उनका पहला कदम तो "डिस्टेंड ड्रम" (1960) उपन्यास से हुआ है। भारतीय सैनिक जीवन के परिदृश्य में लिखा गया उपन्यास है। किरण नामी सतपुरा अफ्सर को प्रतीक बनाकर सैनिक जीवन का चित्रण इसमें लेखक ने किया है। किरण को अब्दुलजमाल नामक सैनिक से दोस्ती हुई। लेकिन जब कश्मीर-पाक विभाजन हुआ तो दोनों को अलग-अलग बनकर सैनिक दल बनकर खड़ा होना पड़ा एवं एक दूसरे के खिलाफ युद्ध करना पड़ा। लेकिन इन लोगों ने राष्ट्रीयता एवं दोस्ती को अलग करके अपना कर्तव्य

निभाया। दूसरा उपन्यास "कॉम्पाक्ड़ ऑफ सैडोऊस" 1962 में प्रकाशित है। एक सुव्यवस्थापित उपन्यास बनकर पाठकों के सामने आया है। कोई दूसरे की छाया में इस उपन्यास के पात्र अनैतिक संबंध ज़ारी रखता है। विन्टन एवं जीन पति-पत्नि है तथा एट्टी एवं रूबी भी। पर विन्टन और रूबी के बीच में शादी से पहले ही प्यार है इसलिए दोनों के बीच में शादी के बाद भी एक अठूटे संबंध ज़ारी है। इस बीच में कहीं न कहीं जीन एडी मिलते हैं और हो भी प्यार करने लगते हैं। दोनों जोडियों के बीच अवैध संबंध भी स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार अव्यवस्थित प्यार होने के बावजूद भी बाद की हंगामा को लेखक मनोरंजक ढंग से उपन्यास में प्रस्तुत किया है। लेकिन विड़म्बना तो यह है कि जिन नैतिक मुद्दों को लेकर लेखन शुरू हुआ है वे मुद्दे उपन्यास में आगे की ओर कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। तीसरा उपन्यास "द प्रिन्सेस" 1963 में प्रकाशित हुआ है जो एक भारतीय राजकुमार की कहानी कहने हेतु लिखा गया है। "अभय" नामक बेगदाद क्षेत्र के राजकुमार के ज़रिए यह उपन्यास आगे बढ़ रहे

हैं। उपन्यास पढ़ने पर पाठकों को ज़रूर ऐसा लगेगा कि अभय और लेखक दोनों सामंतवाद के पक्षधर है। इस प्रकार लेखक इसे एक राजनैतिक उपन्यास के स्तर पर हावी कर दिया गया है। चौथा उपन्यास "ए बेन्ड इन द गैंग्स्" (A bend in the Ganges)। दूसरे विश्वमहायुद्ध का प्रभाव मानवराशी पर किस प्रकार बदलाव लाया है इसका चित्रण है इस उपन्यास में। इसमें सबसे पहले भारतीयता एवं अंग्रेज़ी पूंजीवाद के बारे में बता करके दोनों की समस्याओं की ओर इशारा की है। आगे चलकर यह समस्या हिंदू-मुसलमानों के बीच की ओर बदलते देखने को मिलते हैं। इन दोनों संघर्षों का परिणाम यह निकला कि भारत की आज़ादी एवं भारत पाक विभाजन। इसके बारे में लेखक का कथन इस प्रकार है कि "अहिंसा के ज़रिए हमने क्या लाया है, सिर्फ इतिहास में एक रक्त-रंजित उथल-पुथल बारह मिलियन लोगों को इसी कारण यहाँ से भागना पड़ा, अपना घर सब कुछ छोडना पड़ा, लगभग पाँच लाख लोगों की हत्या हुई, सौ हज़ार से अधिक औरतों का अपहरण हुआ, बलात्कार एवं क्षत-विक्षत कर डाला"[13] (What was achieved through non-violence, brought with it one of the

floodiest upheavals of history: twelve million people had to flee, leaving their home nearly half a million were killed: over a hundred thousand women young and old, were abducted reaped and mutilated).

इन सबका खुला चित्रण एवं विद्रोह उन्होंने अपने उपन्यास "ए बेंट इन गैंगज" द्वारा किया गया है। उनका अन्य उपन्यास "स्पाई इन एँबर" (The Devils Wind) तो 1971 में प्रकाशित हुआ है जो लेखक के अपने "हिन्दी प्रोड़यूसर" नाटक के पटकथे पर आधारित है। "द डेविल्स वाइन्ड" (Spy in Ambour) 1972 में शालिमार (शालिमार फिल्म का उपन्यासीकरण) 1978 में एवं "बटीकाउन्ट रन" (The Devils Wind) 1982 में प्रकाशित हुआ है। 'द डेविल्स वाईन्ड' तो नाना सहेब की कथा है। अंग्रेज़ों मं जिनको एक सशक्त खलनायक था विरोधी समझते थे उनके सहानुभूति पूर्वक पक्ष को लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए ज़िक्र किया है। "शालिमार" तो भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में फिल्म के उपन्यासीकरण का पहला कदम माने जाते हैं, जो लेखक ने अत्यधिक मार्मिक ढंग से किया गया है। "बंटीकाउन्ट रन' तो दो

सेनापतियों की कहानी हैं जो एक दूसरे टोकनेवाले भारतीय सेना के अक्सर लोग हैं। आर्मी के मुख्यालय से गायब एक फाईल के ईद गिर्द उपन्यास घूमता रहता है। सैनिक पदक्रम के उच्च अधिकारियों की और उगनेवाले सशक्त आवेग की भी कथा इसमें लेखक उजागर किया है। इस प्रकार देखे तो मनोहर के उपन्यास में सैनिक जीवन की और आकर्षण तथा आशंकाएँ अधिकांश देखने को मिलते हैं। भारत विभाजन से लेकर शासन वर्ग की लालसाओं का भी चित्रण लेखक अपने सरल भाषाई क्षमता से आंकने में सफल हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर समय के उपन्यासकारों में खुशवंद सिंह भी नामी है, ‘ट्राईन टू पाकिस्तान’ (Train to Pakistan-1956), "आई शॉल नॉट हियर द नैटिंग़ गर्ल" (Shall not hear the Nightingale - 1959), ‘डेलही: ए नावल" (Delhi: A Novel-1990), "द कंपनी ऑफ वुमन" (The company of Women-1999), "द सनसेट क्लब" (The Sunset club-2010) आदि उनका सुप्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें "ट्राईन टू पाकिस्तान" एक ऐतिहासिक उपन्यास है। भारतीय

विभाजन पर ही इसका नज़र जा रहे हैं। "डेलही ए नॉवल" तो दिल्ली के कल एवं आद को लेकर जा रहे हैं। "द कम्पनी ऑफ वुमन" में उन्होंने अस्सी साल के बूढ़े की यौन कुंठाओं को चित्रित किया है। लेखक के मतानुसार पुरुष जब बड़ा होता है लगभग सोहल वर्ष की आयू से लेकर बूढ़ापन तक यौन क्रिया की ओर उनकी उत्सुकता बढ़ते जा रहे हैं। इस सोच को लेकर लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास पाठकों के सामने रखा है। "आई शाल नाट हीयर द नैटिग़ गर्ल" में सिख परिवार की व्यंग्यात्मक कहानी है। उपन्यास में पात्रों का दोगलापन, चालाकी और पाखण्ड सब कुछ आता है। यौन क्रिया को लेकर लेखक की जो अति उत्सुकता उनके उपन्यासों में हर प्रधान एवं गैर पात्रों के संभोग चित्रण करके देख सकते हैं। "एस मेनान मारात" भी उस समय के भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकारों में मुख्य है। केरल की मिट्ठी से उठने के कारण वहाँ के परिदृश्यय की गहराईपन उनके लेखन में देख सकते हैं। उनके "वुड़ ऑफ स्प्रिंग" (1960), 'द सेईल ऑफ एन आइलेंड' (1968) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए है। इसके साथ-

साथ बालचन्द्र राजन के "द डार्क डान्सर" (1959), "टू लांग इन द वेस्ट" (1961) कमला मार्कण्डेय के "नेक्टर इन ए सीव" (1964), "सन् इन फ्यूरी" (1955), "ए साइलेंस ऑफ डिज़ाइनर" (1960) 'पोज़ेशन' (1963), 'ए हैण्डफुल ऑफ राईस" (1967), तथा "दि कॉफर डैम्स" (1969) हुमयून कबीर के "मैन एण्डरिवर्स", सुथिन एन घोसे के "एण्ड गज़ेल्लेस लीपिड़" (And Gazelles Leaping- 1949), "क्राडिल ऑफ द हाऊस" (Cradle of this house- 1951), 'द वेर्मीलियण बॉट" (The Vermillic Boat-1953), "द फ्लाईम ऑफ द पारेस्ट" (The flame of the farest-1955), एम. आनन्दनारायण के "द सिल्बर पिल्ग्रिमेइज़" (The Silver Pilgrimage-1961) आदि उपन्यास भी स्वतंत्रता के बाद के 1970 तक के औपन्यासिक जगत को संपन्न बना दिए हैं।

3.2.1.2.3. स्वातंत्रोत्तर महिला उपन्यासकार

भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य में विशेषतया उपन्यास जगत् में लेखिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसे बहुत सारी औरतें जो शिक्षित होकर विदेश में निवास करके भी भारत की गरिमा

को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहूँचाने लायक लेखन कार्य अंग्रेज़ी साहित्य में करते थे। विदेश में रहने के बावजूद भी स्वदेशवासी नारियाँ भी अपने देश के प्रति कितने सतर्क है यही बात उनकी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त होता है। स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों में सर्वस्वीकृत एवं सबसे प्रसिद्ध लेखिका "कमला मार्कण्डेया" है। वह एक प्रवासी भारतीय है। उन्होंने लगभग दस उपन्यासों की रचना भी की हैं। इनके उपन्यासों के उल्लेख मैं ने इस अध्याय के पूर्व ही सूचित किया है।

अन्य प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार है रूथ झाबवाला। शहरी-आम जन जीवन का व्यंग्यात्मक चित्रण, अविभाजित परिवारों में होनेवाले अंतर्द्वंद्वों तथा भारतीय पाश्चात्य टकराओं का भी चित्रण लेखिका ने व्यंग्यात्मक ढंग से किया है। इन सबका चित्रण दिखाई देनेवाले उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं- "टु हूम शी विल" 1955 (To Whom She Will), 'ठएस्मॉण्ड इन इण्डिया"- 1958 (Esmond in India), "दि हाऊस हॉल्डर"- 1960 (The house holder), "गैट रेड़ी फॉर बेटिल"- 1962 (The house holder), "ए बैकवर्ड

प्लेइस"- 1965 (Get Ready for Battle), तथा "हीट एण्ड टेस्ट"- 1975 (A Backward Place) आदि। भारत की ओर विदेशियों की प्रतिक्रियाओं एवं भारतीय मध्य-वर्ग की समस्याओं को व्यंग्यात्मक तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास यहाँ लेखिका ने किया है। लेखिका की मुख्य विशेषता तो यह है कि मानवीय व्यवहार की विचित्रताओं एवं विरोधाभासों को व्यंग्यात्मक तरीके से हास्य तत्वों को टूँट निकाल प्रस्तुत करते हैं।

नयनतारा सहगल भी इसी काल की सशक्त लेखिका है। लिंग रूपी भेद-भाव के ज़रिए स्त्री पर होती अत्याचारों को समाज के सामने लाना अपना कर्तव्य समझकर उन्होंने लेखन कार्य करते आ रहे हैं। स्त्री-पुरुष सामंजस्य पूर्ण भारत की परिकल्पना करके उन्होंने साहित्य सृजन करते नज़र आते हैं। सहगल अपनी रचनाओं के ज़रिए स्वतंत्र नारी अस्मिता एवं अस्तित्वों की और जिक्र किया है। उनके मतानुसार "नारी जीवन के पुनर्लेखन के ज़रिए, नई-नई सीता-सावित्रि जन्म लेगी, झूठी पवित्रता को छीन लेगा तथा मानव सदाचारी साहसी बनकर अभिषिक्त होंगे। अंत

में हमें यह समझ में आएगा कि उन्होंने क्या किया, क्यों किया एवं उनके अकेले आन्दोलनों, संघर्षों एवं संधानों की जानकारी की मतत से हमें अपनी अस्तित्व से एवं संघर्षों से मुक्ति मिलेंगे”[14]। (Through the rewriting women do, new Sitas & Savitris will arise stripped of false sanctity and crowned with the human virtue of courage. Then at last we will know why they did, what they did, and their lone remote struggles can help our rearch for identity and emancipation). लगभग आठ उपन्यासों की सृजन करके भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक जगत को संपन्न किया है। पहला उपन्यास "ए टाइम टू बी हैपी"- 1957 में प्रकाशित है। साथ ही साथ, "दिस टाईम ऑफ मार्निंगस" (1968), "स्टॉर्म इन छंडीगड़" (1969), "द डे इन शैडो" (1971), "ए सिय्यूएशन इन न्यूडेल्ही" (1977), "रिच लाइक अस", "प्लानस फॉर डिपार्चर" एवं ‘मिस्टेकण आइडेंटिटी" (1988) का भी प्रकाशन हुए है। इन सब उपन्यासों के ज़रिए लेखिका ने व्यक्तियों एवं राष्ट्र की आन्तरिक तथा बाहृय स्वतंत्रता की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया गया है।

भारतीय अंग्रेज़ी स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में जानी पहचानी लेखिका है अनिता देसाई। जीवन के सच्चे महत्व को खोज निकालना एवं उस महत्व को अक्षरों में बॉटना तथा सबकी ओर पहूँचना उन्होंने अपना कर्तव्य माना है। उन्होंने नारी मन की अन्तर्द्वद्वों तथा विभिन्न तत्वों को जानने, पहचानने एवं रेखांकित करने का प्रयास किया है। अकेलापन से झूँझती स्त्री से लेकर उनके उम्र की अलग-अलग पहलुओं के साथ लेकर विचार विमर्श किया है। देसाई को बहुत सारे कटु आलोचकों का सामना करना पडा था। पारिवारिक संबंधों में जो जटिलता उनके उपन्यासों में चित्रित किया गया है, उस जटिलता को आलोचकों ने प्रशंसा भी दिया गया है। "क्राई द पीकॉक" (1963), "वायसेज़ इन द सिटी" (1968), "बाय-बाय ब्लैकबर्ड" (1971), "वेर शाल वी गो दिस सम्मर" (1975), "फायर ऑन द माऊँन्टाईन" (1977), "इन कस्टडीट (1984), "बॉर्गाटनर्स बाम्बे" (1988), "क्लियर लाईट ऑफ द डे" (1980), "जर्नी टु इताका" (1955), "फास्टिंग, पीस्टिंग" (1999), "दि ज़िक ज़ाक वे" (2004), "द आर्टिस्ट ऑफ

डिसअपियरन्स" (2011) आदि। "क्राई द पीकॉक" तो मील का पत्थर माना जाना चाहिए जिसमें माया नामक नारी की मानसिक संवेदनाओं एवं अन्तर्द्वद्वों का चित्रण लेखिका इतनी सशक्त तरीके से किया है जितनी ओर किसी से संभव नहीं। एक सशक्त ज्योतिषि द्वारा हुई भावह भविष्यावाणी को लेकर उपन्यास के शुरुआत से ही प्रवक्ता रूपी अतिसंवेदनशील और नसों के विकार से पीड़ित, (Neurotic) पागल जैसे मोड़ में पहुँचने नज़र आती है। भविष्यवाणी में आकर वह उत्सुक एवं पीड़ा से त्रस्त होकर अपने पति की मृत्यु कर डाली है। भविष्यवाणी तो इस प्रकार था कि शादी होने के चौथे साल में ही दाम्पत्य का अंत होने का है जो मानसिक संघर्ष की वजह से उन्होंने सच बना दिया, अपने पति को मारते हुए। खुद के पागलपन के कारण अपने पॉव के नीचे की मिट्टी खुद निकाली थी। इस प्रकार एक अलग तरीके से स्त्री मानस की कुंठाओं एवं अन्तर्द्वंद्वों का चित्रण माया के रूप में चित्रित किया है। अनिता के उपन्यासों में "बाय-बाय ब्लैकबर्ड" एकमात्र उपन्यास है जिसमें सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं

को महत्व दिया है। बाकी सब तो मानसिक ऊहापोह एवं अकेलापन का चित्रण करते नज़र आते हैं।

शेष महिला उपन्यासकारों में प्रमुख है शांता रामाराव, नर्गीस दलाल, वेणू चितले, जीनत फतेहअली, अतीपा हुसैन, पेरीन भरूचा, विमला रैन, शकुंतला श्रीनगेश, मृणालिनी साराभाई, पद्मिनी सेनागुप्ता आदि।

3.3. भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास 1980 ई के बाद

1930 के बाद के भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य भी अन्य भाषा साहित्यों के जैसे दो पहलुओं में बाँटा जा सकता है- आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक। आधुनिक उपन्यासों की शुरुआत राजराऊजी कृत "कान्तापुरा" (1938) से तथा उत्तर-आधुनिक उपन्यासों की शुरुआत तो सल्मान रूशदी के "मिड़नाईट चिल्ड्रन" (1981) एवं निज़िम एसकियल कृत "लेट्टर डे पाल्मस्" (1982-Letter Day Palms) के साथ हुआ है। इसमें से साफ पता चला जाता है उत्तर-आधुनिकवाद का चरण 1980 के बाद में आता है। जिसका विचार विमर्श तो उत्तर-उपनिवेशवाद के सिद्धान्तों के ज़रिए करते आए

हैं। इस समय के प्रमुख भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकार है- निज़िम एसकियेल, ए.के. रामानुजम, जयन्ता महापात्रा, कमलादास, शिव के. कुमार, केकि एन. दारूआला, अमिताब घोष, शशि तरूर, उपमन्यू चैटर्जी, शशी देशपाण्डे, अनिता देसाई, विक्रम सेत, विक्रम चन्द्र, अरूनद्धती रॉय, मंजू कपूर, राजकमल झा, रस्किन बॉड, मनोजदास, हरि कुन्सु आदि।

उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों की प्रमुख विशेषता यह है कि कथ्यात्मक स्तर का विस्तार। पूर्व-पश्चिम मुठ्भेड़ का विस्तृत वर्णन शुरू किया है। एक भूमण्डलीय स्थिति पैदा हुआ है। "भूमण्डलीय गाँव" याने कि "ग्लॉबल गाँव" के रूप में संसार को बदला दिया है, समाज को बदला दिया है। इसलिए भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास आज अपनी पात्रों की संरचना अपने देश के साथ-साथ विदेशों में भी कर लेता है। इस प्रकार भारतीय-पाश्चात्य सहयोग को बहुत सारे उपन्यासकार अपना विषय बनाकर लेखन कार्य किया है जैसे विक्रम सेत कृत "द गाल्डन गाईड एण्ड एन ईक्वल म्यूज़िक"। 1980 के बाद के उपन्यासों को

झरक, यौन, शादी के जय-पराजय आदि आशयों से भरपूर किया गया है। साहसी एवं रूढ़ी-विरुद्ध प्रेम एवं संगम का चित्रण उत्तर-आधुनिक उपन्यास की प्रमुख विशेषता माना जा सकता है। अरुन्तती के "द गॉड आफ स्माल थिंगस्", शिव के कुमार के "ए खिर विथ थ्री बैंक्स", मंजु कपूर के "डिफ़िकल्ट डॉटर्स" में किसी अवरोध के बना प्यार, यौन क्रियाएँ एवं शादि के बात की ज़िदगी की समस्याओं का चित्रण लेखकों ने किया है। धार्मिकता की कमी, मूल्यों एवं चरित्रगत गिरावट भी इस काल के औपन्यासिक कृतियों में चित्रित है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अपनी ही निजी जीवन के कुछ पलों को भी उपन्यासकार अपने उपन्यासों का विषय बना दिया है। इन सबके अलावा महिला उपन्यासकारों में तो स्त्री सशक्तीकरण के मुद्दे को प्रबल बनाकर स्त्रीवाद पर उपन्यास रचना करने लगी। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास समय-सापेक्ष बनकर आज के गतिविधियों के साथ-साथ समझौता स्थापित करते हुए अत्यंत तीव्र गति से दौड़

रहा है कि आज के मानव का एक सच्चा चित्रण किया जा रहा है।

अपना कर्तव्य अमिताव घोष के उपन्यासों का विश्लेषण करके शुरु करते हैं। उनके बारे में एवं उनके लेखन के बारे में कहें तो बहुत शानदार एवं ज़िन्तादिली है। अपने द्वारा दिए गए वादाओं को निभानेवाली भी हैं उनकी रचनाएँ। उनके प्रसिद्ध उपन्यास है- "द सर्किल ऑव रीज़न्स" (1986), "शॉडो लाईन्स" (1988), "इन गन एन्टीक लैंट" (1992), "द कोलकत्ता क्रोमासेन' (1996), 'द ग्लैस पैलस' (2000), 'द गंग्री टाईड' (2004), 'सी ऑव पॉप्पीस' (2008), तथा "शिवर ऑफ स्मॉक" (2011) आदि। इनके बारे में अनिता देसाई का कथन इस प्रकार है– "घोष यहाँ के वास्तविक दुनिया में बसना चाहता है न कि काल्पनिकताओं से भरे नकली देश में तथा इस वास्तविक दुनिया के विकास का एक उपन्यासकार के ज़रिए में देखना भी उनकी चाह है।"[15]

स्वतंत्रता के बाद के भारत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में बेहद प्रभावित व्यक्ति है घोष। एक समाज-मानव

शास्त्री एवं विदेश में जाने के अवसरों के दौरान भी उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए प्रासंगिक समस्याओं को, भारत के वास्तविकताओं को प्रस्तुत करते हैं। सांस्कृतिक विघटन, उपनिवेश एवं नव उपनिवेश के सशक्त संरचना, सांस्कृतिक अरूढ़ियों आधुनिक सभ्यता के भौतिकीकरण, मानव संबंधों की मृत्यु, तथ्य एवं मिथ के सम्मिश्रण, प्यार एवं सुरक्षा की तलाश आदि अमिताव के उपन्यास का कथ्य, तथ्य माना जाना चाहिए। "द सर्किल ऑफ रीज़न" के लेखन के साथ ही लेखक प्रसिद्धि का कदम चुना शुरू किया था। एक बंगाली होते हुए भी उनको बंग्लादेश, लंडन तथा मध्यएशिया से भी नितान्त परिचय एवं मेल मिलाव है। इस मेलमिलाव अपने उपन्यासों में एक यथार्थपरक स्पर्श को लाने में उनका मदद भी किया हैं। क्योंकि उनके उपन्यासों में चित्रित वातावरण तथा देश कोई काल्पनिक तौर पर नहीं है- जैसे कि आर.के.जी. कृत मालगुडी एक वास्तविक अनुभवों से उन्होंने अपने औपन्यासिक वातावरण को रूपांतरित करते हैं। दूसरा उपन्यास "द शाडौ लाईन्स" तो साहित्य अकादमी

द्वारा 1989 में पुरस्कृत उपन्यास है जिसमें जादुई यथार्थवाद का सशक्त चित्रण भी मिलता है। इसमें एक बंगाली परिवार के तीन दशाओं का चित्रण है जो विभाजनपूर्व, विभाजन के बाद तथा आज घटित होते जा रहे हैं। बंगाल विभाजन की हर पहलुओं को इतना वास्तविक तरीके से चित्रण किया है कि जिसमें जादुई यथार्थवाद का अतिशयोक्तिपूर्वक प्रयोग माना जाना अनुचित कभी नहीं लगेगा। राजनैतिक आज़ादी एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंध तो उनके हर उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। अगला उपन्यास "इन एन एंटीक लैंट" में धार्मिकता पर बाते चलते नज़र आते हैं। धर्म क्या होता है, इसका प्रयोग कैसे करना है तथा धार्मिक रूढ़ियों से संबंधित बातें एवं अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक-धार्मिक-समन्वय की बात करते हैं। लेखक प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए विभिन्न सांस्कृतिक मुद्दों तथा इसके प्रयोग की सूचना देने की कोशिश तो किया गया ही है। उन्होंने एक साथ हिंदू, मुसलमान एवं जूतों की सांस्कृतिक बराबरी पर भी बल दिया गया है।

"द कोलकत्ता क्रोमासाम" तो स्त्री सशक्तीकरण की ओर इशारा किया गया है। इसका प्रधान पात्र मंगला तो एक सफ़ाईवाली औरत है (Sweeper Women)। इस उपन्यास द्वारा लेखक समाज में स्त्री द्वारा सहती शोषण एवं समस्याओं को चित्रित करने में सफल हुआ है।

एक मर्द होते हुए भी स्त्री उद्धान का जो जोखिम लेखक ने उठया है वो काम बहुत सराहनीय लगता है।

"द ग्लैस पालस" उपन्यास तो 20 वीं शती के साम्राज्य शक्ति के उदार-चढ़ाव पर बल देनेवाला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास म्यान्मार, बर्मा एवं भारत के विभिन्न प्रांतों पर घटित है तथा पात्रों की संरचना इस प्रकार तैयार किया है कि तीन पीढ़ियों का जीवन चित्रित किया है जिसमें प्रत्येक पीढ़ी की जीवन शैली में पीढ़ीगत अंतर स्पष्ट दिखाई देते हैं, जहाँ तीसरी पीढ़ी के पात्रों को देखने को मिलता है।

"द हड़ग्री टाईड" उपन्यास में लेखक पाश्चात्य आगमन के पश्चात परिस्थितिक पर्यावरणवाद तथा सांस्कृतिक जो समस्याएँ

उभर आई है उन सब पर चर्चा करने पर तुले हुए हैं। इसमें अप्रवासन के मुद्दों को लेकर कहीं स्वैच्छिक या मज़बूर जीवन अनुभवों का बेहत्तर वातावरण दे दिया है।

"सी ऑफ पांपीस" में लेखक के समृद्ध एवं विहगंम दृष्टि हमें देखने को मिलते हैं। पहले तो एक प्रसिद्ध रचनात्रय के रूप में "सी ऑव पॉपीस" अमीरी एवं गरीबी निराशा एवं प्रतीक्षा आदि को व्यापक परिप्रेक्ष्य में अपने उपन्यास में चित्रित करने का प्रयास किया गया है। अफ़िम की धंधा (Opium Trade) के वातावरण को भी लेखक इसमें विषय बनाया गया है।

"रिवर ऑफ स्माँक" उपन्यास तो लगभग अंतिम उपन्यास है इसमें बदलते मानवीय जीवन, मॉरीशियस के भारतीय प्रवासियों के बदलते रूढ़ीगत परिवेश, चीन के अफ़ीम धंधा का विस्तृत चित्रण और वहाँ के लोगों की नियति का व्यापक प्रस्तुतीकरण लेखक ने किया है। इस उपन्यास में चीन के साथ धंधा करने पर दिलचस्प कुछ लोगों के चाहतों के बारे में बताया गया है जिनका सांस्कृतिक एवं भौगोलिक पृष्टभूमि का समृद्ध चित्रण इसमें

निहित है। इस उपन्यास का वातावरण फॉक्यू (Fanqui) नामक छोटा सा शहर है, जो छोटी सी प्रांत है, जहाँ प्रथम अफ़ीम युद्ध के पहले विदेशियों ने प्रादेशिक चीनी व्यापारियों के साथ धंधा किया करते थे।

इस प्रकार अमिताव उत्तर-आधुनिक हर पहलुओं को जान-परखकर अपने औपन्यासिक जगत को आगे बढ़ाया है। उन्होंने अपने अनुभवों को लेकर सब कुछ लिखा है। क्योंकि वह बहुत यात्रा करनेवाले थे। हर जगह जाने पर वहाँ से ग्रहण करने योग्य उन्हें जो कुछ महसूस हुआ वह अपने कलम से उतार दिया। उनके आस-पास फिरनेवाले जो थे वे सब उनके उपन्यासों का पात्र बन गया है। अनुभवों से उगलने के कारण जादुई यथार्थवाद की जादुई हाथ इसमें सशक्त तरीके से मिलता है।

अभिमन्यू चैटर्जी, उत्तर-आधुनिक काल के सशक्त उपन्यासकार है। दोनों रचनाकार तो बराबर तरीके से अतिप्रंशसा एवं चेतावनी की ओर आकृष्ट है। आलोचकों के मतानुसार उनके उपन्यासों में कढु समस्याओं जो कठोर नकारात्मकता से भरी भी

होगी, नकचढ़ापन तथा सूजे हुए अभिव्यक्तियाँ भी निहित है। अभिमन्यू के हर उपन्यास अपने समय की आशयों की अभिव्यक्ति एवं इन सबसे अत्यंत निषेध परक प्रस्ताव का अत्युत्तम उदाहरण है। "इंग्लिश ऑगस्ट इन इंडियन स्टॉरी" (1992), "द लास्ट बर्डन" (1993), "द मॉम्मरीस ऑफ द वेल्फेयर स्टेट" (2000), "वेइट लास्ट" (2000) और "वे टू गो" (2010) आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

पहला उपन्यास "इंग्लिश अगस्त :एन इंडियन स्टॉरी" तो नायक की मानसिकता को लेकर खूमते-फ़िरते उपन्यास है। आशय एवं तकनीकी दोनों तरीके से उनका पहला उपन्यास अन्य लेखकों के उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न है। गाँव से शहर की ओर उपन्यास वातावरण बदलते जा रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास का वातावरण दिल्ली, कोलकत्ता एवं मद्रास के प्रांतों से जुड़े हुए हैं। इसमें आज के युवावों के अस्तित्व संकट का भी चित्रण है। अपने मानसिक विकास एवं व्यक्तित्व विकास में इस अस्तित्व संघर्ष के कारण कई दोष भी आ जाने की ओर लेखक इशारा किया

गया है। दूसरा उपन्यास "द लास्ट बर्डन" (The Last Burden-1993) में प्रकाशित हुआ है। जिसमें उन्होंने भारतीय समाज के बुनियादी संरचना के साथ समझौता करने की कोशिश की है। यह बुनियादी संरचना है "परिवार या अणु परिवार"। इस "अणु परिवार" को भारतीय समाज बुनियादी चीज़ के रूप में माने जाते हैं। वही परिवार कालक्रमानुसार कैसे एक बर्डन (Burden) बन जाते हैं इन्हीं का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। विभाजन के तुरंत बाद एक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार किस प्रकार दूसरे नए प्रांत पर जीना शुरु करता है उसी का वर्णन है। पारिवारिक संकट, शादी के बाद के अतृप्त जीर्ण ज़िंदगी, उस वातावरण में पलते-पनपते बच्चों की मानसिक तनाव आदि के साथ-साथ उपन्यास आगे बढ़ रहे हैं।

तीसरा उपन्यास "द मम्मरीस ऑफ द वेल्फेयर स्टेट" (The Memmaries of the Welfare State) गरीबों के जीवन की निश्चिंतता के साथ-साथ उनके पास जो कुछ भी है उससे वे लोग कितनी खुशी-खुशी जीवन बिता रहे हैं उन सबका चित्रण "वेइट लॉस"

(Weight Loss) उपमन्यू चैटर्जी कृत चौथा उपन्यास हैं। जिसका प्रकाशन 2006 में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास तो कटु आलोचनाओं का सामना किया। यौन क्रियाओं का इतना वर्णन किया है कि आलोचक इस उपन्यास को बहुत घटिया एवं निम्न कोटी की रचना संझा। इन सबके मतानुसार जिन लेखक ने अपने पहले, दूसरे एवं तीसरे उपन्यासों के ज़रिए पाठकों को आकर्षित किया है उनके द्वारा इतना घटिया हरकत नामुमकिन माना जाता है। लेकिन लेखक उत्तर-आधुनिक मानव के यौन चाहत को एक अबनौर्मल तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पाँचवाँ उपन्यास "वे टू गो" (Way to Go) 2010 में प्रकाशित उपन्यास है। जो द हिंदू बेस्ट फिक्शन पुरस्कार केलिए चयनित उपन्यासों में एक है। यह उपन्यास उनका दूसरे "द लास्ट बर्डन" का नतीजा मानना पड़ेगा। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के पिता-पुत्र संबंध को लेखक प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए खीचने का प्रयास किया गया है। आज की पीढ़ि के बेवजह, फ़िज़ूल ज़िन्दगी का प्रस्तुतीकरण है। बिना कोई लक्ष्य, धार्मिकता से नई पीढ़ी एवं 85

साल के बुजुर्ग के जिंदगी की त्रासदी का वर्णन है जो पूर्ण रूप से पक्षाघात युक्त बूढ़े की कथा।

इस प्रकार अभिमन्यू चैटर्जी के उपन्यासों में मानव स्वभाव एव व्यवहार की हर पहलुओं को चाहे वह नई पीढ़ी का हो या पुरानी पीढ़ी का चित्रण व्यक्त तरीके से किया है।

उत्तर-आधुनिक समय के सशक्त नंकूर या ढ़ाँचा है शशि तरूर। उनके सुप्रसिद्ध तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं- "द ग्रेट इंडियन नावल" (1989), "शाँ बिसिनस" (1994) तथा "रियट" (Riot-2001। "द इंडियन नॉवल" तो आज के राजनीतिक वातावरण का व्यंग्यात्मक निरूपण है जो महाभारत के जैसे चित्रित है। एक प्रासंगिक ढंग से उपन्यास को बनाए रखने केलिए लेखक राष्ट्रीय मिथकों का इस्तेमाल किया गया है। ऐतिहासिक वातावरण को लेकर उन्होंने भारत के राजनैतिकता का कपट-प्रयोग या कुशलता पूर्वक प्रयोग किया है।

अगला उपन्यास "शाँ बिसिनस" तो लेखक ने एक अलग तरीके को अपनाकर लिखे गए हैं। यह बॉलीवुड़ से संबंधित

उपन्यास है। उपन्यास का नायक अशोक बेंजारा, अमिताब बच्चन के चरित्र से मिलते-जुलते नज़र आते हैं। शूटिंग के वक्त घटित एक दुर्घटना से घायल उनको अपनी बाकी की ज़िन्दगी अस्पताल के गहन चिकित्सा केन्द्र में बिताना पड़ा। अनेक लोगों ने उनके लिए दुआएँ माँगी। ये सारी बातें तो अमिताब की ज़िन्दगी में भी खड़ी थी।

तीसरा उपन्यास "रियट" तो एक विदेशी नारी की हत्या से संबंधित है। महिला स्वास्थ्य सम्मेलन में भाग लेने के वास्ते भारत में आई प्रिस्तिकला हार्ट नामक एक अमेरिकन युवति कीअस्पष्ट हत्या की कहानी है। हिंदू मुसलमानों के सांप्रदायिक दंगे के शहीद बनकर यह महिला उपन्यास के पृष्ठरूप में आती है। मतलब यह है कि हत्या के ज़रिए उपन्यास का मुख्य आशय सांप्रदायिक दंगे का चित्रण करना ही है। इस प्रकार शशि तरूर ने भारतीय वातावरणा को या यहाँ के विविध समस्याओं को, अपने विचारों को व्यंग्यात्मक एवं तीव्र आलोचनात्मक तरीके से व्यक्त करने का प्रयास किया और इसमें सफलता भी पाई हैं।

विक्रम सेथ भी उत्तर-आधुनिक समय के नामी उपन्यासकार है। जो भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। 1986 में "द गॉल्ड गाईट" शीर्षक से उपन्यास लिखकर उन्होंने उस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी पाया है। अपने "ए स्यूटबिल बॉय" (1993) उपन्यास केलिए सबसे अधिक महंगा उपन्यास एवं उपन्यासकार के रूप में दूसरा स्थान भी अर्जित किया है। "द गाल्डन गाईड" तो भारतीय अंग्रेज़ी कथा-साहित्य में एक नया आंदोलन खड़ा कर दिया है। "एक सिलिकन वैली" (Silicon Vally), एक्सिक्यूटिव जॉन के प्यार, वासल्य एवं सपत्ति की कथा है, अधिकांश पात्रों को अपने जीवन में बहुत खामोशी तथा अकेलापन महसूस करते हैं। तब उन सबसे दूर हटाकर अपना जीवन अर्थपूर्ण एवं भावात्मक तरीके से समृद्ध बनाना चाहता है। उपन्यास का अंत भी एक पूर्णता के साथ हुआ है। दूसरा उपन्यास "ए स्यूटबिल बॉय" तो नाम जैसा ही रूप मेहरा ने अपनी युवा बेटी केलिए मंगेदर की तलाश में है। चयन है तु तीन लोग भी उपलब्ध है। कबीर दुरानी, अमित चैटर्जी एवं

हरेश खन्ना। लता तो तीनों से मिलते जुलते रहती है। तीनों की अच्छाइयों एवं बुराइयों को छाँचकर किसी एक का चयन करने का चित्रण है इसमें।

तीसरा उपन्यास "एन ईक्वल म्यूज़िक" 1999 में प्रकाशित हो चुका है जिसमें म्यूज़िक की विशेषताओं का चित्रण रेखांकित किया गया है। लंदन के एक संगीतज्ञ माईकल हॉल्म के साथ उपन्यास शुरु होता है। जो बेदिलचस्प बच्चों को संगीत सिखाने पर तुले हुए नज़र आते हैं। अपने शिष्यों में किसी एक से स्थापित किया गया असंगत संबंध का भी चित्रण है। उपन्यास तो अशांत प्रणय, जुनून तथा हौसला से भरा पड़ा है। संगीत के साथ-साथ "सेथ" अपने प्रणय भावनाओं का मेल यहाँ ठीक-ठीक किए जाते हैं। इस प्रकार लेखक विकेन्द्रीकृत तरीके से उपन्यास के लिए विषय चयन करते नज़र आते हैं जो उत्तर-आधुनिकता की प्रमुख विशेषता माना जा सकता है।

चौथा उपन्यास "ए स्यूटिबल गर्ल' तो प्रकाशन होने वाला है। इस प्रकार विक्रम सेत 1980 के बाद के औपन्यासिक जगत को समृद्ध बनाने में सशक्त भूमि निभाता है।

विक्रम चन्द्रा एक अन्य उत्तर-आधुनिक उपन्यासकार है। अपनी कहानी संग्रह "लव एण्ड लॉड़गिग इन बाम्बे" को कॉमण वेल्त पुरस्कार प्राप्त है। प्रसिद्ध उपन्यास "रेड गर्थ एण्ड पाऊरिंङ्ग राईन" (Red Earth and Pouring Rain) 1995 में प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास इतिहास एवं भारतीय मिथक का सम्मिश्रिण है। इसमें महाकाव्य रूपी सारी विशेषताएँ पाई जाती है। भारतीय ऐतिहासिक चरित्र ईश्वर रूपी गणेश, हनुमान तथा यम को उन्होंने अपने उपन्यास में मानव एवं बंदे के साथ प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास की कथा तो इस प्रकार है कि अभय अपने कपड़े को बचाने केलिए संचय नाम से जन्मी बंदे को शूट किया तो वहाँ आकर यम ने कहा कि संचय के मरने का वक्त आ गया है। तब भगवान गणेश आकर मृत्यु से बचने केलिए एक उपाय दिया कि सबको कहानी सुनाना। वह भी कोई रुकावट के बिना सुनाते

रहना। जब रुकावट आएगा तो तब संजय की मृत्यु हो जाएगी। इस प्रकार कहानी कथन शुरू हुआ जो भारतीय इतिहास के राजाओं से लेकर ईस्ट इंडिया कंपनी, मुगल साम्राज्य आदि ऐतिहासिक पहलुओं को ज़िक्र किया है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास एक सशक्त भारतीय इतिहास ग्रंथ भी मानना अनुचित नहीं होगा। "साक्रेड गेम्स: फैबर एण्ड फेबर" 2006 में प्रकाशित उपन्यास है। जिसमें उनको वोडोफ़ोन क्रोसबार्ड पुस्तक पुरस्कार मिला है।

अमिताब घोष द्वारा पेशित जादुई यथार्थ को आगे बढाने या पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का श्रेय सालमान रुश्ति को जाता है। उन्होंने अपने जादुई यथार्थ के साथ बहुत सारे उपन्यासकारों को प्रभावित भी कराया, जैसे कि रुकून अद्वानी, मुकुल केसवन तथा मकरंत परांजये। उनकी परंपरा को आगे बढ़ाने में इन लेखकों का उपन्यास सशक्त माध्यम बन गया है। रुकून अद्वानी का "बीतोवेन एमंग द काउस" (Beethoven Among the Cows-1994), मुकुल केशवन कृत "लुकिंङ थ् डिग्री ग्लास"

(Looking Through Class-1995), मकरंत परांजये कृत "द नरेटर" (1995) ताबिश खाईट का "एन एंजल इन पाईजामास" (1996), फरुक थोनी कृत "बाम्बे डक" (1990), बोमन ईसाई कृत "द मेमारी ऑफ एलफेंट्स्' (1998) तथा 'एसिलम', 'यू एस ए' (2000) आदि इसमें प्रमुख है।

जादुई यथार्थवाद लेखक की कल्पनाशक्ति को ऊर्जा देकर बढ़ाते हैं पर यह कथासाहित्य के मूल्यों को नष्ट कर देने की गुंजाइश भी है। इसका एक सशक्त उदाहरण है "बीतॉवन एंण्ड काऊस" जो रुकून अट्टानी द्वारा लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास आठ अध्यायों में विभक्त हैं। पर हर अध्याय तो एक दूसरे से जुडे हुए नज़र आते हैं। एक जुड़वे बच्चों की सचेतन मन की ओर उपन्यास की कहानी जाते रहते हैं।

किरण नगारकर साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकार है जिनका उपन्यास "कुक्कोल्ड' (Cuckold 2000) अलग तरीके से लिखे गए उपन्यास है। पहला उपन्यास तो "सेवन सिक्सेज़ आर फॉर्टी थ्री' तो मराठी साहित्य में सर्वसम्मत

माने जाते हैं। दूसरा तो "रावण एण्ड एड्डी" (Ravan & Eddie) मराती में लेखन शुरू किया। 1991 के बाद अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुए उनका तीसरा उपन्यास है "कुकोल्ड" जो सर्वस्वीकृत है। बाद का उपन्यास संपूर्ण बनाने केलिए उनको नौ साल तक प्रयत्न भी करना पड़ा। 2006 में "गोड्स लिटिल सॉलाजियर" नाम से प्रकाश में आया। जिसमें एक मुसलमान लड़के की ज़िन्दगी से सम्बन्धित बातें बताया गया है। 2012 में उन्होंने "द एक्स्ट्रास" प्रकाश में आया। अंतिम उपन्यास "रावण एण्ड एड्डी" की दूसरी कड़ी के रूप में "रेस्ट इन पीस" लिखा है। अपने सारे उपन्यासों में उन्होंने उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के विभिन्न बातों को, समस्याओं को उजगार करने का प्रयास किया गया है।

नई पीढ़ी के लेखकों के साथ-साथ कुछ पुरानी पीढ़ी के लेखकगण भी 1980 के बाद लेखन किया करता था। उनमें प्रमुख है आर.के.जी का उपन्यास "द टाईगर फॉर मालगुडी" (1983), 'टोकेटिव मैन' (1983), 'द वर्ल्ड आफ नागराज' (1990), तथा "ग्रान्डमथर्स टाईल" (1992) प्रमुख हैं। मुल्कराज आनन्द भी 1980

के बाद के समय में लेखन कार्य किया है। "द बाबिल" (1984), 'लिटिल प्लेईस ऑफ महात्मा गाँधी" (1991) तथा "नाईन मूड्स ऑफ भारत: नावेल्स ऑफ ए पिलग्रीमेज" (1998)। शिव के कुमार कृत "न्यूड़ बिफोर गोड", "ए शिवर विथ थ्री बैंकस्" (1998) तथा "इन्फ़ाटुएशन" (2001) उत्तर आधुनिक समय के साथ चलनेवाले औपन्यासिक कृतियाएँ हैं। अरुण जोशी के साहित्य अकादमी पुरस्कृत उपन्यास "द लॉस्ट लाबिरिन्त" 1982 में प्रकाशित है। अपने पाँच उपन्यासों में दो उपन्यास उत्तर-आधुनिक समय के साथ प्रकाशित हुआ है- "द सिटि एण्ड द रिवर" (1990), "द लॉस्ट लाबिरिन्त" जिन्दगी की और उनका विचार अन्य लेखकों की अपेक्षा काफ़ी अलग एवं विचित्र है। इन सारी विचारों को उन्होंने अपने उपन्यासों में लाने की कोशिश की है। उनके लिए जीवन एवं मृत्यु सिवके के दो पहलू नहीं लगते हैं। उनके मतानुसार मृत्यु जीवन के एक दुःखपूर्ण सूचना मानते हैं। हर व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा समय ज़रूर आएगा जब वह सबकुछ भूलकर आत्मीयता पर शरण लेते हैं। तब वह ईश्वर के हाथ के साधन

मात्र बनेंगे। मतलब तो यह निकला कि जोशीजी के उपन्यासों में ईश्वर का एक अदृश्य स्पर्शा एवं संबंध हमेशा बनाए रखते हैं। "सिटि एण्ड द रिवर" में भी नदी को प्रमुखता देकर लिखा गया है। नदी जीवन का मूल श्रोत है तथा मानवीयता का भी। और ईश्वर इसका मुख्य तत्व हैं

"चेतन भगत" नाम से ही विख्यात उत्तर-आधुनिक समय के नवलेखकों में एक है, जिन्होंने अपने लेखन के द्‍वारा पाठकरों को वश में कर दिया गया है। युवगण को आकर्षित करनेवाले मूल तत्व उनके उपन्यासों में से पाया जा सकता है। क्योंकि उन्होंने अपने उपन्यास में युवा मानसिकता ही शामिल किया है, जैसे कि युवागण की मानसिक बदलाव, बदलती वातावरण, युवा समस्याएँ आदि सबके साथ-साथ प्रणय, विवाह, यौन सबको स्थान दिया गया है। उनका प्रसिद्‍ध उपन्यास है- "फाईव पॉईंट समवण" (2004), ‘वन नाईट अट द कॉल सेंटर" (2005), "त्री मिस्टेक्स ऑव माई लाईफ" (2008), "टू स्टेट्‍स’ (2009), "रेवल्यूशन 20-20" (2011), ‘हाल्फ गर्लफ्रेंट" (2014), "वन इंडियन गर्ल" (2015), आदि में उत्तर-

आधुनिक तकनीकी विकास के साथ युवाजन के कार्य-कलापों को सशक्त ढंग से व्यक्त किया है। करण बजाज तथा रवीन्दर सिंह भी अन्य सुप्रसिद्ध उत्तर-आधुनिक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए पाठकों को आकर्षित किया गया है। समकालीन प्रणय कथाओं को तकनीकी स्पर्श दिलाकर समर्पित किया गया है। किरण का प्रसिद्ध उपन्यास है- "कीप ऑव द ग्रास" (2008), 'जोणी गोण डाऊण" (2010) "द सीकर' (2015)। रवीन्द्र सिंह का प्रसिद्ध उपन्यास है "आई टू हैड़ ए लव स्टॉरी" (2008), "केन लव हैप्पन ट्वैस" (2011), "लाईक इट हैपन्ड़ येस्टर्टे", "यू अर ट्रीम्स आर माईन नाऊ," "टेल मी ए स्टॉरी" तथा "दिस लव देट फीलस् राईट"।

उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी महिला उपन्यासकारों के बारे में आगे सूचित किया है। उनमें से प्रमुख हैं अनिता देसाई (जो आधुनिक काल से शुरु होकर उत्तर-आधुनिक समय में भी लेखन कार्य करती रहती हैं।) नयनतारा सहगल, शशी देशपाण्डे, अरुन्ततीरॉय, मंजु कपूर, गीता मेहता, शोभा दे, कमला मार्कण्डेया,

सुधामूर्ति आदि। ये सारी लेखिकाओं ने अपने जीवन अनुभव से तरह-तरह के उपन्यास लेखन किया है पर सबमें प्रेम का अतिरेक देखने को मिलते हैं। महिला उपन्यासकारों ने प्रेम, शादी, अकेलापन तथा अस्तित्व की तलाश में अपनी कलम चलाई है।

पहले तो कमला मार्कण्डेया की रचनाओं से शुरू करेंगे। उनका तो 1980 के बाद सिर्फ एक ही उपन्यास है- "प्लेशर सिटी" (1982) जो गाँवों में मल्टीनेशनल कार्परेट के अपसारण पर बल दिया गया है। सांस्कृतिक मुकाबला यहाँ पूर्व बनाम पश्चिम का नहीं बल्कि परंपरा बनाम आधुनिकता से है। एक आम मछुवा गाँव में एक बहुराष्ट्रीय निगम वहाँ के समूह तट पर एक हाँलिडे रिसोर्ट बनाने हेतु आया तो गाँववालों ने मिलकर उनके खिलाफ़ अपनी आवाज़ उठाते हैं। कमला मछुआरों की ज़िन्दगी को, जीवन शैलियों को, वहाँ के वातावरण को अच्छी तरह अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। परंपरागत रीतियों को अपनाने वाले लोग को किस हद तक नए विचारों को अपना सकते हैं, किस हद तक वे

विरोध करते रहेंगे इन सबका सशक्त चित्रण लेखिका ने इसमें लिखा गया है।

आगे अनिता देसाई की रचनाओं पर विचार करेंगे। जिन्होंने अपने उपन्यास लेखन को एक साधना मानकर बहुतसारी रचनाएँ की हैं। 1980 के बाद के उनके चर्चित उपन्यास है "क्लियर लाईट ऑफ द डे" (1980) "द विल्लेज बै द सी: एन इंड़ियन फैमिली स्टॉरी" (1982), "इन कस्टडी" (1984), "बॉमगर्डनर्स् बाम्बे" (1988), "जर्नी टू इताका" (1995) तथा "फॉस्टिंग फीस्टिंग़" (1999)।

"क्लियर लाईट ऑव द डे"- दो बहनों की कहानी है। उपन्यास की शुरुआत एक बहन तारा का, दिल्ली में उनके पुराने घर में आ मिलने से हैं और उनके परिवार की रवानगी से उपन्यास का अंत होता है। "इन कस्टडी" तो देवन नामक एक कॉलेज हिन्दी प्रवक्ता की कथा है, घर एवं कालेज में उनके जो दर्दभरी ज़िन्दगी का चित्रण है।

नया उपन्यास "फास्टिंग-फ़ीस्टिंग़" तो एक छोटी सी परिवार की कहानी है जिसे मम्मान्डापा एवं तीन बच्चों को केन्द्र पात्र

बनाकर लिखा गया है। मम्मा एवं पापा में दोनों को अलग करना मुश्किल है इसलिए मम्मान्डापा बनाया गया है। दो भिन्न चरित्रों वाली उमा तथा अरुणा की कहानी है। एक तो पति से तिरस्कृत घर परिवार तोड़ने एवं छोड़नेवाली है तो दूसरी परिवार एवं पति को खुशी करानेवाली।

अनिता की विशेषता यह निकला कि मानव मन को पढ़ने की क्षमता तथा अपने पात्रों को अच्छी तरह पढ़ने की क्षमता, खास करके नारी पात्रों को, साथ-साथ पढ़ने योग्य भाषा संरचना के इस्तेमाल की क्षमता, इन क्षमताओं की वजह से उनके हर उपन्यास पढ़ने लायक एवं दिल्चस्प माने लगता है।

नयनतारा सहगल भी एक सुप्रसिद्ध उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी महिला उपन्यासकार है। आप न सिर्फ उत्तर-आधुनिक समय की लेखिका है बल्कि आधुनिक संदर्भ से लेकर लेखन कार्य में व्यस्त है। 1980 के बाद में प्रकाशित उनके उपन्यास है- "रिच लाईक अस" (1985), "प्लैन्स् फॉर डिपार्चर" (1985), "मिस्टेकन आइडेन्टिटी" (1988), "ए सिचुएशन इन न्यू डेल्ही" (1989), तथा

"लेस्सेर ब्रीड़स" (2003)। "रिच लाईक अस" केलिए उनको साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त है। 1975 दौरान घोषित आपातकालीन पृष्टभूमि में लिखे उपन्यास है "रिच लाईक अस"। उस काल के राजनीतिक वातावरण भी इसमें शामिल है। "प्लैंस फॉर डिर्पाटर्वर" तो भारतीय-पाश्चात्य संबंधों से संबंधित है तथा "मिस्टेकन आईडेंटिटी" एक असफल प्रवासी के भारत लौटने की कहानी है। "ए सिचुवेशन इन न्यूडेल्ही" में सहगल विभिन्न प्रकार के नारी पात्रों का चित्रण किया गया है। देवी नामक पात्र तो सबसे आज़ाद लड़की है। सबसे खुल-मिलकर बातें करती है। वीणा, पिंकी की माँ दोनों परंपरागत रूढ़ियाँ अपनाकर जीनेवाली है। घर गृहस्थी उनकेलिए सब कुछ है। सभी के ज़रिए यह मालूम पड जाता है कि लेखिका नारी के नए रूप को नए-नए अस्तित्व के साथ अपने आवाज़ उठाना चाहती है। उनका सबसे नवीनतम उपन्यास "लेस्सेर ब्रीड्स्" तो बहुत सारी समस्याओं का लेन-देन करने के प्रयास में लिखा गया है। 1857 के पूर्व-पश्चिम आज़ादी आन्दोलन के समय के उपनिवेशवाद, जातिवाद, फ़ासिज़म,

हिरोषिमा तथा नागसाक्की, सिपाही-सैनिक समस्याएँ 1919 के राजनैतिक अशांति, अहिंसावादी आन्दोलन, दंड़ी मार्च, सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil Disobedience War) पुलिस बहुतायात, विभाजन तथा भारतीय यू.एस. संबंध आदि से संबंधित उपन्यास है। यह विशेष रूप से पुरुष पहलवान को महत्व देनेवाले सबसे पहला उपन्यास माने जाते हैं।

अगली लेखिका है शशि देशपाण्डे जो आधुनिक, उत्तर-आधुनिक दोनों परिदृश्यों में आती है। उनके उत्तर-आधुनिक समय के उपन्यास है "द डार्क हाल्डस् नो टेरोर्स" (1980) को प्रकाशित है, "इफ आई डाई टूडे" (1982), "कम अप एण्ड भी डेड" (1983), "रूट्स् एण्ड शॉडॉस" (1983), "दाट लाड साईलेंस" (1988) "द बाईंटिंग वाईन" (1993), "स्माल शेमडीस" (2000), "मूविङ ऑन" (2004), "इन द कण्ट्री ऑफ डिसीर" तथा 'शाडौ प्लै' (2013), भारतीय नारी की दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने में शशी के उपन्यासों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। पुरुष-प्रधान समाज में नारी के स्वातंत्र्य को लेकर परंपरा के विरुद्ध आवाज़

उठाने का प्रयत्न लेखिका अपनी रचनाओं के माध्यम से किया गया है।

पुरुष प्रधान समाज में होती नारी के अपकृष्ट स्तर (Inferior Position) तथा आगामी अधमता को लेखिका ने अपनी रचनाओं का मुख्य अंश बनाया गया है। उनकी हर नारी पात्र किसी न किसी अच्छे पद पर विराजमान है। इंदु जो "रूट्स एण्ड शॉडोऊस" की नारी पात्र एक पत्रकार है। जया 'दाट लाँज साइलेंस' का एक घरेलू औरत एवं लेखिका है, "द डार्क होल्डस् नो टेरोर्स" का स डिग्री एक डॉक्टर है, "द बाईडिंग वैन" की नारी पात्र "ऊर्मी" एक कॉलेज अध्यापिक है। "ए मैटर ऑव टाईम" की सुमी एक शिक्षीत नारी, "स्माल रेमडीस" के सावित्री भाई एवं लीला क्रमशः गायिका एवं सामाज सेविका के रूप में काम करती हैं। देशपाण्डे के मतानुसार शिक्षित एवं सक्रिय नारी अपनी आशयों के अनुसार खुद के एवं दूसरी नारियों के आसादी का कारण बनकर नारी अस्तित्व संभावना देने में सशक्त है। मतलब तो यह निकला कि नारीत्व संबंधी समस्याओं को दूर करके अपने अस्तित्व को बनाए

रखने की मकसद में ही देशपाण्डे अपनी रचना लेखन करती है।

शोभा दे (Shoba De) उत्तर-आधुनिक संदर्भ के सशक्त लेखिका है। उनके उपन्यासों की मुख्य विशेषता तो यह है कि उन्होंने प्रेम संबंधी बातों को महत्व दिया गया है। अन्य नारी लेखिकाओं से अलग हटकर उन्होंने एक खुली नज़र से बातों को प्रस्तुत कर रही है। उन्होंने परंपरागत नारियों के साथ-साथ हर प्रकार के बदलते परिवेश में जीनेवाली नारियों का चित्रण उपन्यासों में किया है। जैसे बदलते परिवेश के अनुकूल बदलती नारियों का चित्रण उपन्यासों में किया है। जैसे बदलते परिवेश से वशीभूत, अधिकारहीन एवं मुक्त आज की नारियों का चित्रण। उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास है- "सोशियलिस्ट ईवनिंग्स" (Socialist Evenings-1989) 'सेकण्ड थोड्स्' (Second Thoughts- 1996) दोनों परिवार, शादी संबंध अस्तित्व की तलाश, पितृसत्तात्मक समाज, अतिजीवन केलिए संघर्ष आदि का चित्रण है तो, 'स्टैरी नाइट्स्' (Starry Nights-1992) आदि सिनेमा क्षेत्र की ओर बॉलिवुड तथा

शारीरिक शोषण एवं यौन उत्पीड़ाओं से संबंधित उपन्यास है। "सल्ट्री डेईस" (Sultry Days- 1994) अंतिम दशा के उपन्यास एवं प्रारंभिक नारी सशक्तीकरण तथा अति आधुनिक अमीर लोगों के जीवन शैली से संबंधित उपन्यास है। उनका उपन्यास नगरीय ज़िन्दगी के एक अंश माना जा सकता है। उन्होंने नगरीय नारी के अंतरंग पक्षों का यथार्थपरक चित्रण एवं आज के समाज में उनके जो हालत है उसका चित्रण किया गया है। उन्होंने भारतीय नारी के समस्या पर भी अपने उपन्यास में उल्लेख किया गया है। स्त्री शोषण, भेद-भाव, एवं उपभोग की ओर भी हमारा ध्यान खींचना लेखिका का उद्देश्य माना जाना चाहिए। उनका विरोध केवल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की ओर नहीं बल्कि पुरुष प्रधान समाज के रीतियों एवं तंत्र की और हैं जहाँ स्त्री हमेशा पराधीन एवं पार्श्वीकृत हो जाती हैं।

"अरुन्धती रॉय" जो प्रसिद्ध उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी महिला उपन्यासकार है जिन्होंने अपने एक ही उपन्यास "गॉड ऑफ स्माल थिङ्गस्" (1997) प्रकाशित करके सर्वख्याति प्राप्त की

है। 1998 में उनको प्रस्तुत उपन्यास केलिए 'बुकर' पुरस्कार भी मिला है। लेखिका ने अपने प्रांत केरल के कोट्टयम जिल्ला के अयमन्नम नामक गाँव को चित्रित करनेवाले प्रस्तुत उपन्यास में अम्मु नामक सिरियन क्रैस्तव महिला एवं परवा जाति के वेलुत्ता नामक युवक की दयनीय कथा है। उनके घरवाले तो दोनों के प्यार को दबाने केलिए शासन एवं कानून के इस्तेमाल करके झूठी इल्ज़ाम लगाकर वेलुत्ता को जेल भेज कर मारने की कथा है। प्रस्तुत उपन्यास की वातावरण एवं पात्रों को तैयार करने में लेखिका की जो क्षमता है वो सराहनीय माना जा सकता है। "द मिनिस्ट्री ऑफ अटमोस्ट हैपिनेस" (The Ministry of utmost happiness-2017) में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है। अपने पहले उपन्यास और दूसरे उपन्यास के बीच में लंबी अवधि जो बीस साल का है। आधुनिक भारतीय इतिहास के कुछ पहलुओं के साथ उपन्यास आगे बढ़ रहा है। हिज्रा मतलब हिज़डा नारियों का चित्रण भी इसमें है जो एक वाद के रूप में आज विद्यमान है।

मंजु कबूर-शिक्षित उपन्यास लेखिकाओं में एक है जिन्होंने अपने पहला उपन्यास "डिफिकल्ट डॉटर्स" (Difficult Daughters - 1998) लिखकर ख्याति अर्जित किया है। इस उपन्यास को 1999 के कॉमन वेल्त पुरस्कार भी मिला है। यह एक सीधी-सादी कहानी है जिनमें अति आकर्षित लेखन शैली एवं सरल भाषा देख सकते हैं। यह वीरमती नामक एक औरत की कहानी है जिन्हें अपने प्रोफेसर हारिश द्वारा सम्मेहित एवं उसके बाद की घटनाओं का चित्रण इसमें है। कहानी का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है कि-शुरुआत वीरमती के दाह संस्कार के समय से होता है। उनकी बेटी द्वारा अपनी माँ की कहानी को यहाँ खोल देती हैं। सूरज प्रकाश एवं कस्तूरी की बडी बेटी वीरमती अपनी चाची के घर के किराएदार में बसती है एवं उनके प्रोफेसर हारिश से संबंध में भी आते हैं। शादीशुधा हारीश अपने अशिक्षित पत्नि से असंतुष्ट होने के कारण वीरमती के करीब आता है, पहले वीरमती उन्हें नज़र अंदाज करती है लेकिन धीरे-धीरे अनजाने इश्क में पड़ जाती है इस संबंध को जानकर परिवार में होती हंकामा के कारण

वीरमती एवं हारिश परिवारों को छोड़कर एक दूसरे के हाथ ग्रहण करके वहाँ से पलायन करते हैं वहाँ जाकर एक बेटी को जन्म भी दी है। इड़ा जो संकटपूर्ण शादी से तलाकी औरत है। इडा अपनी माँ से प्यार तो करती थी पर उनके जैसे बनना नहीं चाहती थी। उपन्यास की शुरुआत का कथन देखने पर यह बात भी व्यक्त हो जाएगा "मैं कभी अपनी माँ जैसे नहीं बनूँगी। यही तो मेरी इच्छा है।" और उपन्यास का अंत "मुझे और परेशान मत करना माँ" कहने से ही होता है। दूसरा उपन्यास "ए मैरीड़ वुमन"(2002) ओस्कॉर पुरस्कार के चयनित उपन्यासों में एक है। तीसरा तो "हॉम" (Home-2006), हच पुरस्कार केलिए चयनित तथा चौथा "द इमिग्रंट" (The Immigrant) पाँचवाँ उपन्यास "द कस्टडी" तो 2011 में प्रकाशित है जिनको बालाजी टेलिफिल्म "ये हैं मोहबतें" नाम से सीरियल बनाया गया है। 2016 में "ब्रदर्स ए नॉवल" भी लिखा है। इस प्रकार भारतीय अंग्रेज़ी महिला उपन्यासकारों में एक मशहूर लेखिका है "मंजू कपूर"।

युवावर्गीय उपन्यास लेखकों में पाठकों पर प्रभाव डालनेवाले उपन्यासकार है चेतन भगत। औपन्यास जगत में उनका पदार्पण एवं उन्नति एक जादूई तरीके से होते नज़र आते हैं। क्योंकि उनकी लेखनी में भी युवावर्गों को खींचने एवं आकर्षित करने की क्षमता है। तो उनके जैसे उपन्यासकार के बारे में ओर पढ़ना उनकी रचनाओं का समीक्षा करना अति आवश्यक है। उनके औपन्यासिक रचनाऐं निम्नलिखित है- "फाइव पॉइन्ट समवन" (Five point someone), "द थ्री मिस्टेक्स् ऑफ माई लाइफ" (The Three Mistakes of my life) 'वन नाइट अट द कॉल सेंटर" (One Night at the call centre) 'टू स्टेट्स" (Two States), "रेवल्यूशन 20-20' (Revolution 20-20) "हाल्फ गर्लफ्रेंट" (Half Girlfriend), 'वन इंडियन गर्ल' (One Indian Girl) आदि। इन सब उपन्यासों में चेतन ने साहसिकता, प्यार की पृष्ठभूमि, संगीतात्मकता के साथ-साथ भारत के उत्तर-आधुनिक समय के सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, तकनीकि एवं वर्ग-व्यवस्थाओं पर टीका-टिप्पणी करते आए हैं। उनकी लेखन शैली उत्तर-आधुनिक भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक

जगत के एक आन्दोलन का रूप धारण करते हुए नज़र आते हैं। उन्होंने जिस क्षेत्र के बारे में अपनी रचना में लिखते हैं उस क्षेत्र के हर छोटी-मोटी पहलू को जोड़कर लिखते हैं। कुछ भी छोड़कर नहीं। उनसे प्रभावित होकर बहुत सारे युवागण लेखन क्षेत्र पर्दापण किए गए है। सार्वलौकिक एवं शहरीकृत व्यवस्था की पृष्ठभूमि में यथार्थवाद प्रसंग को उन्होंने अपने उपन्यासों के ज़रिए बाहर लाने की कोशिश की है। "वन नाईट अट द कॉल सेंटर" इसकेलिए एस सशक्त मिसाल ही हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में उत्तर-आधुनिक उपभोक्तावादी सामाजिक दशा में मानवता की असली पहचान एवं दशा को दिखाने की जोखिम भी उठाया है। उनकी रचनाएँ आज कृत्रिम दिखावा से छीने गए मानव-मूल्यों की सही पहचान भी माना जाना चाहिए।

रवीन्दरसिंह, भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक जगत के अन्य एक नव उपन्यासकार है। अपना ही प्यार उनके पहले उपन्यास के रूप में रूपायित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास इश्कबाज़ तो ज़रूर है पर त्रासदी भी। उन्होंने उस त्रासदी को भुलाने केलिए, उस

वातावरण से पार करने केलिए कलम पकड़ा है और पहला उपन्यास "आई टू हैड़ ए लव स्टॉरी" की रचना किया है। ‘कैन लव हैपन ट्वाईस’, ‘लव स्टॉरीस दाट डचड़ माई हार्ट’, ‘लाईक इट हैपन्ड एस्टर्डे’, ‘युवर ड्रीम्स आर माईन’, ‘नाऊ टेल मी ए स्टॉरी’, ‘दिस लव दाट फील्स राईट’ आदि उनके अन्य उपन्यास हैं।

दुर्जोय दत्ता-एक भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकार, पटकथा लेखक है। उन्होंने सहायक लेखकों की मदद से बहुत सारा लेखन कार्य किया है। ऐसे कुछ उपन्यास प्रकाश में आया है- "ऑफकॉर्स आई लव यू", ‘टिल आई फाइन्ट समवण बेटर’ (सह लेखक-मानवी अहुजा 2008), "ऑ, यस आइ एम सिंगल एण्ड सो इस माई गर्ल फ्रेंट’ (सह लेखक-नीति रूस्तगी-2010), ‘द बैक बंर्चस् सीरीस’ (2011), ‘समवन लाईक यू’ (सहलेखिका-निखिता 2013), "हॉल्ड माई हान्ट’ (2013) ‘वैन ऑन्ली लव रिमाईन्स’ (2016), ‘द गर्ल ऑफ माई ड्रीम्स’ (2016), ‘द बाय व्हू लवड्’ (2017), ‘द बॉय विथ ब्रॉकन हर्ट" (2017) आदि।

सुधामूर्ति एक सफल कन्नड़ एवं अंग्रेज़ी उपन्यासकार है जिन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए स्त्रीवाद, उदारता एवं आत्म-साक्षात्कारी भावनाओं पर अपनी खुद की धारणाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है। साहित्यिक भावनाओं के आधार पर उनको बहुत सारे पुरस्कार भी मिला है जिन्में सुप्रधान है- पद्मश्री एवं आर.के. नारायण पुरस्कार। लेखिका ने स्त्री सफ़र को जैसे उनकी ताकत, संघर्ष, समस्याओं को सामना करने की क्षमता आदि को अपनी रचनाओं में समर्थ ढंग से जिक्र किया है। उनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता तो यह है कि सरल एवं युक्तियुक्त शैली। ताकि पाठकों को जल्द ही जल्द समझ में आए। प्रमुख औपन्यासिक कृतियाँ- "महाश्वेता" (2000), "वाईस एण्ड अदरवाईस" (2002), "डोलर बहू" (2003), "हाऊ आई टॉट माई ग्रण्डमदर टू रीड एण्ड अदर स्टारीस" (2004), "द ऑल्ड मैन एण्ड हिस गौड़' (2006), 'जेंडली फाल्स इन बकुला" (2008), 'द डे आई स्टाप्ड् ड्रिंकिंग़ मिल्क" (2012), "द मदर आई नेव क्नाँस" (2014), "द सर्पटंस रिवेंज" (2016), "द बर्ड विथ गाल्डन विंग़्स" (2009),

"हाऊस ऑफ कार्डस्" (2013), "थ्री थाभसन्ट स्टिचस" (2017), "मिसेरबिल सक्सस" आदि।

3.4. निष्कर्ष

भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहास को एक छोटा सा अध्याय में संक्षिप्त तरीके से भरना उतना आसान कार्य नहीं है, फिर भी कोशिश की है। भारतीय अंग्रेज़ी रूपी अवधारणा को लेकर अपना अध्याय आगे बढ़ रही है। उत्तर-आधुनिक अंग्रेज़ी उपन्यासों के समग्र अध्ययन करने के वास्ते इस अध्याय चुन लिया है। पर साथ ही साथ भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन विकास को, उसके समग्र इतिहास को समेटने का प्रयास भी किया है। भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक त्रयी मुल्कराज आनन्द, आर.के. नारायण और राजाराऊ के समग्र अध्ययन संक्षिप्त एवं स्पष्ट रूप में इस अध्याय में किया है। भारतीय अंग्रेज़ी गद्यसाहित्य एवं पद्यसाहित्य के विकास क्रम भी इसमें अंकित किया गया है। लेकिन महत्वपूर्ण उत्तर-आधुनिक उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासों को दिया गया है ताकि आगे के अध्याय का अध्ययन

समीचीन ढ़ंग से हो पाएँ। नव उपन्यासकारों के उपन्यासों की विशेषताओं की ओर भी इसमें जिक्र किया है।

इस अध्याय की शुरूआत में यह जिक्र किया है कि भारतीय उपन्यास का विकास मध्यवर्गीय विकास के साथ ही हुआ था ताकि भारतीय जीवन यथार्थता को गद्यात्मक तरीके से समझ सकें और समझा सकें। इसके विकास के साथ-साथ उपन्यास-आलोचना के बुनियादी विकास भी हुआ है। भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों केलिए बहुत प्रेरणादायक तत्व विदेशी भारतीय होते थे जो उपनिवेशिक जगत पर जीने के कारण अंग्रेज़ी रचनाओं के ज़रिए अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को वैश्विक स्तर तक पहूँचा सकें। इसके फलस्वरूप भारतीय लोग इंडो-एंग्लियन साहित्य को आगे बढ़ाया जो उत्तर-आधुनिक स्तर तक पहूँचकर खड़ा है। उपनिवेशवादी अवधाराणा को आम जनता तक पहूँचाने का प्रयास भी भारतीय अंग्रेज़ी गद्य साहित्य की अद्‌युतीय योगदान माना जाना चाहिए। उपनिवेशवाद के सांस्कृतिक विरासत एवं साम्राज्यवादी धारणाओं की प्रतिक्रिया तथा विश्लेषण द्‌वारा

बनाया हुआ उत्तर-आधुनिकतावादी बौद्धिक तर्क को उत्तर-औपनिवेशवाद की दर्जा दिया जा सकता है। लेकिन इस धारणा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि विकासशील राष्ट्रों तथा विकसित औपनिवेशिक राष्ट्रों के बीच के संबंध को (जो कभी-कभी विकासशील राष्ट्रों तथा संपन्न राज्य किया करते थे) बनाये रखने केलिए प्रतिष्ठित धारण मात्र है। जिसके परिणाम स्वरूप आज भी विकासशील राष्ट्र जाने-अनजाने इस उपनिवेशी राष्ट्रों के द्वारा नियंत्रित एवं व्यवस्थित बनते जा रहे हैं। इन सब बातों की ओर पाठकों को जागरूक बनाने का काम भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य, विशेष रूप में गद्य साहित्य अपनी अहम भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र – पृ. सं. 434.
2. Education in the emerging Indian Society, Shivarajan – P. No. 115.
3. भारतीय अंग्रेजी कथा साहित्य, डॉ. रामसेवक सिंह – पृ. सं. 11.
4. The Indian Contribution to English Literature, Sreenivas Ayyangar.
5. भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य, डॉ. रामसेवक सिंह – पृ. सं. 51, 52.
6. वही – पृ. सं. 51, 52.
7. वही – पृ. सं. 55.
8. वही – पृ. सं. 59.
9. भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य का इतिहास, एं.के. नाईक – पृ. सं. 172, 173.
10. वही – पृ. सं. 176.
11. वही – पृ. सं. 217.

12. Litercture & Social Reality-The Irion Path २४ वाँ खण्ड़ - पृ. सं. ३।
13. A bend in the Ganges, Manohar Mulguvkar Introduction.
14. Post Colonical Women Writers New Perspectives: Sunita Sinha – P. No. 222.
15. Choosing to inhabit the real World, Anita Desai – P. No. 167-169.

चौथा अध्याय

उत्तर-आधुनिक हिन्दी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में मानव जीवन: एक तुलनात्मक अध्ययन

4.1. भूमिका

उत्तर-आधुनिक परिदृश्य व्यक्त करने का पूरा का पूरा प्रयास मैंने दूसरे अध्याय में किया है। उत्तर-आधुनिक मानवीय जीवन, विशेषकर हिंदी एवं भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानवीय जीवन के आधार पर परखना मेरा उद्देश्य है। दिन-ब-दिन बदलती सामाजिक परिवेश में मानवीय जीवन की गहराइयों को खोजना आसान कार्य नहीं है, फिर भी पूर्ण लगन से इस अध्याय में मैंने कोशिश की है।

हम सब जानते हैं कि उत्तर-आधुनिकता व्यक्ति समाज को या किसी एक व्यक्ति की विवेक को महत्व नहीं दिए जाते हैं बल्कि बहुलतावादी दृष्टिकोण को अपनाती हैं। अर्थात् बहुव्यक्ति सत्ता एवं बहुव्यक्ति विवेक पर बल दिया जाता है। इसी प्रकार

असहमति उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण की एक विशेषता है। याने कि हर किसी बात पर असहमति प्रकट करना, अपने विचारों को महत्व देना, दूसरों के विचारों को नज़रअंदाज़ कर लेना आदि।

उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के तहत मनुष्य जीवन में मानवीय संवेदनाओं की कमी भी देखा जा सकता है। मानवीय एकता, सहमति, स्वानुभूति हमदर्दी आदि सब आज कही आँख मिचौनी खेल कर रहे हैं। इन गतिविधियों का मुख्य वजह तो वैज्ञानिक विकास एवं अविष्कार को ही कहा जा सकता है। क्योंकि वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास मनुष्य को, अपनी संवेदनाओं की ओर संकुचित बना दिया है। अधुनातन परिप्रेक्ष्य में तकनीकी सुविधाओं से विकसित संस्कृति एवं ब्रांटड कल्चर मानवीय एहसास को एक संवेदनहीन या विचित्र स्तर में पहूँचा दिया कि उनको समझने एवं समझाने की क्षमता नष्ट हो जाती है और उसे एक प्रकार के असंदेहात्मकता की दुनिया में धकेल दिया जाता है।

समाज को अपने कालगत विशेषताओं के साथ अपने समाज के बदलते स्वरूप को हमारे सामने विस्तृत कैनवेस में उसी ढंग से खींचना उपन्यास का काम है। उपन्यास के इस प्रकार की कोशिशों से समाज में व्याप्त असंगतियों, अंधविश्वासों, परंपराओं, कुरूपताओं, असंदिग्ध व्यवस्थाओं का हल कुछ हद तक किया जा सकता है। समाज एवं मानवीय जीवन की हर पहलुओं को चूम-चूमकर उत्तर-आधुनिक, उत्तर-औद्योगिक परिवर्तन की गति बढ़ती जा रही हैं।

अधूरे साक्षात्कार के पृष्ठसंख्या 1 पर नेमिचन्द्र जैन ने कहा है कि - "आज के जीवन के भाव सत्य को अपनी समग्रता में सभी स्तरों एवं आयामों व्यापकता और गहनता के क्षेत्रों में अभिव्यक्त करने केलिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं।"[1] इसी प्रकार डॉ. रत्ना शर्मा भी अपनी पुस्तक "समकालीन हिंदी उपन्यास यथार्थबोध और उसकी भाषा" में बतायी है कि- "जीवन का जितना विस्तृत चित्रण उपन्यास में संभव है उतना अन्य विधा में नहीं।"[2]

इस प्रकार उत्तर-आधुनिक उपन्यासों की समीक्षा करने पर यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है कि मनुष्य के जीवन के विविध रंगों और चरित्रों को उद्घाटित करने के कारण ही उपन्यास विधा अत्यंत लोकप्रिय है। इसलिए 20 वीं शती के उपन्यास के ज़रिए आज के मानवीय जीवन के बदलते आयाम का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना मेरा उद्देश्य है। सबसे पहले पढ़ित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

4.2. उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

शोध अध्ययन की दृष्टि से जिन-जिन उपन्यासों का अध्ययन किया है उनमें से उत्तर-आधुनिक विशेशताएँ स्पष्ट रूप से दिखनेवाले उपन्यासों को ही चयन करके प्रस्तुत किया गया है। उनमें से कुछ रचनाओं में पोस्ट-मॉडेण कल्चर का प्रभाव बहुत अधिक देखने को मिला है। हिंदी उपन्यास में उत्तर-आधुनिक संकल्प 20 वीं शताब्दी के बाद ही कदम रखा है। इन उपन्यासों में बदलती मानवीय परिवेशों का व्यक्त चित्रण मिलता है। साथ ही साथ Multiple Rationality (बहुल तर्क शक्ति) एवं Multiple

interpretation (एकाधिक तर्क संगतता/बहुल व्याख्या) भी देख सकते हैं। यह प्रवृत्तियाँ हर महानता को सामान्य बनाती है। इसपर Universal Rules देखने को नहीं मिलेगा ताकि मानवीय जीवन में आयी हर पहलुओं का बदलाव देख सकते हैं। वर्तमानकालीन मानवीय जीवन के हर पहलुओं में गंभीर परिवर्तन और बदलाव देख सकते हैं। लेकिन उसके पीछे रहनेवाले अदृश्य नवीन विश्व नियम (Universal) देखने को नहीं मिलेगा। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसे शैक्षिक स्तर पर, राजनीतिक स्तर पर, चिकित्सा के स्तर पर, प्यार एवं आपसी संबन्ध एवं संपर्क पर, व्यक्ति सत्ता पर, शादी संप्रदाय पर आमूलचूल बदलाव अदृश्य रूप में लाया गया है।

यह व्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में तर्क करती है। व्यक्ति को सामाजिक तंत्र का मात्र एक पुर्जा न मानकर उसे एक अस्मितापूर्ण अस्तित्व प्रदान करता है। यहाँ ज्ञान के जगह उपभोग की प्रधानता दिया जाता है। इतनी सारी बातों का अध्ययन, विश्लेषण हिंदी एवं भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों के

तुलनात्मक अध्ययन के ज़रिए करने की कोशिश की गयी है। प्रस्तुत अध्ययन केलिए 18 उपन्यासों का चयन किया है। वे निम्नलिखित हैं –

1. ईंधन - स्वयं प्रकाश।
2. दौड़ - ममता कालिया।
3. विज़न - मैत्रेयी पुष्पा।
4. पासवर्ड - कमल कुमार।
5. पहर-दो-पहर - असगर वजाहत।
6. कुल ज़मा बीस - रजनी गुप्ता।
7. 17 रानड़े रोड़ - रवीन्द्र कालिया।
8. अपवाद - श्याम सखा श्याम।
9. नदी - उषा प्रियंवदा।
10. हाऊस ऑफ़ कार्डस् - सुधा मूर्ती।
11. द फाल्डड एर्थ - अनुराधा रॉय।

12. एनशियन्ट प्रोमिसेस – जयश्री मिश्र।

13. रेवल्यूशन 20-20 – चेतन भगत।

14. हाफ गर्ल फ्रेंड - चेतन भगत।

15. युवर ड्रीम्स आर माईन नाऊ - रवींदर सिंह।

16. कैन लाव हापन ट्वाईस - रवींदर सिंह।

17. नाऊ दाट यु आर रिच - दुर्जोय दत्ता, मानवी अहूजा।

18. द मदर आई नेवर क्नोस - सुधा मूर्ती।

4.3. उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन-विभिन्न परिदृश्य में

हम सबको पहले से ही पता है कि जीवन का इतना विस्तृत चित्रण सिर्फ उपन्यासों के ज़रिए संभव है, उतना अन्य किसी भी विधा द्वारा शायद ही संभव है। उत्तर-आधुनिक उपन्यासों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट रूप से महसूस होता है कि मानव जीवन के विविध रंग-रूप बदलाव एवं चरित्रों को हू-ब-हू समय

सापेक्ष-उद्‌घाटित करने के कारण ही यह विधा अत्यंत लोकप्रिय बनी है। लेकिन कठिन बात तो यह है कि मानव जीवन की हर पहलुओं पर विचार करें तो कहाँ से शुरू करूँ। क्योंकि मानव जीवन पर इतना सारा प्रसंग है इनमें से किसी एक का चयन करके ही अध्ययन को आगे ले जा सकते हैं। बात तो इतनी उलझी हुई एवं संवेदनशील है कि ऐसे वैसे कुछ करना-कहना विषय के प्रति ना इन्साफी एवं अनुचित कार्य हो जाएगा। फिर भी ये मेरी विनम्र है। सबसे पहले तो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्तर के मानव जीवन का तुलनात्मक तरीके से अध्ययन।

4.3.1. सामाजिक स्तर पर मानव-जीवन

व्यक्ति एक परिवार की महत्वपूर्ण इकाई है। व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों से समाज बनता है। तो परिवार भी एक समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। मानवीय जीवन की शुरूआत व्यक्ति से परिवार की ओर, परिवार से समाज की ओर, समाज से देश की ओर, देश से वैश्वीक स्तर तक की ओर जाती हैं। इसका मतलब

यह है कि व्यक्ति नहीं तो वैश्विक भावना (संकल्प) की गुँजाइश नहीं हैं। हर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। अपने समाज से पृथक होकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। लेकिन उत्तर-आधुनिकता एवं उत्तर-औद्योगिक मोड़ में बदलती परिस्थिति एवं परिदृश्यों के कारण सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन आ गया है। इस अध्याय में व्यक्ति से लेकर अध्ययन शुरू किया है।

4.3.1.1. उत्तर-आधुनिक मानव

आज के मानव किसी भी प्रकार अपने संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य को ओर ऊपर उड़ाने की कोशिश कर रहे हैं ताकि उन्हें सब प्रकार की अहमियत मिल जाए। समाज में खुद का एक हासियत बना सकें। हर कोई उनके बारे में खूब प्रशंसा करें। क्योंकि अब तक उन्हें खुद के एवं समाज के सामान्य औरत, आदमी तथा सामाजिक सिद्धान्तों के अनुसार जीना पड़ रहा था। वर्तमान स्थिति अलग है। मानव खुद केलिए जीना शुरू कर दिया है। व्यक्ति सत्ता पर विश्वास करना शुरू कर दिया है।

पाश्चात्य सभ्यता ने भी एक प्रकार मनुष्य की परंपरागत जीवन शैली को परिवर्तित किया गया है। क्योंकि यह नवीन शैली उनके अंदर एक नई सभ्यता विकसित करती है। पाश्चात्य देशों में अधिकांश लोगों को आपस में कोई भावुक लगाव नहीं है। अपने बच्चों के प्रति भी कोई लगाव नहीं है। आज उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में भूमण्डलीकृत समाज में हर मानव का अपना एक अलग मूल्य है। तो अपना मूल्य बढ़ाना ही इन लोगों का एक मकसद है। वर्तमान उपन्यासों में व्यक्तिनिष्ठ मानवीय मूल्यों का चित्रण हम देख सकते हैं।

'नदी' उपन्यास के गंगा के पति सिन्हा जो अपनी मर्जी से जीनेवाले उत्तर-आधुनिक मानव का प्रतीक है। अमेरिका में सपरिवार जी रहे थे। ल्यूकीमिया से त्रस्त छोटे बच्चे भविष्य की मृत्यु से विचलित पत्नी को अनजाने देश में अकेली छोड़कर वह भारत लौट आता है। अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं। उनके मन में पत्नी गंगा के प्रति सिर्फ घृणा एवं नफ़रत है। उसी प्रकार 'दौड़' उपन्यास के पवन, सघन जो शिक्षा प्राप्त करने तक माँ-बाप

के लाड़ले, शिक्षा प्राप्त होने के बाद खुद केलिए जीते नज़र आते हैं। उनके मन में न कोई नैतिकता है, न कोई पारिवारिक सोच, सिर्फ आजीविका की अंधी दौड़ ही है वो भी बहुत कुछ पाने केलिए। आज लोग एक ऐसी ज़िन्दगी जी रही है जहाँ अपने पास-पड़ोसियों का क्या खुद के माँ-बाप की बातों पर भी वाकिफ़ नहीं है। खुद के कामों में व्यस्त रहने के कारण, समाज में उच्च स्तर प्राप्त करने की लालच में एक-दूसरे की तबीयत, हालचाल पूछने की कोई प्रथा रीति आज देखने को नहीं मिलेंगी। 'ईधन' उपन्यास की नायिका स्निग्धा से पापा की तबीयत एवं दवाओं के बारे डाक्टर पूछ-ताछ करने पर उनका जवाब इस प्रकार था-"मेरे ख्याल से तो नहीं पड़ा, कभी . . . दरअसल, आय आम नोट श्योर . . . यह बताते-बताते मैं थोड़ा उलझन में पड़ गयी। बेटी को बाप की बीमारी के बारे में कुछ नहीं पता। इच्छा हुई तुषार से कहूँ कि दरअसल मैं शुरू से ही बोर्डिंग हाउस में रहा, इसलिए जानती नहीं कि . . . बल्कि मैंने तो पापा का नंगा बदन भी आज पहली बार ही देखा है।"[5] यही आज की व्यक्तिगत सच्चाई

है। उसी प्रकार अन्य पात्र हैं "कुल ज़मा बीस" उपन्यास की रोज़ी, जो खुद की भलाई केलिए अनिल से ज़बरदस्ती शादी, मनचाहे ज़िन्दगी, अपनों से विमुख होकर ओनलाइन संबन्धों की ओर मुड़ते उनके बेटा आंशु, इन हर पात्रों में व्यक्ति केन्द्रित नव मानव का उदाहरण है। "पहर-दोपहर" उपन्यास में असगर के दोस्त जालिब तो मुम्बई फिल्मी जगत के प्रसिद्ध लेखक है। लेकिन वह कभी अपने परिवार के बारे में सोचते नज़र नहीं आता है, बल्कि अपनी खुशी ऐप्याशी जीवन, शराब, दोस्ती, स्त्रीयाँ आदि से उनको आनंद मिलता है और परिवार के बारे में बेफिक्र रहता है।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों का भी मानव अलग नहीं मालूम पड़ते हैं। हर उपन्यास में ऐसे कोई न कोई पात्र मिलते हैं जो व्यक्ति को याने कि खुद को महत्व देकर जीता है। जैसे सुधा मूर्तिकृत "हाऊस ऑफ कार्ड्स" के संजय की माँ रत्नम्मा हमेशा मतलब केलिए अपनों को भी इस्तेमाल करती हैं। उपन्यास के आदि से अंत तक वह अकेली बनकर ही जीवन बिता रही है।

कमाना, बटोरना यही उनका एकमात्र लक्ष्य रहा था। तो जहाँ से भी पैसा आएँ वही पैसे किराए पर लोगों को देते हैं और इसपर अधिक फायदा (ब्याज) उठाती है। खुद ऐप्याशी नहीं करती। बेटी को करते देख हमेशा डॉटती भी ज़रूर। लेकिन बेटी हो या बेटा दोनों के पास जाते भी तो नहीं तथा उनकी कोई मदद करते भी नहीं। पोथे को भी कुछ खरीदकर नहीं देती है। वह मृदुला को सिर्फ यही उपदेश दी थी कि- -*"We don't know when we have to face difficult times. Life's good when we have money. People will be friends with us. But when we don't have money, nobody will help us. So try to save some money from your salary. I can't tell Sanjay this but I can share this with you."*[6] इस तरह अपनी लड़ाई के अंत में सत्ता को भी हासिल कर लेती है।

"युवर ड्रींस आर माइन नाऊ" उपन्यास के प्रोफेसर महाजन, ताकत एवं सत्ता के बल पर मनचाहे हरकत करनेवाले मानव का उदाहरण है। दिल्ली विश्वविद्यालय में उन्हें कुछ भी करने का हक है। चाहे किसी से ज़बरदस्ती करना है, या खून करना है, किसी का काम तुड़वाना है या किसी को अनैतिक तरीके से भर्ती

करवाना है कुछ भी। क्योंकि आज के व्यक्ति-सत्तात्मक समाज की विशेषता भी यही है कि जिसके हाथ में ताकत है, पैसा है, सत्ता है कानून भी उन्हीं के साथ होगा।।

"कैन लव हेप्पन ट्वाईस" उपन्यास की नायिका "सिमार" भी बचपन से ही आत्मनिर्भर थी एवं अमीर परिवार की लड़की थी। लेकिन वह हमेशा अपने आप सब कुछ निर्णय करती है। उत्तर-आधुनिक स्वतंत्र नारी के रूप में उनका व्यक्तित्व हमारे सामने लेखक प्रस्तुत करता है। "द मदर आई नेवर क्न्यू" के वेंकटेश भाग के पात्र शान्ता-रवि आत्मकेन्द्रित है। जैसे उत्तर-आधुनिक परिदृश्य बहु-केन्द्रित से व्यक्ति केन्द्रित बनते जा रहे हैं उसी प्रकार शांता सिर्फ पैसे एवं शेयर के पीछे भागती हैं और अपने बैटे को भी ऐसे ही पालन-पोषण करती है। दोनों में मानवीय, नैतिक मूल्यों की कमी इस उपभोक्तावादी संस्कृति की देन माना जाना चाहिए।

"द फाल्डेड एर्थ" तो "माया" नामक औरत का अकेला पलायन ही है, जो अन्य धर्मी युवा से शादी करने के कारण

परिवार से परित्यक्त होते हैं। लेकिन शादी के पाँच साल पर ही विधवा बन जाती है। समाज में अब वह अकेले बन जाती है। सब कुछ अकेले ही झेलनी पड़ती है। लेकिन आत्म सम्मान खोकर घर वापस जाना उनको अच्छी नहीं लगती वह अपने पति की यादों वाले शहर से किसी अोर छोटी सी गाँव रानीखत (Ranikhat) की ओर पलायन करके अकेले ही आगे का जीवन बिताती है। अकेली पड़ी औरत को सामाजिक बन जाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि समाज तो ऐसा है कि औरत को गलत स्थापित करना उनकेलिए आसान काम है। तो ऐसी औरत आत्म केन्द्रित बनने में मज़बूर हो जाती है। इस प्रकार अधिकांश उपन्यास व्यक्ति को अधिक प्रधानता देते हैं न कि समाज को। चाहे हिंदी हो या अंग्रेज़ी। दोनों भाषाओं में व्यक्ति तो अहम भूमिका निभाते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य सभ्यता का आगमन से ही व्यक्ति-केंद्रित रचनाओं का महत्व और बढ़ जाता है।

"साहित्य" और आधुनिक युग बोध पुस्तक में देवेन्द्र इस्सर ने कहा है- "इस अर्थव्यवस्था में स्वार्थ, भौतिक सुख, धन और पद

प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण है। निजी रिश्तों और परिवार के विघटन में हर आदमी को अपने भाग्य का निर्णय करने केलिए बेसहारा और तन्हा छोड़ दिया है। वैयक्तिक रिश्तों एवं संयुक्त जीवन के विघटन के कारण मनुष्य एक ऐसी स्थिति से गुज़र रहा है, जिसे कई नाम दिए गए है- एकाकीपन, अजनबीपन, अवैयक्तिक, अलगाव और एलिएनेशन।"[7] आज की अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ पर है। आज पाश्चात्य सभ्यता ने व्यक्तिवादिता को इतना अधिक प्रभावित किया है कि हर मनुष्य व्यक्तिगत स्वार्थता में मग्न है। उन्हें अपने चारों ओर की चिंता कतई नहीं है। गाँव से अधिक महानगरों में व्यक्ति को ओर आत्मकेन्द्रित बनकर देखने को मिलता है। महानगरीय जीवन शैली ने मानवीय संवेदनाओं को संवेदनहीन बनाते हुए सिर्फ "आत्मा" से रति करने को मज़बूर कर रहा है।

4.3.1.2. मानव जीवन में परिवार

पहले ही इशारा किया है कि परिवार समाज केलिए एक अहम इकाई है। हर परिवार समाज में अपनी-अपनी भूमिका

निभाती है। इस समस्त सृष्टि को एक ईश्वरीय परिवार कहा जा सकता है- "वसुदैव कुटुम्बकम"। लेकिन असली परिवार तो समाज की प्रमुख तथा प्रारंभिक संस्था है। परिवार में ही मानव का जीवन आरंभ होता है। उनके माँ-बाप तथा भाई-बहनों के साथ। भारतीय पारिवारिक व्यवस्था तो ज़रूर अन्य पाश्चात्य पारिवारिक व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है। भारतीय परिवार व्यवस्था में संयुक्त परिवार को अधिक मायना रहता है। श्री. आई.पी. देसाई जी भारतीय परिवार व्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि- "हम ऐसे घराने को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें पीढ़ी की गहराई परिवार की अपेक्षा अधिक लंबी होती है। तथा जिसके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति, आय एवं पारस्परिक अधिकारों एवं दायित्वों के आधार पर सम्बन्धित होती है।"[8] एक स्थाई एवं सार्वभौमिक संकल्पना होने पर भी परिवार के स्वरूप में आज बदलाव आया है। पश्चिमी देशों में तो अणु परिवार में माँ-बाप बच्चे के बगैर ओर कोई नहीं होगा। वर्तमान भारतीय

समाज में भी आज यही बदलाव देखने को मिलेंगे कि संयुक्त परिवार कम बल्कि हर कहीं विद्यमान अणुपरिवार।

उत्तर-आधुनिक परिवार में विचार करने पर मुझे लगता है कि जहाँ प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, भावुक सम्बन्ध एवं आदर होना चाहिए था वहाँ आज सिर्फ व्यस्तता, स्वार्थता, हतोत्साहित भावना, निरभावुकता, अपनापन की कमी, पैसो की ओर लालच आदि ही देख पाते हैं। हाँ, यही सच्चायी है, समय के साथ पारिवारिक संकल्पना भी विघटित हो रही है। पाश्चात्य सभ्यता के उपभोक्तृ दुनिया की झलक परिवारों पर भी पड़ रही है। पारिवारिक सम्बन्धों में जो प्रेम की भावना स्थायी थी उसकी जगह पर आज सिर्फ उपयोगितावादी दृष्टि ही नज़र आती हैं। पारिवारिक विघटन का प्रधान कारण तो ये हैं कि-महानगरीय परिवार, शादी-प्रथा के बदलते आयाम, ज़िन्दगी का तकनीकीकरण, मशीनीकरण, व्यर्थ अंधविश्वासों का पालन, आर्थिक समस्याएँ आदि।

उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में गाँव सिर्फ नगर नहीं बल्कि महानगरों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। महानगरीय व्यस्त जीवन

में घर, घर न होकर रात में ठहरने का साधन मात्र एक मकान रह गया है। "हाल्फ गर्लफ्रेंड़" उपन्यास के नायक माधव अपने प्यार रिया सोमानी के साथ की रिश्ता टूटने के वास्ते न्युयोर्क चला जाता है। वहाँ उनके दोस्त शैलेश एवं पत्नी ज्योति के फ्लेट में वह ठहरता है। तीन महीने के इंटर्नशिप के वास्ते ही वह वहाँ जाता है। तब उन्होंने शैलेश से रहने केलिए किसी जगह की बन्दोबस्त करने को कहा तो उनका जवाब इस प्रकार था- *"Stay as long as you want. Work keeps us so busy. At least someone can use the place."*[9] यही तो आज की सच्चाई है। सिर्फ न्यूयोर्क जैसे विदेशों में नहीं बल्कि भारत के महानगरों में भी लोग घर को सिर्फ रात के आराम केलिए इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में वहाँ के लोगों के बीच अपनापन, भावात्मक सम्बन्ध आदि कैसे बन जाता है। उसी प्रकार "अपवाद" उपन्यास द्वार "श्याम सखा श्याम" जी महानगरीय जीवन शैली से टूटते एक अणुपरिवार का जिक्र किया गया है। "यति" उपन्यास का प्रधान पात्र, जिनकी माँ-बाप पुनाई में रहते हैं। जब उनको तेज़ बुखार आया था तब उनके माता-पिता को यति की देखबाल करना अवश्य नहीं महसूस हुआ बल्कि

अपने विवाह की रजत जयंती समारोह की तैय्यारियों को अधिक महत्व दिया था। जब सातवाँ दिन सभी कार्यक्रमों के बाद माँ ं आयी तो यदि और माँ के बीच का वार्तालाप इस प्रकार थी-“हेलो यति, माई डार्लिंग हाऊ आर यू?” तो यति जबरदस्ती अपने चेहरे पर एक मरी-सी मुस्कान लाकर बोली थी, “ठीक हूँ। थैंक्स फॉर कमिंग।”[10] फिर तो उसकी माँ ने समारोह के बारे में इतना विस्तृत वर्णन किया कि वह लगभग यह भूल चुकी होगी कि बीमार पड़ी बेटी को देखने आयी है। इतना ही है आज के रिश्ते-नाते, परिवार। खुद की बेटी को ध्यान रखने केलिए माँ के पास समय नहीं है बल्कि पार्टी-वार्टी केलिए, समाज में स्टाटस को बनाए रखने केलिए ही उन्हें वक्त है।

"17 रानड़े रोड़" मुम्बई महानगरीय परिवेश में लिखा गया उपन्यास है। इसमें भी ज़िन्दगी का तनाव, व्यस्तता के कारण बिगड़ते परिवारों का चित्रण हमें देखने को मिलता है। मर्चंट नेवी कैप्टन चन्नी एवं पत्नी रेखा के परिवार का विघटन, इसका ज्वलंत उदाहरण है। पति के अभाव में रेखा अन्य पुरुषों से अवैध

सम्बन्ध रखती है और जब पति चन्नी वापस आया तो पता चला कि रेखा दो महीने गर्भवती है। फिर भी रेखा, पति को हबालत करने की चेतावनी देकर पति-पत्नी रिश्ते को बनाए रखने केलिए चन्नी को मज़बूर कर दिया है। इस प्रकार महानगरीय जीवन में परिवार का विघटन तो आज किसी न किसी प्रकार होते ही रहते हैं।

"पहर दोपहर" में असगर वजाहत भी मुम्बई जगत की वास्तविकताओं के साथ-साथ पारिवारिक विघटन का जिक्र किया है। मुम्बई तो रंडियों केलिए प्रसिद्ध महानगर है। अधिकांश शादी शुदा मर्द खाली समय में मन बहलाने केलिए पसंदीदा रंडियों के साथ बिताते हैं। अपनी शादी को धोखा देते रहते हैं। उपन्यास के प्रधान पात्र जालिब भी पत्नी काम पर जाते वक्त रंड़ियों को घर में बुलाकर बच्चों के सामने जो चाहे करते हैं। पारिवारिक मूल्यों का विघटन तो यहाँ स्वाभाविक बात है। क्योंकि किसको अपने बच्चों को पारिवारिक शिष्टाचार के बारे में सिखाना है वे ही उनके सामने इसप्रकार के अनैतिक सम्बन्ध ज़ारी रखने पर परिवार को

कैसे स्थायी और सभ्य बना सकता है। नीना (जालिब की पत्नी) सब कुछ देखकर बच्चों को लेकर जालिब के घर से चली जाती हैं।

"हाऊस ऑफ कार्ड्स" उपन्यास के ज़रिए सुधामूर्ति जी भी पारिवारिक सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं का ज़िक्र किया है। मृदुला, संजय से शादी के बाद बैंगलूर आ गए तो महानगरीय ज़िन्दगी एक ग्रामीण नाबालिक लड़की केलिए कितनी कठिन महसूस हो सकती है, परिवार के बिना वह अकेली बनकर किसप्रकार तड़पती है इन सबका चित्रण खींचा है। लेकिन जब-तक वे मध्यवर्गीय आर्थिक परिवेश में थे पति-पत्नी के बीच एक उचित आचार-विचार, आदर, आत्म-सम्मान हुआ करता है लेकिन जब सिक्का बदल जाता है, पैसों की लालच शुरू हो जाता है। तब से पारिवारिक एकता, लगाव सब कुछ घटते नज़र आते हैं। पहले तो दोनों सब कुछ एक दूसरे से बॉटते थे, लेकिन अब तो संजय इतना व्यस्त हुआ कि मृदुला से बातों को बॉटना उचित नहीं

समझा। तो एक प्रकार की अलगाव उनकी ज़िन्दगी में पैसों की वजह से आ गया है।

"कैन लव हेपन ट्वाईस" में भी रविन सिमार के परिवार एवं खुद सिमार के माध्यम से स्वार्थी पड़ी अणु परिवार के लोगों का जिक्र किया गया है। रविन और सिमार एक दूसरे को खूब चाहते हैं। बेल्जियम में दोनों साथ-साथ बहुत सारे समय बिताते थे। लेकिन शादी की बात आने पर सिमार अंतर्मुखी एवं बहुत सारी शर्तें बताना शुरू कर दी कि शादी के बाद बल्जियम जाकर वहाँ रहेंगे। पापा के बिसिनस को हम दोनों साथ-साथ बढ़ाएँगे आदि। रविन की माँ-बाप को वह कभी भी बातों पर भी अपने साथ नहीं चाहती थी। उनके साथ रहते तो अवश्यक गोपनीयता नहीं मिलेंगे - यही उनका दृष्टिकोण है। इस बात पर सिमार के पिता का कथन इस प्रकार है कि- *"The hard fact is that she wanted to settle down abroad, because, she wanted to live just with you."*[11] असलियत तो यह है कि महानगरों में अमीर घर की लड़कियाँ तो हमेशा आज़ादी पर बल देती हैं। उन्हें स्वतंत्र रूप से उड़ना ही

पसंद है ताकि खुद पर किसी का पाबन्दी न हो, चाहे खुद के परिवार का हो या ससुराल वालों का, सिमार भी ऐसी ही पली-पढ़ी है। इसलिए सिमार सिर्फ रविन को चाहती हैं न कि उनके परिवार को। *"There will be so many restrictions in joint family. Will we still be able to go to late parties? I won't be comfortable in a joint family. Ravin."*[12] इस प्रकार चलती है नवा युवाओं के मनोभाव। जब तक रविन इन बातों को स्वीकार नहीं किया तब तक दोनों के बीच लड़ाई-झगड़ा एवं दुरियाँ ज़ारी थी।

यहाँ तो इन लोगों को गलत स्थापित करने से फायदा नहीं। क्योंकि गलती तो इनका नहीं बल्कि परिवेश का। सिमार को दिए गए परिवेश के अनुसार ही वह सोचेंगी। आज उत्तर-आधुनिक दौर पर कोई भी यह नहीं चाहती है कि खुद किसी ओर के नियंत्रण में पड़ें। आज़ादी, पाश्चात्य सभ्यता का असर है। पाश्चात्य जगत में हर कोई आज़ाद है।

"नाऊ दाट युआर रिच" में लेखक श्रुति के परिवार के माध्यम से लालची माता-पिता की वजह से टूटते पारिवारिक

जीवन को चित्रित किया गया है। श्रुति की माँ-बाप, उनको किसी तालाकशुदा अमीर व्यक्ति से शादी करवाकर अपने घर के वातावरण को सुधारने की चिंता में थे। पैसों केलिए खुद की बेटी को बेचने जैसे नीच प्रवृत्ति करनेवाले माँ-बाप को छोड़कर वह हैदराबाद के कोरपरेट दुनिया “सिल्वर मैंन फिनेंस” में नौकरी केलिए चली गयी। फिर वापस नहीं आयी। खुद की ज़िन्दगी ढूँढ़ निकाली।

"मदर आई नेवर क्न्यूस" में भी सुधा मूर्ति जी वेंकटेश के परिवार के ज़रिऐ पैसों के पीछे पड़ते महानगरों के पारिवारिक तनाव का चित्रण किया गया है। शांता, रवि पैसों के पीछे पड़ते हैं, इसलिए परिवार की शिष्टाचार एवं नैतिक मूल्यों पर व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। बिना पति से पूछताछ करके हर बात का निर्णय शाँता खुद लेती है। "हाल्फ गर्लफ्रेंड़" की रिया सोमानी को भी दिल्ली के अपने अमीर सोमानी परिवार की प्रदर्शनकारी सभ्यता एवं झूठे रिश्तों से नफ़रत एवं विवश होकर छोड़नी पड़ती है।

उपन्यासों के इन उदाहरणों से यह सामने आ जाता है कि महानगरीय जीवन शैली कभी भी परिवार को, पारिवारिक जीवन को महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं। संयुक्त परिवार संप्रदाय को एवं घर के बुजुर्गों को अपनी स्वतंत्रता केलिए एक बाधा समझकर युवा लोग अणुपरिवार की ओर मुड़ते हैं। लेकिन अणुपरिवार होकर भी अकेलापन, मानसिक द्वंद्व, व्यावसायिक व्यस्तता के कारण रिश्तों में जटिलता आ जाती है। क्योंकि महानगरीय जीवन "अर्थ-प्रधान" भौतिकवादी जीवन दर्शन पर आधारित होती है। वहाँ नैतिकता, पारिवारिक शिष्टता, सामाजिक आदर्शों केलिए कोई स्थान नहीं है। समकालीन उपन्यास महानगरीय परिप्रेक्ष्य में विघटित परिवार एवं मानव जीवन को प्रतिबिंबित करने में पूर्णतः सफल पाया। क्योंकि उत्तर-आधुनिकता परिवार को अ-परिवार के नाम से बदलते नज़र आते हैं। मानव जीवन में परिवार की ज़रूरत कम पड़ते जा रहे हैं। उत्तर-आधुनिकता पाश्चात्य सभ्यता की देन है। पाश्चात्य में परिवार रूपी बंधन को कोई स्वीकार नहीं करते हैं। आज महानगरीय परिप्रेक्ष्य में ऐसी ही सभ्यता हर कहीं

विद्‌यमान है। चाहे हिंदी उपन्यास में हो या भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास में। वर्तमान परिदृश्य में मानवीय जीवन में समानताएँ ही तलाश कर सकती है। दोनों एक छत के नीचे की संस्कृति है।

4.3.1.3. मानव जीवन में शादी-प्रथा के बदलते आयाम

शादी प्रथा की परंपरागत रीति तो परिवारों को भी जोड़कर चलती थी। लेकिन आज बात अलग है, मानव भी एक विभिन्न मोड़ पर खड़े हुए हैं। मानवजीवन में व्याप्त व्यावसायिकता एवं भौतिकता वैवाहिक सम्बन्धों एवं मान्यताओं को भी आज परिवर्तित किया गया है। कल तो विवाह एक प्रकार का पवित्र सामाजिक, धार्मिक दायित्व था। लेकिन आज व्यक्ति केन्द्रित बन गया है। क्योंकि बदलते व्यस्त जीवन परिवेश में शादी प्रथा को बनाए रखने केलिए युवा लोगों के पास फुरसत नहीं है। शादी को एक डील बनाकर, कोर्ट शादी सम्प्रदाय को अपनाकर कुछ समय से ही सब कुछ समाप्त कर लेते हैं। क्योंकि अधिकांश युवागण आज प्रेमविवाह-जो अपनी फायदा केलिए-ही करते हैं। ताकि व्यावस्यिक तरीके से आगे बढ़ सके, या आजीविका मज़बूत हो

सके, व्यवसाय में पार्टनरशिप चलते रहे। मतलब तो आज शादी प्रथा "फायदा" पर आधारित बन जाती हैं। विवाह संस्था के प्रति उपेक्षित मनोभाव भी कहीं आज के उपन्यासों के ज़रिए देख सकते हैं। यह पूर्णतः पाश्चात्य सभ्यता की देन है। जैसे "लिविंग टुगेतर" रिलेशन शिप। पाश्चात्य देशों में शादी-प्रथा कम महत्वपूर्ण लगती है। वे चाहे अपने मन की इच्छानुसार जीते हैं, कोई कटु बंधन पर तैयार नहीं है, विश्वास भी नहीं। इन्हीं दृष्टिकोण आज भारतीय परिदृश्य में भी हमें देखने को मिलेगा।

परंपरागत रूढ़ीग्रस्त शादी के प्रति मानवीय दृष्टिकोण "विज़न" उपन्यास में नेहा की शादी को लेकर मैत्रेयी पुष्पा व्यक्त करती है। आज भी आम मध्यवर्ती परिवार के किसी लड़की को बड़े घर से कोई शादी आई तो माँ-बाप बिना कुछ सोचे-समझे शादि तय कर लेते हैं। क्योंकि अपनी बेटी के भविष्य सुरक्षित हो जाए। उनके अनुसार अमीर घरों में घुसना-बसना सबसे बड़ा सौभाग्य है। पर यह कभी नहीं सोचेगा कि वह वहाँ रानी बनकर जिएगी या नौकरानी बनकर। नेहा का भी एक आम परिवार है।

शरण आई सेंटर के वारिस "अजय" की शादी आने पर माँ-बाप इतना खुश हुआ कि उनके अनुसार अमीरों की साधन सम्पन्नता को ही वे प्रतिमान और योग्यता मान बैठे हैं। इसपर नेहा का कथन देखिए-“"जीवन में अमूल्य सम्पदा पा गए" वे तो इसी लेखे-जोखे में लगे होंगे, क्योंकि सदा अमीरों का लोहा ही मानते आए हैं, कभी बराबरी नहीं कर सके। उनकेलिए डॉ. आर.पी. शरण के यहाँ से आया रिश्ता साक्षात् ईश्वर का आशीर्वाद है।”[13] नेहा, आभा जैसे आज के शिक्षित नारी मानती थी कि स्त्री केलिए आज शादी के अतिरिक्त समाज में ऐसे बहुत सारे काम है जैसे मर्द लोग करते हैं। लेकिन शादि करके जाती डॉ. नेहा तो शरण आई सेंटर के रिसप्शनिस्ट बनकर काम करती थी। क्योंकि उस अमीरी परिवार में स्त्री की क्षमताओं को कम महत्व देने की प्रवणता ही उपन्यास में दिखाई देती है। ऐसे परिदृश्य में स्वतंत्रता की चाह एवं खुद के अस्तित्व की तलाश में दौड़ पड़ी औरतों की उम्मीदों एवं महत्वाकांक्षाओं में परिवर्तन आया है। शादी पर उनके सोच कम महत्वपूर्ण हुआ है। इसलिए आज नारी अपने घर पर

हावी होनेवाले सम्बन्ध को नहीं चाहती थी। जिस प्रकार "विज़न" में नेहा को माँ-बाप के कही हुई शादी करके ज़िन्दगी के प्रवाह को रोकनी पड़ी, उसके विपरीत "नाऊ दाट यु आर रिच" उपन्यास के "श्रुति" माँ-बाप के कहने के विपरीत जाकर खुद के जीवन साथी ढूँढ़ निकाली है और अपनी इच्छानुसार उनसे शादी करके ज़िन्दगी में आगे बढ़ी है। आज की युवा पीढ़ी माँ-बाप के कहने पर और परंपरागत पारिवारिक तनाव को सहन करते हुए अपनी ज़िन्दगी को कुरबान करनेवालों में नहीं हैं।

"दौड़" उपन्यास द्वारा ममता कालियाजी शादी प्रणाली को एक प्रकार की डील प्रणाली के रूप में उजागर की है। उपन्यास का नायक पवन एवं उनका पार्टनर स्टेला, शादी इसलिए करती है कि दोनों को अपना कैरियर ओर सशक्त बना सकें। दोनों की शादी भावात्मक तरीके से नहीं बल्कि एक डील जैसे ही लेखिका उपन्यास में जिक्र किया है। शादी में न परिवार की आवश्यकता उचित समझते हैं न बुजुर्गों का आशीर्वाद। ये सारी बातें तो उनकेलिए पुरानी बन चुकी है। अपने पापा- मम्मा को पवन, शादी

का समाचार फोन पर बताता है। लेकिन एक मनुष्य दैव रूपी स्वामीजी को वह सबकुछ मानकर उनके आशीर्वाद से शादी करती है। शादी के बाद पवन और स्टेल्ला एक साथ नहीं रहते हैं। दोनों अलग-अलग देशों में अपने कैरियर को लेकर चलते हैं। वहाँ परिवार है कहाँ? दो स्वतंत्र व्यक्ति सिर्फ शादी को एक ड़ील के रूप में अपनाकार फोन एवं ऑनलाईन द्वारा दाम्पत्य जीवन आगे बढ़ते हैं। उपभोक्तावादी उत्तर-औद्योगिक जगत के मानव जीवन की सच्चाई यही है। जो खुद केलिए जीते हैं, जागते है, सोते हैं सब कुछ करते हैं। मानव आज पूर्णतः मशीन की तरह चेतनाहीन, विकार विहीन और भावना शून्य बन गया है।

"विज़न" उपन्यास में भी शादी को कम महत्व देनेवाले वर्तमान परिदृश्य को लेखिका प्रस्तुत किया गया है। "नेहा" के वरिष्ठ डॉक्टर आभा शादी के बाद की औरतों की दमन पर इसप्रकार विचार प्रस्तुत कर रहा है कि- “तुम जानती हो नेहा, जो लड़का अभी तुन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, कल उसी झटके से अलग कर देंगा, क्योंकि उसके अट्रॉक्शन को, खिंचाव को

उसका कुटुम्बं सह नहीं पाएगा। और उस परिवार का बेटा अपने भूले हुए कर्तव्य याद कर-करके घरवालों को सुखी बनाना अपना एकमात्र लक्ष्य बना लेगा। शादि के बाद लड़की माँ-बाप से अलग हो जाती है, मगर लड़का उसी अनुपात से पास आता जाता है। कैसा अचम्भा है। मगर यह अचम्भा बर्दाश्त करने लायक नहीं, मुश्किल तो यहीं आती है।"[14] शादी प्रणाली के बदलाव की आवश्यकता पर आज हर कोई सोचने लगता है। डॉ. आभा परंपरागत शादी प्रथा से विद्रोह प्रकट करती है। जब पुरुषों को कुछ नष्ट नहीं होते हैं तो स्त्री को खुद के परिवार खो देने की क्या ज़रूरत है? यही चिंता स्त्री की बदलाव की आवाज़ है। एक प्रकार से उत्तर-आधुनिक शादी सम्प्रदाय गैर भावुक होते हुए भी स्त्री और पुरुष दोनों केलिए एक जैसा ही है। आज मानव जीवन बिना किसी लक्ष्य के, खुद को और अपने महत्वाकाँक्षाओं को लेकर आगे की ओर दौड रहै हैं।

"ईंधन" उपन्यास में शादी प्रथा से जुडा एक अनकही तनाव आदि से अंत तक देखने को मिलेंगे। स्निग्धा-रोहित की शादी ही,

शादी की परम्परागत रूढ़ियों को तोड़-फाड़कर हुई थी। अपने इच्छानुसार किए गए विवाह होने के कारण स्निग्धा को शादी शुदा ज़िंदगी की हर समस्याओं को लेकर अपनी सीमा में रहना पड़ता है। अमीर घर की, लेकिन अणु से अणु परिवार की लड़की होने के कारण उनको साधारण परिवेश से पले पढ़े रोहित के साथ जीने में बहुत सारी मुशिकलें झेलनी पड़ती है। पर वह एक भारतीय नारी होने के कारण सारा-का-सारा कर्तव्य हू-ब-हू कर लेती है। रोहित के पैसे के पीछे की दौड़ उनकी ज़िन्दगी में तनाव एवं विघटन पैदा करती है।

"कुल ज़मा बीस" उपन्यास उपभोक्तावादी दुनिया के चंगुल में पड़नेवाले लोगों के जीवन का सशक्त मिसाल है। इसमें शादी प्रथा को भी बिना चाहे ज़बरदस्ती किए गए एक बंधन के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। "रोज़ी" नामी ऐय्याशी लड़की ऐसे अमीर घर की लड़कियों केलिए एक सशक्त उदाहरण है जहाँ पैसे के बल पर मनचाही ज़िन्दगी जीकर युवाओं को आकर्षित कराकर शादी के वक्त में किसी आम घर के लड़के को चंगुल में फंसाकर

ज़बरदस्ती शादी करवाती हैं और उनके साथ अनचाहे जीवन जी लेती हैं। रोज़ी भी एक ऐसी औरत है, डॉ. अनिल को अपने जाल में फंसाकर भाइयों से डराकर शादी करने को मज़बूर कर देती है। डॉ. अनिल के आगे की ज़िन्दगी और बीच में एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु सब कुछ रहस्योद्घाटन करने की बात है। क्योंकि अगर अमीर घर की लड़कियों को एक व्यक्ति पर ज़ारी संबंध ऊब जाए, तब वह दूसरों की तालाश में जाती हैं चाहे इसपर अपनों की खून करना पड़ें तो भी उनको कोई हिचक या परेशानी नहीं। बदलते पश्चिमीकरण की निशानी है ऐसी विवाह प्रथा। शादी-शुदा ज़िन्दगी की वास्तविकता पर 'कुल ज़मा बीस' उपन्यास के पात्र अनिल का दोस्त जयेन्द्र का कथन इस प्रकार है- "एक राज की बात बताऊँ, आज के ज़माने में शादी शुदा औरतें शादी के बाद भी केवल अपने पति की बनकर नहीं रहती। बड़ी कमीनी होती है औरत जात।"[15] मौजमस्ती एवं लापरवाही ज़िन्दगी जीने के कारण जिन लड़कियों को समाज से अच्छी रिश्ता मिलने की

प्रतीक्षा तक नहीं हैं उन लड़कियों ने ही कुछ भी करके कोई सीधे-सादे युवा को अपने चंगुल में फंसाकर उनके परिवार को बिगडेंगे।

"17 रानेड़े रोड़" बिगडती शादी शुदा ज़िन्दगी का एक अहम उदाहरण है। मुम्बई जैसे महानगरों में शादी जैसी परंपरागत प्रथा को बनाए रखना मुश्किल से मुश्किल काम महसूस लग रहे हैं। इसलिए संपूरन एवं सुप्रिया बिना शादी करके ही पति-पत्नी बनकर एक साथ रहते हैं। जो लोग शादी-शुदा है उन सबकी कहानी में परेशानियाँ, झगड़ा-फसड़ा, तनाव, कुंठा आदि मौजूद हैं। अधिकांश महानगरों में अवैध संबन्धों के कारण दांपत्य जीवन में विधान होता है। जैसे चन्नी की पत्नी रेखा पति के गैरहाज़िरी में अवैध सम्बन्ध चालू रखने पर दोनों पति-पत्नी के बीच में आए अलगाव। असगर वजाहत कृत ‘पहर दोपहर’ मुम्बई ग्लैमरस दुनिया के चकाचौंध में पड़कर होती शादी-शुदा पारिवारिक जीवन के विघटन का ज्वलंत उदाहरण है। जालिब-नीना की दाम्पत्य जीवन में आई अविश्वास एवं कुंठा, मानस के तबीयत की बिगड़ने

एवं अवैध सम्बन्धों पर उनकी पत्नी की अरुचि एवं निसहायता आदि शादी के मायने में आए बदलाव को जिक्र करते हैं।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में भी समान भारतीय परिदृश्य के होने के कारण शादी प्रथा की समस्याएँ एवं बदलाव लगभग एक जैसा ही है। 'एनशियंट प्रामीसस' में जानकी के ज़रिए जयश्री मिश्रा ने परंपरागत तरीके से शादि करके बिगड़ते रिश्ते का जिक्र किया गया है। जानकी तो आधुनिक लड़की होने पर भी माँ-बाप के प्रति अपनी शिष्टता के कारण अपने प्रेमी अर्जुन को भूलकर एक अनजाने व्यक्ति सुरेश से शादी करती है। वहाँ से संयुक्त परिवार में सिर्फ एक नौकरानी की तरह जीवन बितानी पड़ती है। पुत्री रिया का जन्म मानसिक दुर्बलता से हुआ है, यह उन्हें अपने ससुराल में ओर ज्यादा परेशानियों में डूबा दिया। अंत में वह अपने अनचाहे शादी बंधन को तोड़कर अर्जुन के पास वापस दौड़ती है।

'मदर आई नेवर क्नोस' में सुधा मूर्ति उत्तर-आधुनिक व्यावसायीकृत शादी प्रथा का मायना हमारे सामने रखती है। हर

माँ-बाप अपने बच्चों केलिए अच्छे-से-अच्छा रिश्ता चाहते हैं चाहे कल हो या आज, स्थिति तो वहीं है। लेकिन बदलाव तो सोच-विचार में आया है। शादी को व्यवसायीकृत करने की प्रेरणा आज ज़ारी है। प्रस्तुत उपन्यास में शान्ता और पुत्र रवि के ज़रिए व्यावसायीकृत शादी प्रथा को लेखिका ने सामाजिक बना दी है। पहले तो मानव अच्छे-से-अच्छे माने राग द्वेष पर चलते थे आज व्यवसाय, आजीविका, पैसे के बढ़ने के एक डील के रूप में परिवर्तित हुआ है। शांता एक अमीरी लड़की प्रियंका को रवि केलिए पसंद करती है ताकि उनके सामाजिक हैसियत ओर ऊपर बढ़ जाए। लेकिन पति वेंकटेश इसके विपरीत सोचता है कि- -*"It is better to select the daughter-in-law from a straturm lower than the grooms, If the girl is from a farmily richer than ours, then perhaps Ravi's life may also turn out to be like mine."*[16] शांता का सोचा तो बिल्कुल अलग है। उनकेलिए अपने बिसिनस को आगे बढ़ाने का एक साधन मात्र है रवि और पिंकी की शादी। *"You'll never understand that it means to build relationship and run a business."*[17] यही पश्चिमीकृत सच्चाई आज दुनिया के

आमने सामने घूमती फिरती है। इन सच्चाइयों को रूप देना, जीवंत रखना आदि कार्य समकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के ज़रिए सफल ढ़ंग से किया है।

4.3.1.4. मानव जीवन का तकनीकीकरण

तकनीकीकरण, मानवीय जीवन को तकनीकीकृत बना लेती है। कृत्रिम व बनावटी, गैर भावात्मक मशीनों की तरह मनुष्य के आन्तरिक और बाहरिक दोनें भूमिकाओं में बदलाव लाया है। मानव के हर सोच-विचार विज्ञान की प्रगति के अनुसार होते जा रहे हैं। सिर्फ भारत में ही नहीं पूरे वैश्विक मानवता पर तकनीकीकरण के विकास का प्रभाव बढ़ते एवं पड़ते जा रहा है, पूरे विश्व में एक दूसरे के बीच दूरियाँ कम होने लगी हैं। सच कहे तो आज घर बैठकर हम सारे काम निपटा सकते हैं। बात चाहे बैंक से संबन्धित हो, कोई भोजन ओर्ड़र करना हो कुछ भी हो सिर्फ अपनी कुर्सी में आराम से बैठकर ऊँगलियाँ चलाएँ चलाते हैं। मतलब एक स्मार्ट फोन और इंटरनेट है तो बस ओर कुछ कठिन परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं है। सच कहे तो तकनीकीकरण का

बहुत सारे अच्छाइयाँ हैं। विदेश में बैठे अपनों को आँखों के सामने देखकर बातें करके दूरियाँ मिटा सकते हैं। इसी भी बात की जानकारी केलिए इधर-उधर घूमने के बगैर सिर्फ फोन पर खोजें पलभर में सारा विवरण आँखों के सामने आ जाएँगे। कहीं जाने केलिए टिकट बुक करना है तो घंठों तक इंतज़ार नहीं करना पड़ेगा। बिना रास्ते की जानकारी हम जी.पी.एस. लेकर कहीं भी जा सकते हैं। शिक्षा भी आज आनलाईन, स्मार्ट कक्षा के ज़रिए हो गयी है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि मानव जीवन में तकनीकीकरण की एक अभूत पूर्व भूमिका है।

तकनीकीकरण का प्रभाव मानवीय जीवन के साथ-साथ उपन्यास जगत में भी क्रांतिकारी आन्दोलन खड़ा कर रहा है। ऑनलाईन किताबों की उपलब्धता विश्व भर तक साहित्य की लेना-देना फैलाती हैं। भारतीय भाषाओं के साहित्य को विश्व स्तर की प्रतिष्ठा पाने का प्रमुख कारण तकनीकी प्रौद्योगिकी विकास ही है। हिंदी महोत्सव 2018 का उद्घाटन ऑक्सफोर्ड़ में हुआ था।

पूरे विश्व में अंग्रेज़ी के साथ-साथ लोग हिंदी को भी प्रतिष्ठा देना शुरू कर दिए हैं।

मानव जीवन में तकनीकी का सकारात्मक प्रभाव तो चर्चा कर चुके हैं। नकारात्मक पक्ष तो मानवीयता पर आती है। मतलब मनुष्य को मृगों से अलग करनेवाली प्रमुख बात तो उनकी मानवीयता या विवेकशीलता है। लेकिन तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के विकास के कारण मनुष्य, मनुष्य नहीं बल्कि मशीन मात्र बन गया है। उनमें न कोई चेतना, भावुकता, प्यार, समर्पण भावना है, बल्कि स्वार्थता, आत्म केन्द्रित प्रवृत्तियों के साथ वे ऑनलाईन दुनिया में व्यस्त हैं। वर्तमान हिंदी अंग्रेज़ी उपन्यासों में तकनीकीकरण एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते आयाम को विभिन्न तरीके से चित्रित किया है।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास अधिकांशतः तकनीकी शिक्षा क्षेत्र पर आधारित है। जैसे चेतन भगत, दुर्जोय दत्ता, रविंदर सिंह आदि लेखक इस क्षेत्र में प्रमुख हैं। तकनीकी जगत् के मानवीय जीवन को विभिन्न परिप्रेक्ष्य में लाने का काम इन लोगों ने अपने

उपन्यासों के ज़रिए किया है। हिंदी उपन्यासों में तो वैज्ञानिक प्रगति खूब हुई है लेकिन मानवीय जीवन में आए बदलाव पर ओर बल दिया है। अधिकांश उपन्यासों में मानवीय जीवन, तकनीकी दुनिया पर आधारित है। जैसे 'दौड़' उपन्यास में तकनीकीकृत हाइटेक जीवन बितानेवाले पवन-स्टेल्ला के दाम्पत्य हमें देख सकते हैं। उन दोनों ने परिवार के आशीर्वाद के बिना शादी कर ली। पर साथ-साथ ज़िन्दगी बिताना ज़रूरी नहीं समझे। पवन सिंगपूर या तायवान जाने की संभावना को बाँटते वक्त माँ-बाप ने दोनों की ज़िन्दगी को लेकर चिंता प्रकट की और पुछा कि- "तुम अपनी तरक्की केलिए पत्नी और कंपनी दोनों छोड़ दोगे? छोड़ कहाँ रहा हूँ पापा? यह कंपनी अब मेरे लायक नहीं रही। मेरी प्रतिभा का इस्तेमाल जब "मैल" करेगी। रही स्टेल्ला, तो यह इतनी व्यस्त रहती है कि इंटरनेट और फोन पर मुझसे बात करने की फुर्सत निकाल ले यही बहुत है ..." "यानी साटलाइट और इंटरनेट से तुम लोगों का दाम्पत्य चलेगा?" "यस पापा"18

बात और समय इतना बदल गया है कि शादी रूपी डील को भी साथ-साथ बनाए रखने की फुर्सत आज युवा लोगों के मन में नहीं हैं। आज कल दाम्पत्य भी तकनीकीकृत बनते नज़र आते हैं। दोनों ने बड़ी-बड़ी भरकम वचनों के बिना शादी की थी। यह बदलते प्रौद्योगिक मानसिकता का ज्वलंत चित्रण है। उपन्यास में सघन तो पूर्णतया कंप्यूटर दुनिया में हावी पड़ गया है। स्टेल्ला का तो कंप्यूटर मैनू पर जितना पारंगत है उतना ही रसोईघर से घृणा भी। वह घंटों तक कंप्यूटर में काम करेगी पर पलों तक रसोई में टिकना नहीं चाहती। इन तीनों के माध्यम से युवाओं में हावी पड़ गई प्रौद्योगिकी संस्कृति का चित्रण करना एवं इसपर सतर्कता दिलाना लेखिका का उद्देश्य है।

"विज़न" उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने चिकित्सा क्षेत्र की तकनीकी विकास पर जिक्र तो किया है पर निजी संस्थाओं में क्षमताहीन चिकित्सक किस प्रकार इसका गलत इस्तेमाल करते हैं इसकी भूमिका का भी चित्रण किया है। जैसे शरण एवं अजय बड़े-बड़े डाक्टर्स होकर भी अति आधुनिक मशीनों के उपयोग से

अनभिज्ञ हैं। सर्तकता की कमी तकनीकी दुनिया में क्या-क्या समस्याएँ पैदा कर सकती हैं इन बातों का सशक्त चित्रण "विज़न" उपन्यास में किया है।

कुल ज़मा बीस उपन्यास के ज़रिए रजनी गुप्ता ने बच्चों पर तकनीकी का गलत इस्तेमाल की समस्या को चित्रित किया है। पिता अनिल की दुर्घटना एवं मृत्यु के बाद मां रोज़ी ने किसी क्रैस्तव मर्द से शादी कर ली। इसपर नाखुश बेटा आंशु दादी के पास चला गया। लेकिन समुचित नियंत्रण के अभाव में आशु का व्यवहार दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा था। तकनीकी दुनिया के घेरे में फंसकर जीना शुरू कर दिया। “आइपोड़, पी.एस.पी और फेसबुक की वर्चुअल दुनिया से गुज़रते ये लोग अक्सर वीड़ियोगेम्स की अदला-बदली करते रहते। कभी वे सोश्यल नेटवर्किंग साईटस पर डेटिंग पर जाने का लुफ्त ले होते तो कभी चड़डीधारी *w.w.w.* चैंपियनों के हिंस के कारनामे और उनकी फर्जी लड़ाइयाँ देखते। टी.एन.ए पर "ब्यूटिफुल" पीपल में रिंग में घुसते ही खूबसूरत लड़कियों की स्कर्ट ऊपर उठ जाती है और

कैमरा उनपर टिका रहता . . .।"[19] साथ ही साथ ऑनलाइन वेबसाइट के ज़रिए ऑनलाइन सम्बन्ध भी शुरू की। सिर्फ एक के साथ नहीं ज़्यादा से ज़्यादा सम्बन्ध। ये सोशियल नेटवर्किंग साईट्स बच्चों को एक प्रकार की मज़ेदार दुनिया की ओर पहुँचाते हैं।

"पासवर्ड" उपन्यास तो खुद तकनीकीकृत बनकर हमारे सामने आता है। कमल कुमार ने आत्मकथात्मक ईमेल के ज़रिऐ उपन्यास को आगे बढ़ाता है। ईमेल तो प्रौद्योगिकी विकास का एक परम रूप ही है। कम्यूनिकेशन की दुनिया के बारे में विचार विमर्श करके लेखिका बताती है कि-"कम्यूनिकेशन की भारतीय अवधारणा में मार्शल मैकलुहन एक अद्भुत विचारक है उन्होंने कहा है माध्यम ही संदेश है, क्योंकि संदेश माध्यम से ही पहुँचता है।"[20]

इस प्रकार हिंदी उपन्यासों में तकनीकीकरण के बिगड़ते परिदृश्य को चित्रित करना हर रचनाकार ने अपना लक्ष्य समझा

और भारतीय परिदृश्य में प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी के विकास रूपी अनियंत्रित अतिप्रसरण पर चिंता भी व्यक्त है।

लेकिन भारतीय अंग्रेज़ी औपन्यासिक परिप्रेक्ष्य में आयी स्थिति तो थोड़ा भिन्न है। जैसे "युअर ड्रीम्स आर माइन नौ" उपन्यास में रविंदर सिंह सामाजिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं विड़म्बनाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने केलिए प्रौद्योगिक क्षेत्र का ही सहारा लिया था। प्रो. महाजन द्वारा रहीमा पर की गयी ज़बरदस्ती सही तरीके से शासक वर्गों तक पहुँचाने पर सिर्फ रहीमा को ही उसकी अंजाम भुगतनी पड़ती है। लेकिन अर्जुन एवं साथियों ने सामाजिक माध्यमों द्वारा रहीमा के आइडेंडिटी को छिपाते हुए वीड़ियो का प्रदर्शन किया और युवालोगों के मन में क्रांति की आग लगाई एवं प्रोफेसर महाजन को फँसाया भी। सामाजिक माध्यमों के ज़रिए आज सत्य को असत्य बना सकते हैं। असत्य को सत्य भी। क्योंकि तकनीकी विकास माध्यमीकृत यथार्थवाद तक पहूँचा। सिर्फ सोशियल मीड़िया में वैरल होने के कारण महाजन जैसे सत्ताधारी शोषक का असल चेहरा बाहर आया

है। वरना ये लोग सचाई को दफनाते हुए ईमानदारी के नकाब पहन के घूमते फिरेंगे। यहाँ लेखक ने सकारात्मक सुविधा तकनीकी को आम जनता तक पहूँचाने का प्रयास किया है।

"कैन लव हैपन ट्वाईस" मैं रविन के टूटते अधूरे सम्बन्ध का पुनः मिलन रेडियो 93.5 संप्रेषण के ज़रिए किया है। दूसरे प्यार भी खोने की वजह से रविन जिस प्रकार शिमला के पुनरावास सेंटर तक पहूँचा है इन सबका चित्रण है। एक प्रणय दिवस की 93.5 रेड़ियो के "रातबाकी बात बाकी" शाँ में रविन की कहानी को हाप्पी, अमरदीप एवं मनप्रीत इन तीनों ने मिलकर प्रस्तुत किया। आज तकनीकी का विकास इतना बढ़ गया है कि ऐसे शॉस दुनिया के कहीं भी बैठकर कोई भी सुन सकते हैं। इसपर मुख्य भूमिका तो हाप्पी ने किया है कि तकनीकी सुविधा के ज़रिए वह रविन के मन की बात को सिमार तक पहुँचाता है-

"Last night before we went to the show I had insisted on stopping by an internet cafe. And we did stop. I had Emaild simar the online link of the radio station where in she could hear us . . . it was important to make her put herself in Ravin's shoes so that

she could see the situation differently – so that she could see it through Ravin's eyes."[21] तकनीकी विकास के कारण ही हाप्पी को "सिमार और रविन" की कहानी को पुनः जोड़ पाया है। वरना रविन पुनरावास सेंटर में आज भी खुद केलिए तड़प रहा होगा। हर बात का एक सकारात्मक पक्ष भी है नकारात्मक पक्ष भी है। (जो अपनानेवालों के नज़र के अनुसार ही किस पक्ष का चयन किया जाए)।

"नाऊ दाट यू आर रिच" में भी स्थिति अलग नहीं है। तकनीकी विकास के साथ-साथ चलनेवाले युवा गण के महत्वाकांक्षी-पारदर्शी दृष्टिकोण का वर्णन दुर्जोय दत्ता एवं मानवी अहूजा दोनों साथ मिलकर इसमें किया है। उपन्यास के हर पात्र खुद को रिच बनाना चाहते हैं। लेकिन ऐसे वैसे काम करके नहीं बल्कि मेहनत करके। तकनीकी विकास के सदृश भी युवा लोगों में मेहनत करने की और खुद को आगे बढ़ाने की सोच एक प्रकार सकारात्मक दृष्टि पैदा करती है। इस कहानी की नारी पात्र श्रुति की कहानी के अंत में मिलन, दोस्ती और प्यार सब एक ही दिन

में होती है। दिल्ली से हैदरावाद, हैदराबाद से दिल्ली सिर्फ खाना-खाने केलिए एयरक्राफ्ट द्वारा जाने का वर्णन तकनीकी विकास के अंतिम परिणाम का चित्रण है। अपनों को खुश रखने के वास्ते प्रौद्योगिकी विज्ञान का इस्तेमाल उचित तरीके से करनेवाले महत्वाकांक्षी नवयुवाओं का वर्णन लेखकों ने अपने उपन्यासों में किये हैं।

"रेवल्यूशन 20-20" में स्थिति थोड़ा सा भिन्न है कि लेखक ने उत्तर-सूचना प्रौद्योगिकी समाज में युवागणों के बढ़ती मादक पदार्थों की लत, यौन सम्मोह एवं सही से गलत की ओर की बदलाव का अंकन किया है। उपन्यास के प्रधान पात्र गोपाल का कथन इसकेलिए उचित उदाहरण है कि- *"I had twenty minutes of internet time left. I spend them doing what most guys who come here and did – Surf the IIT official website or watch porn. I guess there and the two things boys wanted most in Kota. Atleast the coaching centres could help you get one of them."*[22] प्रवेश परीक्षाओं के वास्ते प्रशिक्षण केंद्रों में जाते अधिकांश युवागण की हालत तो आज इन्हीं के बराबर है। न घर से, न समाज से, न

एक दूसरे से कोइ लेन देन। ऐसे परिदृश्य में युवागण सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक माध्यमों को सहारा लेकर अश्लील साहित्य, अनैतिक सम्बन्ध आदि की ओर मुड़ते हैं। इसका परिणाम तो ज़रूर भलाई का नहीं होगा। चेतन भगत ने अपने उपन्यासों में तकनीकी दुनिया की असलियतों को लेकर विचार-विमर्श प्रस्तुत किया है। लेकिन "हाफ गर्ल्फ्रेंड़" में स्थिति बिल्कुल अलग है। बिहार के प्रांतीय प्रदेशों में तकनीकी विकास की नाम तक था। उनकेलिए ये सब पहूँच के बाहर की बात बतायी गयी है। ये लोग न तो बिलगेट से परिचित है न कोई सोफ्ट-हाड़ वेयर से। वहाँ भी लोग जीते हैं, बिना स्पर्धा की ज़िन्दगी। बाहरी दुनिया से कम जानकारी तो आम तरीके से अच्छी बात नहीं है। पर आज के प्रसंग में कहे तो बहुत कुछ अनजाने रहना ही मानव केलिए हितकारी है।

तकनीकी प्रौद्योगिकी विकास के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष का उद्घाटन उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों के ज़रिए यहाँ व्यक्त किया है। इसमें तुलनात्मकता

इस बात पर लगती है कि भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में तकनीकी अतिप्रसरण से टूटता परिवार, शादी-प्रथा बच्चों की ज़िन्दगी आदि के कटु यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है।

4.3.1.5. धार्मिकता में आए बदलाव

मानव जीवन में आज भी धार्मिक अंधविश्वास मौजूद है - लेकिन वर्तमान उत्तर-आधुनिक, उत्तर-औद्योगिकीकृत परिदृश्य में "विश्वास" नामी धार्मिक आस्था के प्रति अविश्वास करने की स्थिति आ गई है। अविश्वास के साथ-साथ अंधविश्वास भी आज झलकते हैं। आज धर्म के प्रति भी भारतीयों में एक नई रूझान आयी है। धर्म एक प्रकार के मायामय बाज़ारीकृत रूप धारण किया। क्योंकि आज की व्यस्त ज़िन्दगी में घंटों भर मंदिरों जाकर ईश्वर का कृपापात्र बनने केलिए किसके पास बचा है समय? आज मानव-स्वामि मानव को अपने चंगुल में फँसाकर भक्तों केलिए एक पैकेज प्रस्तुत करते हैं। और अपने क्षेत्र में सफलता पाने केलिए, प्रसिद्धि पाने केलिए, मनुष्य जो चाहे उसे सफल बनाने केलिए ईश्वर ने खुद कुछ लोगों को धरती पर भेजा

है। हर माँग केलिए विभिन्न पैकेज़, विभिन्न दाम खर्च करना है। बस काम पूरा हो जाएगा। धार्मिक विश्वासों का धंधा। धर्म को, त्योहारों को मंगल कामनाओं को बाज़ारीकृत करके उपभोग वस्तु उपभोक्तृ बना दिया है।

मतलब तो यह है कि विकास नामी चीज़ भारत में अपना कदम बनाई रखी है। लेकिन आज भी मानव मन अज्ञान एवं अंधविश्वासों से मुक्त नहीं है। सिर्फ परिस्थितियाँ बदली है, प्रसंग बदला है जड़ तो सिर्फ एक ही है। समाज, समाज न होकर मूर्ख मिथ्या परंपराओं एवं विषमताओं का मानव समूह बन गया है।

अंधविश्वास तो ऐसा एक विश्वास है जो हमें अंधा बनाकर किसी चीज़ पर अतिविश्वास करने को मज़बूर करते हैं। हमें अज्ञान की ओर ले चलते हैं। ईश्वर के अवतार बतानेवाले लोगों पर विश्वास करने की प्रणाली इसकी दूसरी कड़ी है। हिंदी उपन्यासों में ऐसा प्रसंग देख सकते हैं। "विज़न" उपन्यास में नेहा की सास एवं ससुर एक साधुवेशी मनुष्य पर अपने आपको सौंप देते हुए नज़र आते हैं। हर बात केलिए, हर शुरूआत केलिए उनसे

सलाह मशफराह लेते हैं। इस बात पर नेहा बिल्कुल विद्रोही मनोभाव रखती है। उपन्यास का इस प्रसंग में यह व्यक्त है- "नेहा का मन किसी साधुवेशी मनुष्य के पॉव छूने को नहीं करता, क्योंकि उसके मत के अनुसार मनुष्य रहना ही सबसे ज़्यादा सहज क्रिया है। इनसान के ऊपर चढ़ा कोई भी चोला उसे छद्म लगता है। पापा से उसकी अक्सर बहस जो जाती थी।"[23] अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त बाबा आनन्दाचार्य धर्म के रहस्य, जीवन के मोक्ष पर भाषण देकर सबको मोक्षप्राप्ति दिलाने आए हैं। एक प्रकार का अलौगिक झंकार। लेकिन जो लोग यह सुन रहे हैं उनका लक्ष्य तो आम जनता को लूटना ही है। ये लूटनेवालों ने पैसे से धार्मिक पवित्रता एवं अलौकिकता को खरीदने का प्रयास किया है। कितनी बड़ी विड़म्बना है ये सब।

"दौड़" उपन्यास में अजीविका की अंधी दौड़ में भी युवागण ऐसे स्वामियों के पास जाकर शांति एवं समाधान (Solution) ढूँढ़ते हैं। पवन भी अपनी शादी के डील का पूछ-ताछ अपने माँ-बाप से करने के बजाय एक स्वामीजी से करता है। उनका मानना है कि

अगर वे हाँ कहे तो भविष्य में कोई अनहोनी नहीं आ जाएँगी। पवन का यह कथन इन लोगों पर उनके विश्वास का या अति विश्वास का ज्वलंत उदाहरण है कि-“पापा से मैं फोन पर बात कर लूँगा। वैसे स्वामी जी सबके सूपर पापा है, वे सोच समझकर हामी भरते हैं। उन्होंने भी इस डील पर मुहर लगा दी।”[24] खुद के बेटे के अस्तित्व में भौतिकतावाद, आध्यात्म और यथार्थवाद की त्रिपथका बहते देखकर पापा आहत में रह गए हैं और कहते हैं कि -“तुमने तो हर चीज़ की पैकेजिंग ऐसी कर ली है कि वह जेब में समा जाए। भक्ति की कैपस्यूल बनाकर बेचते हैं आजकल की धर्मगुरू। सुबह टी.वी के सभी चैनलों पर एक न एक गु डिग्री प्रवचन देता रहता है। पर उनमें वह बात कहाँ जो शंकराचार्य में थी या स्वामी विवेकानन्द में।”[25] ये बातें पुराने धार्मिक विश्वासों का झलक है। आज पुराने और नए धार्मिक अतिरूपी अंधविश्वासों के द्वंद्व में पड़ती मध्यवर्गीय पीढ़ी की विड़म्बना भी वर्तमान हिंदी उपन्यासों में देखने को मिलती है।

"17 रानड़े रोड़" ग्लैमरस या शोभान्वित दुनिया में व्याप्त ज्वोतिष संबन्धी अन्धविश्वासों को खुला देता है। मुम्बई जैसे महानगरों में हर बात केलिए अमीर लोग अंतर्राष्ट्रीय नामी धर्मगुरुओं का सहारा लेते हैं। यह एक प्रकार से सामाजिक स्तर को बनाए रखने का काम भी माना जा सकता है। ताकि इन लोगों के कमनीय पादस्पर्श से अपने नाम और खूबी समाज में फैल जाए। साथ ही साथ फिल्मी नायक-नायिकाओं ने पुराने नाम बदलकर खुश किस्मतवाले नामों को-जो धर्मगु डिग्री लोगों से चयनित नाम हैं-अपनाकर फिल्मी जगत में नाम कमाने के विश्वास रावते हैं। कामयाबी तो कर्म पर नहीं धर्मगुरुओं के मतानुसार "नाम" पर आधारित होते हैं।

"भारतीय अंग्रेज़ी" उपन्यासों में तो पैकेजिंग धर्म-गुरु धंधा उतना नहीं देखा है जितना हिंदी के समकालीन उपन्यासों में हैं। लेकिन बच्चे को अवशकुन मानने वाली दादी को देखा है, मन्दिर के बाहर खड़ी गरीबों को पैसे देकर खरीदनेवाले आशीर्वाद देखा है, मन्दिर में से पैसों से मिलते ईश्वरी दर्शन को देख सकते हैं।

"मदर आई नेवर क्न्यूस" एवं 'हाऊस ऑफ काईस्' में सुधामूर्ति ने भारतीय परिवेश के साधारण लोगों के बीच के अंधविश्वासों का जिक्र किया है। 'मदर आई नेवर क्नोस' में रूपिंदर के बेटे मुन्ना को उनकी सास *'bad omen'* अर्थात् अपशकुन बुलाती थी। साथ-साथ मुन्ना के प्रति उपेक्षा की भावना रखती थी। सास तो मुन्ना को कहीं लेकर जाना पसंद नहीं करती थी। वह हमेशा यह कहा करती थी कि *"He'll bring bad luck to the family over them too."*[26] इसलिए रूपिंदर मज़बूरी से मुन्ना को कृष्णाराऊ एवं सुमति के गोद में सौंपकर अमृतसर चला गया। अंधविश्वासों के नाम पर बच्चों को इस प्रकार छोड़कर चले जाना उस ज़माने की बुरी हरकत थी। मृदुला ससुराल में आने के उपरांत अपने परंपरागत रीतियों का आचरण करती थी। और उसके लिए बहुत पैसा भी खर्च करती थी। लेकिन उसकी सास रत्नम्मा पैसों से मिलनेवाले आशीर्वाद पर विश्वास नहीं करती थी। *"What does Mridula know what the value of ten rupees is? Blessings are not proportional to money. If blessings had that power then the world would have been different."*[27] जयश्री मिश्रा

कृत "एन्शियँट प्रामिसेस" में धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता का व्यावसायीकृत मनोभाव देखने को मिलते हैं। केरल के गुरुवायूर श्रीकृष्ण मन्दिर में आज व्यावसायिकता एवं बाज़ारीकरण कुछ ज़्यादा दिखाई पड़ता है। वहाँ के सुरक्षा कर्मियों से लेकर मुख्य कर्मी पैसेवालों को प्रधानता देते हैं। उपन्यास का यह कथन देखिए कि- *"The priests at the door, however were always angry young men, filled with the importance of collecting as much money as possible in as a short a time as possible."*[28] साथ ही साथ ईश्वरीय चमत्कार पर भी लोग ने विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर को कुछ देने से जीवन की किसी भी समस्या का समाधान हो सकता है। *"Guruvayurappan was greedy for his share of sugar, they said, because it was going to take one of his miracles to cure Appuppa of his cancer & now Guruvayurappan had been promised another Thulabharam for bringing about the miracle of my marriage."*[29] धार्मिकता के दो पक्ष होते हैं - सकारात्मक एवं नकारात्मक। धार्मिकता भी पैसे से आंकी जाती है। बदलते परिवेश के अनुसार मानवीय भावनाओं का बदलना स्वाभाविक है। बिना बदलाव का जीवन स्थगित सा होता

है। परिवर्तन ही दुनिया की एकमात्र ऐसी चीज़ है जिसे बदला नहीं जा सकता है।

4.3.1.6. महानगरीय जीवन बनाम ग्रामीण जीवन

आज नगरीकरण तो एक वैश्विक प्रक्रिया बनकर चल रहा है। गाँव की मासूमियत एवं सादगीपन को छोड़कर, खेती छोड़कर युवागण बहुराष्ट्रीय के लुभावने जाल में फँसकर नगरों की ओर पलायन करते हैं। यही युवालोग महानगरीय सभ्यता की उपज है। क्योंकि इन लोगों के कारण ही नगर या शहरों में जनसंख्या वृद्धि होती है। नगर महानगर बन जाता है। इन युवागणों का विश्वास यह है कि महानगरों की ओर पलायन से नौकरी का अवसर बढेगा साथ ही इनका जीवन स्तर, आर्थिक स्तर, सांस्कृतिक स्तर बढ़ते जाएँगे।

गाव में नौकरी की कमी याने कि बेरोज़गारी गरीबी, अवश्यक चीज़ों की अनुपलब्धि, तकनीकी विकास का अभाव, परंपरागत बंधन आदि से युवागण त्रस्त है। लेकिन वे सोचते हैं कि शहर जाने पर इन अभावों को दूर किया जा सकता है और पारंपरिक

बंधनों से भी मुक्त हो जाएँ। लेकिन युवागण को यह समझ में नहीं आता है कि नगरीय जीवन उन्हें ओर जटिल, अकेला और अजनबी बना देंगे व्यर्थताबोध एवं संत्रास से आगे का जीवन जीना पड़े।

4.3.1.6.1. ग्रामीण मानव जीवन

ग्रामीण जीवन तो हमेशा सरल एवं जटिलतामुक्त था। लेकिन आज के परिवर्तित एवं उत्तर-आधुनिक बोध के प्रभाव से संक्रमण की स्थिति में है। दुनिया में आज सामूहिकता की संकल्पना व्यक्तिवादी संकल्पना में तब्दील हो रही है। संयुक्त परिवार का विघड़न, युवा लोगों का शहर की ओर पलायन, अपने गाँव के प्रति उनका बदलता दृष्टिकोण आदि के कारण गाँव सिर्फ सीनियर सिटिसन कॉलनी बनते जा रहे हैं। युवा लोग माँ-बाप और घर को छोड़कर शिक्षा प्राप्ति के बाद अपनी कामयाबी केलिए कहीं बाहर चले जाते हैं। जिसके कारण गाँव में अधिकांश बुज़ुर्ग लोग अपनी आगे की ज़िन्दगी अकेले बिताने में मज़बूर हैं।

उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में गाँव जीवन की सरलता, एक दूसरे से लगाव, आर्थिक कठिनाइयों को हल्का माननेवाले मनोभाव, प्रकृति या पर्यावरण से मिलते मानवजीवन, संयुक्त परिवारों की खूबी एवं कमी, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का प्रभाव, राजनीतिक समस्याएँ आदि का चित्रण किया है। "दौड़" उपन्यास में "पवन" इलाहाबाद के किसी गाँव से "अहमदाबाद" में नौकरी मिलकर जा रहा है। पहले तो पवन को अपने गाँव की गंध, खान-पान, घर, माँ-बाप, वातावरण सब कुछ की याद आती रहती थी। लेकिन बाद में उनके जीवन में शहरी सभ्यता इतनी ज़म गयी कि अपने गाँव के हर चीज़ बुरा लगने लगा। वह गंगापानी को भी मल-मूत्र विसर्जित गंगा पानी कहकर एक्वागार्ड लगाने को कहता है। शहर जानेवाले युवा लोगों के दृष्टिकोण इस प्रकार बदल गया है। इस शोध अध्ययन केलिए चयनित हिन्दी उपन्यासों में अधिकांश महानगरीय जीवन की कहानियाँ मिलती है जबकि अंग्रेज़ी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव दर्शानेवाली कहानियाँ पाती हैं।

"हाउस ऑफ कार्डस", "मदर आई नेवर क्नोस" दोनों उपन्यासों में सुधामूर्ति खोए हुए ग्रामीण जीवन के बारे में अपना दर्द एवं चिंताएँ पात्रों के द्वारा व्यक्त करती है। "हॉफ गर्लफ्रेंड़" में चेतन भगत ने बिहार के कुछ ऐसे प्रांतों का चित्रण करने की कोशिश की है जहाँ भारत के पिछड़े हुए देशों में विकासों से अनबिज्ञ कुछ लोग भी जी रहे हैं। जयश्री मिश्रा ने भी अपना "एंशियंट प्रॉमीसस" उपन्यास में केरल के ग्रामीण परिवेश एवं सरल जीवन का चित्र किया है।

"हाऊस ऑफ कार्डस" उपन्यास का आरंभ उत्तर कर्नाटक के अलादहल्ली नामक गाँव के चित्रण से होता है। आजकल गाँव के युवा लोग शादी के बाद शहर की ओर पलायन करते हैं जैसे उपन्यास की मृदुला। अलादहल्ली के भीमन्ना, रुकुम्मा, कृष्णा और मृदुला के बीच की मासूमियत, प्यार, आस-पास के लोगों को प्रति लगाव, खेती-मज़दूरी एवं पर्यावरण की ओर की घनिष्ठता आदि सारे प्रसंग बडी मार्मिकता से अभिव्यक्त हुए हैं। निम्नलिखित प्रसंग ग्रामीण जीवन की गहराई को प्रस्तुत करने में उचित है- -

"When an animal is the Village fell sick, her father immediately took medicine made from the plants in his garden and treated the animal, without waiting for the animal's owner to call him. After the treatment, Bheemanna was given a bowl of rice and jaggery and five one-rupee coin as his fee. He never kept the fee from treating animals to himself. He would offer the coins to Lord Hanuman and say - "Mridula, grind all the rice, jaiggery and coconut together. Then add some ghee and give it to the cows. It is good for them.

As she went about her task, her father would ask her; do you know why God has given the power of speech to humans and not to animals? Mridula would childishly reply 'to talk'.

"No Child, not just to talk. It is also to share, so whenever you face difficulty or you receive joy, you must share it with others. But think of all the animals – those poor things can't even share their difficulty with unyone. They have to bear it alone. Mridula, remember-you must always be open. Don't hide. Hiding is a sin."[30]

इतना बड़ा प्रसंग जानबूझकर समाविष्ट किया है कि यह प्रसंग खुद ही गाँव के खुलापन केलिए, इन्सानियत केलिए एक

ज़्वलंत मिसाल है। उपन्यास में मृदुला संजय से शादी करके बैंगलूर जाती हैं और ज़िन्दगी तनावपूर्ण एवं निराशाजनक बन जाती है। एक ग्रामीण सीधी-सादी लड़की केलिए शहर की व्यस्तता एवं नकली चेहरा सहन करना मुश्किल है। बहुत साल बाद जब वह अपना फुफेरा सतीश को देखा तो उसने ग्रामीण जीवन का ऊष्मल दाम्पत्य की बात सुनकर आश्चर्यचकित एवं थोड़ी सी ईष्यालू बन गयी थी। आम परिवारों में पैसे की कमी होगी पर वे हमेशा एक दूसरे का साथ बनते हैं और महत्वाकांक्षी बनकर जीवन जीते हैं। मासूस प्यार सिर्फ गाँव में ही हमें देखने को मिलते हैं जो सतीश और पत्नी के बीच है। सतीष, सपरिवार तिरुप्पति जाने का निर्णय लेता है पत्नी शैला जब बुखार पड़ी तो ठीक होने के वास्ते वह एक प्रस्ताव लेता है और उसे निभाने केलिए तिरुप्पति के हर कदम पैतल जाता है।

"Last year, Shyla was unwell and I prayed and promised that I will climb the steps to Tiruppati once she recovers."

"Then you must do that, but why is Shyla climbing the steps?" Satish blushed and said– *"Come on Mridula, She's my wife and my better half, how can I go alone? She knows that I get bored without her?"*[31] सच्चे प्यार की झलक सिर्फ गरीब आम जनताओं के बीच ही हमें देखने को मिलते हैं। इसका सोदाहरण प्रस्ताव इस उपन्यास के ज़रिए लेखिका व्यक्त करती है।

"मदर आई नेवर क्नोस" में ग्रामीण जीवन के मासूमियत का वर्णन "हब्ली" के लोगों के माध्यम से किया है। आनंद पटेल एवं पत्नी विजयाबाई दोनों बच्चों के साथ के बिना भी अपने गाँव में स्वस्थ जीवन बिताते हैं। उनके ऊपर न तकनीकी का प्रभाव या तनाव है, न बाज़ारीकृत सभ्यता। हाथ में जो है उसपर खुश रहना, भविष्य के प्रति चिंता न करना, भून पर अटिक नहीं रहना आदि उनके सफल जीवन का राज़ है। वेंकटेश जब हब्ली में रहना शुरू करता है तब आनंद पटेल की ज़िन्दगी की सरलता एवं भुलेपन देखकर वह खुश हो जाता है। *"Sometimes, he envied Anand patel's life, it was full of joy and enthusiasm both husband and wife enjoyed each other's company and troubled each other*

like teenagers.''[32] इस उपन्यास के दूसरे हिस्से "मुकेश" भी ग्रामीण जीवन की परिवेश को प्रस्तुत करता है। रूपिंदर की सास उनका पोता मुन्ना को अपशकुन मानकर छोड़ने को किस प्रकार मज़बूर कर रही थी यह भी ग्रामीण जीवन की अंधविश्वास एवं रूढ़ीग्रस्तता के अधिगम का ज्वलंत मिसाल है।

"द फाल्डेड़ एर्थ" उपन्यास में रानीखत (हिमालय के नीचे की पहाड़ी प्रदेश) के द्वारा मानव जीवन के स्वस्थ एवं पर्यावरण से जुड़ी हुई ज़िन्दगी के पक्ष को उघाड़ने का प्रयास किया है। "चारू" नाम की लड़की के ज़रिए मनुष्य-जानवर के बीच के अटूटे सम्बन्ध एवं ग्रामीण जीवन की रोचकता का चित्रण करने में लेखिका पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं सत्ता की स्वार्थपरता के कारण भारत में पीछे पड़ गए बिहार के कुछ प्रांतों का चित्रण करके चेतन भगत "हाल्फ गर्लफ्रेंड़" का प्रस्तुतीकरण किया गया है। ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों को भला-बुरा दोनों भागों में चित्रित करने में लेखक पूर्ण सफलता प्राप्त हुआ है। माधव झा, उनकी माँ

राजवंश के अंतिम कड़ी है। वहाँ के लोग जनतंत्र पर नहीं बल्कि राजतंत्र पर विश्वास करते हैं इसलिए वे लोग माधव को राजाभिषेक करके राजासाहब बना देते हैं। शैक्षिक पिछड़ेपन, तकनीकी विकास पर अनबिज्ञता, भाषाई समस्याएँ आदि वहाँ के लोगों को झेलनी पड़ती हैं। माधव के ज़रिए लेखक इन समस्याओं पर अपना तीखा विरोध प्रस्तुत कर रहा है और युवागण के ज़रिए सुझाव के मार्ग भी दिखाता है।

इन उपन्यासों के ग्रामीण जनजीवन के वर्णन के ज़रिए एक बात तो स्पष्ट है कि आज के हिंदी उपन्यासों के बजाय भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में ग्रामीणता की ओर एक आकर्षण, लगाव देखने को मिलते हैं। हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश की ओर बदलते युवागण की मानसिकता एवं शहरीकृत होते गाँवों का जिक्र ज़्यादा किया है लेकिन वैश्विक भाषाकृत रचना होकर भी भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में कल केलिए गाँव के प्रति एक महत्वाकांक्षी दृष्टिकोण झलक रहा है।

4.3.1.6.2. महानगरीय मानव जीवन

हमें तो पता है कि वर्तमान समय में महानगरीय सच्चाई सामाजिकता से बदलकर व्यक्ति केंद्रित बन गया है। उपभोक्तावादी, बाज़ारीकृत चेतना तो इसका मुख्य कारण माना जा सकता है। इसलिए मानव के कोमल भावनाओं पर विरामचिह्न लगाकर भौतिकवादी भावनाओं का आरंभ हुआ है। मतलब हमारे सामने आत्मकेंद्रित स्थिति है, महानगरीय मानव जीवन की स्थिति। समकालीन हिंदी अंग्रेज़ी उपन्यासों में महानगर के विविधता से भरे जीवन का वर्णन है ताकि यहाँ की संस्कृति भी बहुरंगी है।

आज के लगभग अधिकांश उपन्यासों में महानगरीय जीवन की तमाम भीड-भाड़ अति व्यवस्तता के बावजूद भी महसूस रिक्तता, तनाव, कुंठा तथा अकेलापन से गुज़रते मानवीय जीवन की कथा उजागृत है।

हिंदी उपन्यासों में महानगरीय जीवन की व्यर्थता एवं जटिलता भरी समस्याओं का चित्रण हैं तो भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में महानगरीय कृत्रिम प्रदर्शनकारी सभ्यता, नकली हंसी

एवं अपनापन, पैसों से चलती नैतिक मूल्य आदि पर तीखा व्यंग्य एवं विरोध हैं। हिंदी उपन्यास वापस गाँव की ओर जाने की चिंता नहीं रखता है बल्कि आज के तनावग्रस्त महानगरीय जीवन रूपी नदी में तैरना अपनी नियति मानते नज़र आता है। लेकिन अंग्रेज़ी में वापस गाँव की ओर की चिंता अधिकतम देख सकता है।

किसी बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करने केलिए अपने गाँव छोड़कर चले जाते युवगण ही महानगरीय सभ्यता का आधार स्तंभ है। अनजाने शहर में सफलता केलिए संघर्ष करते-करते कुछ हासिल करने पर खुद के गाँव वापस आना उनकेलिए नापसंद बन जाते हैं। क्योंकि "दौड़" उपन्यास के पवन कहता है कि “सच तो यह है पापा जहाँ हर महीने वेतन मिले, वही जगह अपनी होती है और कोई भी।”[33] जब घर गाँव छोड़कर नौकरी केलिए पवन चला गया, उसके बाद खुद के देश में परदेश होते पवन को ही हमें उपन्यास में देख सकते हैं। अपनी जन्म भूमि का पानी पसंद न आकर एक्वागर्ड एवं मिनरल बॉटल का

इस्तेमाल करना, शहर के जैसे ऐय्याशी करके पैसा का फिसूल खर्च करना आदि महानगरीय जीवन शैली का प्रभाव उपन्यास में प्रस्तुत किया है। पारिवारिक शिष्टाचार को भूलकर माँ-बाप से ऐसा-वैसा बातें करना, उनसे बिना राय पूछे अपनी शादी तय करना, शादी तो डील जैसे करना, शादी के बाद दोनों का अलग-अलग देशों में रहकर दाम्पत्य बढ़ाना, खान-पान में इंस्टेड़ संस्कृति का आना-जाना आदि के द्‍वारा लेखिका ने महानगरीय मानव जीवन की व्यर्थ-जटिल जीवन को अपनी कलम द्‍वारा खींचने का प्रयास किया है।

"विज़न" भी मैत्रेयी पुष्पा द्‍वारा महानगरीय ऐय्याशी एवं नकल नैतिक यथार्थ में जीते जागते "शरण आई सेंटर" के वारिस एवं डॉक्टर अजय और उनकी पत्नी, भारतीय स्त्री के रूप में चित्रित नेहा के जीवन कथा का अंकन है। महानगरीय दिखावे की ज़िन्दगी, चिकित्सा जगत् में बड़े-बड़े महानगरों में चलती भ्रष्टाचार शोषण, अनैतिकता आदि के साथ-साथ "नेहा" के जीवन आदर्शों पर चलती ज़िन्दगी को अंकित किया है।

महानगरीय स्वार्थ ज़िन्दगी का चित्रण "ईधन" उपन्यास के ज़रिए स्वयं प्रकाश किया है। आज महानगरों के फ्लेटों में लोग ऐसी ज़िन्दगी जीते हैं जहाँ न कोई अड़ोस-पड़ोस से लेन-देन है न कोई बातचीत। घर रूपी मकान में एक साथ जीते प्राणियों के बीच भी कोई मेल एवं सहभागिता देख नहीं पाते हैं। ईधन उपन्यास की नायिका स्निग्धा और उनके पापा के बीच तक एक आत्मीय लगन हमें नहीं देख सकते हैं। स्निग्ध को यह तक नहीं पता है कि पापा का उम्र कितना है।

महानगर में चलते इंस्टेंड़ कल्चर को "कुल ज़मा बीस" उपन्यास के बच्चे आंशु के ज़रिए लेखक चित्रित किया है। आंशु तो बचपन से ही बाप की मृत्यु एवं माँ की मनपसंद ज़िन्दगी की द्वंद्व में पड़कर दादी के पास आकर रहता है। छोटी सी उम्र में ही वह महानगरीय मज़ेदार दुनिया की ओर मुड़कर इंस्टेट कल्चर के प्रभाव में जीती हैं। उनके दोस्त करण कहता है कि “यहाँ तो सब कुछ इंस्टेंट होता है। इंस्टेंट कॉफी, इंस्टेंट नूडिल्स, इंस्टेंट मेसेजस और इंस्टेंट रिलेशनशिप भी। वो भी यों चुटकियों से।”[34]

यही महानगरीय यथार्थ है, सब जानकर भी अनजाने रहने की मज़बूरी।

"17 रानड़े रोड़" तो रवीन्द्र कालिया द्‌वारा खींचे गए महानगरीय यथार्थ है, मुम्बई महानगर के गलियों से लेकर अट्‌टालिकाओं तक के जीवन का चित्रण इस उपन्यास के ज़रिए लेखक किया है। गलियों के एक कमरेवाले झोंपड़ी के कटुवाहट, असुरक्षा मनोभाव एवं निस्सहाय जीवन आदि को सुमित्रा की घर की हालत के रूप में लेखक पाठकों को दर्शाता है। साथ ही साथ अमीर लोगों के घर में चलते अवैधिक, अनैतिक अतृप्त कामवासना का, कृत्रिम प्रदर्शनकारी प्रवृत्ति का चित्रण भी लेखक इसमें खीच लिया है। महानगरीय जीवन के ऐश से फर्श तक की हर पहलुओं को जोड़ने में लेखक खूब सफलता अपने उपन्यास के ज़रिए पाया है। शोभान्वित जगत की चकाचौंध एवं महानगरीय प्रदेश के वास्तविक जन जीवन, महानगरीय रिश्तों की चंचलाहट, पेज़ थ्री कल्चर, महानगरों के भूमण्ड़लीय-पूँजीवादी-उपभोक्तावादी दुनिया का स्वभाव, महानगरों मे चलती हाई-फाई पार्टियों की

नकलता एवं दिखावट आदि का समग्र वर्णन इस उपन्यास की विशेषता है।

"पहर दोपहर" भी असगर वजाहत द्वारा मुम्बई जगत् की सच्चाईयों को लेकर लिखित उपन्यास है। मुम्बई शहर के बारे में असगर का कथन इस प्रकार है- "यह शहर मुझे पसंद भी है। यहाँ तो है कम-से-कम अपने देश के किसी शहर में नहीं है। शहर के अपने उसूल है। वह आदमी को अपने अनुसार ढ़ाल लेता है। जबकि दूसरे शहरों में यह ताकत नहीं है।"[35]

आज का हिंदी उपन्यास तो शहरीकृत बनते जा रहे हैं। ग्रामीण परिवेश पहले की अपेक्षा कम नज़र आता है। सच कहे तो हर एक अपने रहन-सहन एवं आजीविका प्राप्त शहर को अपना मानते हैं लेकिन शहर या महानगर आज किसी का नहीं रह गया है। एक जाते तो दूसरा आएगा, वह भी जाते तो तीसरा। प्रेहेलिका तो ऐसी चलती है। पर सब शहरीकृत यथार्थ को अपनाकर यही है सब कुछ सोचकर, जीते हैं। सिर्फ चंचलाहट एवं अटूटे रिश्तों तक तोड़ने की जादूई हाथ महानगरों में हर कहीं विद्यमान हैं।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास तो ग्रामीण जीवन के साथ-साथ महानगरीय जीवन शैलियों का उद्घाटन करते आ रहे हैं। दोनों भाषा उपन्यासों की तुलना करने पर इस उपन्यासों में सकारात्मकता का भी जिक्र है ना कि सिर्फ और सिर्फ नकारात्मक महानगरीय परिवेश। "हाऊस ऑफ कार्डस" में शादी करके शहर जाती मृदुला के मन की तन्हायीपन और अपने गाँव के ओर की लगाव का चित्रण है। मृदुला तो शिक्षित औरत है। फिर भी महानगरीय व्यस्त ज़िन्दगी से मेल पाने को बहुत मुश्किल महसूस करती है। यहाँ के जीवन तो पैसों से चलते हैं। मृदुला का तो पैसों की चिंता के बगैर सरल जीवन पसंद थी। उनके मतानुसार महानगर एवं पैसा दोनों जनता की ज़िन्दगी को चकचोर करने लायक चीज़ है। बच्चों की भी ज़िन्दगी अधिकांश ऐसे महानगरों में बिगड़ते नज़र आते हैं। क्योंकि यहाँ किसी को किसी ओर के बीच नियंत्रण नहीं डाल सकता। संजय एवं मृदुला का पुत्र शिशिर पैसों के ऊपर जीते बच्चा है इसलिए पैसों के मूल्य पर वह अनभिझ भी। नैतिकता एवं मूल्यों पर चलते जीवन

महानगरों में देखना महत्वपूर्ण बात है। लेकिन लेखिका यहाँ मृदुला एवं शिशिर के ज़रिए परवरिश की महत्व को भी उजागर करती है कि भीमन्ना एवं रुकुम्मा मृदुला को जो ग्रामीण परवरिश में पला-पोसा है वह महानगर जाकर भी वे सब नहीं भूलती। बेनैतिक प्रवृत्तियों की ओर कभी नहीं मुड़ती। शिशिर भी पैसों एवं ताकत के ऊपर जीने पर भी कोई अनैतिक तरीके के काम करते नज़र नहीं आता है। तो एक प्रकार की सकारात्मक परिदृश्य में ही लेखिका उपन्यास समाप्त करती है।

"युअर ड्रींस आर माईन नाऊ" में रूपाली की सहेली सलोनी के ज़रिए दिल्ली महानगर में पली-पढ़ी लड़कियों के जीवन का चित्रण किया है। सलोनी तो बहुत (अति) आधुनिक चिंतावाली लड़की है। दिल्ली में ही घर होते हुए भी निजीपन एवं आज़ादी केलिए हॉस्टल में रहती है। महानगरीय विशेषता तो यह है कि हर कोई स्वतंत्रता की चाह करते हैं। लेकिन फिर भी सलोनी दोस्ती रूपी नैतिकता को सही ढंग से निभाती नज़र आती है। स्वार्थ मनोभाव कहीं भी नहीं देख सकते हैं।

महानगरों की बदलती मानसिकता के अनुसार ही बदलते खान-पान की संस्कृति को भी भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में देख सकते हैं। "कैन लव हैपन टुवैस" में लेखक रविन के बेल्जियम जाने से भारतीय खान-पान संस्कृति से भिन्न संस्कृति को कहीं न कहीं जिक्र किया है। उनकेलिए सेनविच एक नास्ता जैसे हैं लेकिन भारत में सिर्फ एक स्नेक्स।

"नाऊ दाट यु आर रिच" महानगरीय परिवेश का उपन्यास है। पूरा उपन्यास महानगरीय जीवन की ओर इशारा कर रहा है। महानगरों के युवालोगों की बदलती मानसिकता, आजीविका को स्थाई बनाने का अथक परिश्रम, महानगरीय सत्तात्मक अनैतिकता, व्यक्ति केन्द्रित होने पर भी अटूट रिश्ते, ब्रांटड़ संस्कृति आदि को श्रुति, गरिमा, अभिजीत एवं सौरव की दोस्ती एवं सिल्वैर मैन फिनेन्स जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वातावरण के माध्यम से चित्रित किया गया है।

"द मदर आई नेवर नोस" में महानगरीय कृत्रिम प्रदर्शनकारी सभ्यता, पार्टी कल्चर, पैसों से चलते मानव जीवन एवं रिश्तों का

चित्रण शान्ता एवं पुत्र रवि के माध्यम से खींचा है। "हाल्फ गेर्लफ्रेंट" दिल्ली जैसे महानगर की भूमिका में लिखित है। इसमें दिल्ली में पढ़ने आए बिहारी लड़का माधव झा को शहरीय सभ्यता के ज़रिए क्या-क्या झेलना पड़ता है इन सबका चित्रण है। महानगरीय भाषा सभ्यता, अंग्रेज़ी प्रधानता, रिश्तों के मायने, शारीरिक सम्बन्ध, पार्टी कल्चर, नकल हंसी चेहरे आदि को लेकर उपन्यास का पहला खंड़ प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार देखें तो हिंदी उपन्यासों में महानगरीय जीवन परिवेश को बहुत जटिल एवं तनावग्रस्त के रूप में ही वर्णित देख सकते हैं जैसे दौड़ में आजीविका केलिए संत्रस्त आत्मपीड़ित महानगरीय युवागण हैं तो ईंधन में महानगरीय पारिवारिक जीवन में फैलती तनाव। "17 रान्ड़े रोड़" तो मुम्बई महानगर की कटु सच्चाइयों को लेकर सामने आया है, "पहर दोपहर" के कथानक भी ऐसा ही है। जिसमें शुभसूचक मंगलकारी महात्वाकांक्षी समाप्ति बहुत कम है।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित महानगरीय परिवेश में कहीं न कहीं पारदर्शों मनोभाव एवं समस्याओं का सुझाव किसी न किसी प्रकार उपन्यासकार प्रदान करते हैं। "द मदर आई नेवर नोस" में वेंकटेश और पुत्री गौरी मानवमूल्यों को खोकर कोई काम नहीं करते हैं बल्कि शांता एवं पुत्र रवि पैसों से ज़िन्दगी चलाते हैं, जिसपर लेखक दोनों वश का चित्र खींचने में सफल हुआ है। तो "हाऊस ऑफ कार्ड्स" में मृदुला भी शहरीय जीवन में अपना खुलापन और मासूमियत नहीं छोड़ती है। उनकी नैतिक-मानवीय मूल्यों पर हमेशा पति संजय एवं बेटा शिशिर ऊँगलियाँ उठाते थे लेकिन उपन्यास के अंत में मृदुला की रास्ता ही वे स्वीकार करते नज़र आते हैं। इससे लेखक गण यह स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि चाहे दुनिया कितना भी विकसित हो जाए असली जीत तो सच्चाई एवं नैतिक पथ को अपनानेवालों का ही होते हैं। मतलब तो यह है कि भाषा के जैसे ही एक महत्वाकांक्षा भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकारों में निहित है जिसके द्वारा समाज के हित ही उनका लक्ष्य है।

4.3.1.7. उत्तर-आधुनिक बच्चों का जीवन एवं बदलती युवा मानसिकता

कुछ साल पहले तक बच्चों की ज़िन्दगी माने तितलियाँ जैसी थी। ताकि बाहर ऐसे उड़कर-तैरकर, खेल-खेलकर, निर्दोष हंसियों से हिलाकर जीनेवाली ज़िन्दगी। स्लेट से लिखकर, सब कुछ एक दूसरे को देकर, एक ऐसी ज़िन्दगी जीती थी वहाँ स्थाई ईर्ष्या, घृणा, गुस्सा आदि की संभावना तक नहीं थे। लेकिन आज सब कुछ उलट-पलट हो गया है। तकनीकीकृत दुनिया वच्चों की मासूमियत मानसिकता में भी बदलाव लाया है। इन बदलावों के हर पहलुओं को वर्तमान उपन्यासों के ज़रिए उपन्यासकार चित्रित किए गए हैं।

आज अपने बच्चों को लेकर भी अभिभावकों को व्यावसायिक मनोभाव है। उन्हें सबसे बडे विद्यालयों में भर्ती

करवाकर व्यर्थ दिखावे की प्रवृत्ति दिखाते हैं। घर आने से पहले एक-एक विषय पर ट्यूशन, घर आने के बाद गृहकार्य की परेशानी आदि से बच्चों को तनावग्रस्त ज़िन्दगी जीना पड़ रही है। जब "ईधन" उपन्यास में स्निग्धा अध्यापिका बनकर एक अलग तरीके से शिक्षण-प्रशिक्षण करने पर विद्यालय शासकों एवं अभिभावकों के मन में शंका उत्पन्न होते हैं और उनके शंकाओं पर छात्र निराश हो रहे थे इसपर स्निग्धा का कथन इस प्रकार है- “संभवतः वे अपने अभिभावकों के दबाव में थी। कई लड़कियों ने बताया था कि घर पहुँचते ही उनकी मम्मी उनका बैग खोलती हैं, काँपियाँ टटोलती है, पूछती है आज क्या पढ़ाया स्कूल में, क्या होंवर्क मिला? इसके बाद ही खाना मिलता है। कई अभिभावक सोचते थे कि चूँकि वे फीस देते हैं, जो हिसाब से इतने रूपए प्रतिदिन बड़ती हैं, इसलिए एक जागरूक व्यक्ति होने के नाते यह सुनिश्चित करना उनका फर्ज बनता है कि आज के पैसे वसूल हुए या नहीं?”[36] आज शिक्षा एवं अभिभावकों का शासन बच्चों केलिए बोझ बन गए हैं। रविवार केलिए भी अभिभावक लोग डब्ल

हॉवर्क चाहते थे ताकि घर पर बैठकर हाँमवर्क करें किसी ओर को परेशानी नहीं हो जाए। बच्चों को लेकर भी माँ-बाप की मानसिकता इतना भावुकतारहित बनते जा रहे हैं। उत्तर-औद्योगिकीकृत दुनिया में सारे लोग इतना व्यस्त एवं नौकरी को लेकर इतना परेशान है कि उन्हें अपने बच्चों केलिए वक्त निकालना मुश्किल बन चुका है। हर माँ-बाप बच्चों के हर क्रिया-कलापों को पैसों से नियंत्रित करते हैं, जो चाहे खरीदकर देते हैं ताकि परेशान करके अपना वक्त खराब न कर जाए। इन मनोभावों से छात्रों के मानसिक विघटन ही होते जा रहा है। उन्हें तो जो चाहे बिना प्रयत्न आसानी से मिल जाता है। गरीबी, घर की कठिनाइयाँ, पारिवारिक शिष्टाचार, नैतिकता, सामाजिक मूल्य आदि से अनभिज्ञ नव नागरिक ज़िन्दगी को पैसों से आँकने लगे हैं। समाज में ऐय्याशी दिखाना, माँ-बाप के पैसों से लापरवाह ज़िन्दगी बिताना आदि की वजह से कभी-कभी माँ-बाप को अपने बच्चे खो जाते हैं। जैसे ईंधन में स्निग्धा और रोहित को अपना

बच्चा बेटू खो बैठा है। बच्चे माँ-बाप की लापरवाही का शिकार बनते जा रहे हैं।

"हाउस ऑफ कार्डस" में मृदुला-संजय का बेटा शिशिर भी ऐय्याशी ज़िन्दगी जीनेवाला है। मृदुला हमेशा उसे रोकने की कोशिश करती थी। लेकिन संजय हमेशा शिशिर का साथ देता था। दोनों मृदुला को नीचा दिखाने का या गलत स्थापित करने का प्रयास भी करते रहते हैं। *"Mridula, please don't start anything. He's only a kid and he wants to enjoy himself." "Mridula, times have changed. If you try to control him, he may leave the house and go live separately. He's our only child. You should try to learn and adjust with him."*[37] संजय पर कामयाबी एवं सफलता का गर्व है। लेकिन मृदुला हमेशा शिशिर को अच्छे से अच्छे परवरिश देने की सोच में हैं। उपन्यास के अंत में शिशिर अपनी माँ को सही समझकर खुद को बदल देता हुआ पापा से खुलकर बातें करता है और माँ का साथ भी देता है।

"पहर दोपहर" के जालिब और नीना के पुत्र, पिता के अवैध सम्बन्धों के गवाह बनकर ज़िन्दगी से विरक्त होकर घर छोड़कर चला जाता है। आज स्थिति यही है कि माँ-बाप की गलतियों को देखकर बच्चे खुद से नाराज़ होते हैं। वे घर-परिवार छोड़कर चले जाते हैं। "नाऊ दाट युअर रिच" में श्रुति के भाई अर्चित माँ-बाप के वेश-भूषा, ऐय्याशी से नफरत करके दीदी को घर की बिगडी स्थिति समझाता है। और कहता है- “हर अभिभावक बच्चों केलिए कुछ न कुछ करता है, इन लोगों ने तो ज़्यादा कुछ नहीं किया है। "छह" साल की आयू में आपको रसोई घर की ओर धकेल दिया ताकि माँ आराम से टी.वी देख सकें, पापा तो हमेशा शराब के पीछे पड़ा है लेकिन हमें एक बैग केलिए महीने इंतज़ार करना पड़ता है। मुझे तो कभी कभी मिलता है लेकिन आपको क्या? तो सिर्फ हमें खाना देने के कारण इन लोगों को हमपर काबू कर नहीं सकते।”[38]

"कुल ज़मा बीस" उपन्यास भी बच्चों की ज़िन्दगी में होते अकेलापन एवं तनाव का चित्रण करने में सफल हुआ है। रोज़ी

और अनिल की शादी ज़बरदस्ती से हुई थी। रोज़ी तो हमेशा पैसों से मनपसंद ज़िन्दगी चाहनेवाली थी। अतः उन्होंने दो बच्चे होने के बाद अनिल को किसी दुर्घटना के ज़रिए मार डाला और किसी ओर क्रैस्तव मर्द के साथ जीना शुरू कर दिया। इन सबका प्रभाव उनके बेटे अशुतोष पर पड़ा है। उसने कुछ साल बोर्डिंग स्कूल पर पढ़ाई की। तब वह मन में असुरक्षा, भय एवं तन्हाई से ग्रस्त था। लेकिन कभी अपनी माँ से मिलने या उनसे बात करने को पसंद नहीं करता था। माँ से दिन-ब-दिन दूर चला जाता था। दादी के पास जाकर जीना शुरू करने के बाद भी पैसों की चाह बढ़ता जा रहा था। वर्चुअल दुनिया की ओर आकर्षित आंशु सोलह वर्ष के होने पर ऐसे बहुत सारे ऑनलाइन रिलेशनशिप की ओर आकर्षित हुआ। बच्चों की ज़िन्दगी बिगड़ने में माँ-बाप की भूमिका है।

माँ के दिन-रात की व्यस्तता से ऊबी बेटी का चित्रण "द मदर आई नेवर नोस" के ज़रिए लेखिका ने किया है। शान्ता तो हर वक्त अपनी स्टॉक मार्केट एवं व्यावसायिक धंधे को लेकर व्यस्त रहती थी। घर आने पर भी हमेशा फोन पर लगी रहती है।

इस बात पर बेटी गौरी उनसे नाराज़ होकर कहा करती है- *"Amma, please take your business outside. Your unending telephone calls disturbs my study time."*[39] असल ज़िन्दगी में माँ-बाप की टेलिफोण एवं कंप्यूटर पर बीते समय का प्रभाव उनके बच्चों पर ज़रूर पड़ते हैं।

इस प्रकार अति-आधुनिक बच्चों के मानसिक बदलाव को आंकने का काम उपन्यासकारों ने किया है। चयनित हिंदी, अंग्रज़ी रचनाओं के बाल पात्रों की मानसिक बदलाव के मुख्य कारण पारिवारिक माहौल ही मालूम पड़ता है। वहाँ के तनावग्रस्त वातावरण, माँ-बाप की व्यस्त ज़िंदगी एवं इशारे पर ही सारी सुविधाएँ मिलने की स्थिति आदि ने बच्चों को मानसिक तौर पर दुर्बल बना दिया है। इसलिए छोटी सी समस्या आ जाने पर वे उन्हें सह नहीं पाते हैं। साथ-ही-साथ इंटरनेट, वर्चुअल दुनिया के प्रति लगाव आदि ने बच्चों को स्वार्थ एवं आत्म केन्द्रित बना दिया है। दोस्त तो बहुत होंगे लेकिन ऑनलाईन में। अपने घर के आस-पास के लोगों से कोई लेना देना, स्वानुभूति नहीं होगा।

बदलती परिदृश्य बच्चों को व्यक्तिवादी बना देते हैं न कि समाजवादी। इसलिए अपने देश के प्रति भी कोई प्रतिबद्धता नहीं है। आज के बच्चों के मन में प्यार की संकल्पना बिल्कुल बदल गयी है। प्यार तो उनके मतानुसार सिर्फ शारीरिक संबन्ध बनते जा रहा है एवं माँ-बाप के व्यावसायिक मनोभाव रिश्तों को भी व्यावसायीकृत बना दिया है। और बच्चों पर इसका प्रभाव पडा है।

4.3.1.8. स्त्री-जीवन में आए बदलाव

पुराने ज़माने में स्त्री घर के चार दीवारों के बीच में फँसकर, पुरुष वर्चस्व से त्रस्त ज़िन्दगी जीती थी। लेकिन आज स्थिति बदल गयी है। घर के सीमित दायरे से बाहर निकलकर मानसिक स्थिति को विस्तार भी मिला है। नारी पर किये जानेवाले अत्याचारों में कमी थीं, फिर भी उसके खिलाफ आवाज़ उठाने में सक्षम बनी हैं। उत्तर-आधुनिक, उत्तर-औद्योगिक दुनिया स्त्री शिक्षा एवं महिला सशक्तीकरण पर ज़ोर देती है। आर्थिक ढंग से आत्मनिर्भर होने के कारण वह पुरुष की परंपरागत दासता से

मुक्त हो रही है। सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में भी स्त्री आज अपनी भूमिका निभा रही है।

स्त्री सशक्तीकरण उपन्यास द्वारा ज़ारी है। हर उपन्यासकार स्त्री को आगे बढ़ाने केलिए सुझाव देते हैं। स्त्री को अपना अस्तित्व खुद बनाना होगा। इस कार्य में उपन्यास अपनी भूमिका निभा रहा है। साथ ही साथ रूढ़िग्रस्त पत्नी परिकल्पना, भारतीय नारी संकल्पना, स्त्री अस्तित्व एवं आत्मसम्मान संघर्ष, ससुराल में स्त्री, महिला सशक्तीकरण बनाम पुरुषवर्चस्ववाद, शिक्षित एवं कामकाजी महिला का प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व आदि का भी चित्रण हिंदी एवं अंग्रेज़ी उपन्यासों में मिलते हैं।

उषा प्रियंवदा कृत 'नदी' उपन्यास पूर्णतः स्त्री पर आधारित है। शहरीय अणुपरिवार की नारी की अवस्था, विस्थापित निरीह औरत का आत्मसंघर्ष, परंपरागत या रूढ़िग्रस्त गृस्थ नारी संकल्पना, आत्म सम्मान केलिए तड़पता नारी, भारतीय नारी आदि को लेकर उपन्यास लिखा गया है। 'आकाशगंगा' के माध्यम से

भारतीय-अमरिकी परिप्रेक्ष्य में स्त्री को किस प्रकार इस्तेमाल करते हैं इसका चित्रण किया गया है।

विदेशों में अणुपरिवार में रहनेवाली स्त्री को अकेले रहने की नियम है। उनके सामने बहुत बडा प्रश्नचिह्न उठता है कि आगे क्या किया जाए? कोई आत्म मित्र नहीं होगा, न कोई आस-पड़ोस से सम्बन्ध। गंगा को जब पति डॉ. गगनेन्द्र सिंहा अमरीका में अकेला छोड़कर चले जाने पर वह भी ऐसे ही स्थिति में पहूँच जाती है कि उसका भविष्य शून्य सा महसूस करती है। क्योंकि स्त्री को हमेशा पुरुषों के संरक्षण में जीवन बितानी पड़ती है। वह हमेशा घर के दूसरों केलिए काम करती रहती है। लेकिन जब भी खुद के आत्म सम्मान केलिए लड़ती तो घर और समाज में निषेधी बन जाती है।

परंपरागत संस्कृति को अपनाकर जीनेवाली भारतीय महिला वास्तव में पुरुष-सत्तात्मक समाज का एक प्रकार का शिकार है। उनके इशारे पर चलना ही उनका कर्तव्य बना जाता है। डॉ. एरिक, गंगा से पति के पास जाने की इशारा करके बताता है कि

- "तुम तो परंपरागत संस्कृति से आई हो - कब तक अपनी नाम की तरह इधर से उधर भटकती रहोगी।"[40] रूढ़ीग्रस्त संस्कृति के तहत जीनेवाली नारी पुरुष-वर्चस्ववादी समाज के अधीन ही है।

वर्तमान स्त्री की शैक्षिक बदलाव का भी ज़िक्र "नदी" के ज़रिए लेखिका ने किया है। जब गंगा की सास उनसे अपने गहने उनके पास रखने को कहती है उनकेलिए एक इंवेस्टमेंट बन जाए तब गंगा का जवाब इस प्रकार है कि-"अम्माँ जी, आप किस ज़माने की बात कर रही हैं? आज औरत का इंवेस्टमेंट वह स्वयं ही है, पी.एच.डी, एम.बी.ए-उसकी शिक्षा, आत्मनिर्भरता, उसकी बदलती हुई मानसिकता।"[41]

भारतीय नारी पहली शादी को लेकर हमेशा इतना भावुक रहती है ज़िन्दगी में आगे बढ़ाने की ताकत प्रदान करती है। इसलिए उसे दूसरी शादी की ज़रूरत नहीं है। सच कहें तो यह मानसिकता रूढ़िग्रस्त समाज स्त्रीयों पर भोपे एक साजिश ही है। हमारे भारतीय पौराणिक कथाओं में चित्रित पात्रों में भी स्त्री को विभिन्न भाव और रूपों में चित्रित किया है। सीता, पांचाली, कुंती

आदि। इन आदर्श भारतीय नारियों में किसका आदर्श अपना या जा सकता है यही एक बहुत बडा प्रश्न चिह्न बनकर औरत के सामने खड़ा है। सदियों से स्त्री पर थोपी आ रही ऐसी अमान्यताओं को तोड़ना लेखिका का उद्देश्य है- “दूसरी संस्कृतियाँ कम से कम आधुनिक सदी में यह भूमिका छोड़ चुकी हैं। मातृत्व, केलिए उस पुरुष से विवाह आवश्यक नहीं है- अविवाहित माँ बनने में अब किसी प्रकार की बुराई नहीं समझी जाती।”[42] इस प्रकार लेखिका ने स्त्री को रूढ़ियों एवं बन्धनों से मुक्त करवाने का प्रयास ‘नदी’ उपन्यास के आंकाशगंगा नामी चरित्र के ज़रिए किया है।

‘नदी’ उपन्यास के समान परिवेश में जयश्री मिश्रा द्वारा लिखा गया दूसरा एक उपन्यास "एन्शियंट प्रॉमीसस" जिसे में नारी अस्मिता एवं अस्तित्व को केरलीय परिदृश्य में बनाए रखने का कार्य किया है। दिल्लीवाली "जानकी" नामक लड़की को अठारह साल की उम्र में केरल के किसी बड़े बिसिनसवाले मारार परिवार में शादी कराती है। जानकी की माँ-बाप तो केरल प्रांत से

हैं, लेकिन दिल्ली में रहते हैं। इसलिए जानकी पर दिल्ली भाषा एवं संस्कार का प्रभाव है। मारार परिवार कभी उसे अपना नहीं समझा था बल्कि हमेशा उसे चिढ़ाने के साथ गुस्सा भी करते थे। उनकी भाषाई कमज़ोरी पर हमेशा व्यंग्य करते थे। उपन्यास में स्त्री का दमन व अपमान स्त्री के ही द्वारा करते नज़र आता है। मतलब मारार परिवार के स्त्री पात्रों द्वारा ही जानकी को नीचे दिखाने की कोशिश ज़ारी है। दिल्ली में रहने के बावजूद भी माँ के ज़रिए अपनाई गई केरलीय रीति-रिवाज़ के साथ ही वह ससुराल में रहती थी। पर वह कभी अपने ससुराल में आत्म सम्मान एवं अस्तित्व बना नहीं पायी। मानसिक असंतुलन से जन्मी बेटी रिया को भी उस घर में कोई स्थान नहीं थी। पति तो उनकी बातों पर कभी ध्यान नहीं दिया था, बल्कि हमेशा अपने व्यावसायिक मामलों के पीछे था। यहाँ ससुराल में से बिल्कुल अस्वीकृत और निरीह बनती जानकी की मानसिकता एवं विद्रोह उसे अपने प्रेमी अर्जुन की और आकर्षित कराती है। नारी मन की इस प्रकार की मानसिकता पर लेखिका विचार-विमर्श प्रस्तुत

करती है। पुरुष वर्चस्ववाद, स्त्रीदमन की मानसिकता, ससुराल में बहु बनाम बेटी, रूढ़ीग्रस्त समाज की स्त्री अस्तित्व, बदलती स्त्री मानसिकता, अपनापन केलिए तड़पती स्त्री मानसिकता, आत्मनिर्भर होने की चाह में स्त्री आदि पहलुओं को जानु की ज़िन्दगी के ज़रिए लेखिका ने चित्रित किया है। जानू, सब कुछ छोड़कर यह सोचकर अपनी बेटी को लेकर विदेश जाना चाहती थी कि *"Women could live ln their own and not be thought of as scarlet women or a member of some strange, unfortunate breed. Children with learning dissbilities were valued in the west. There would be no more awful staring, pitying, aren't I-glad-you're-not-me looks."*[43] अपनी निर्भावुक ससुरालवालों तथा अस्तित्वहीन वैवाहिक जीवन से वह मुक्ति चाहती थी। अंत में वह पति से तलाक मांगकर अपनी बच्ची को लेकर अर्जुन के साथ इंग्लेंड जाती है और बेवजह की परेशानियों तथा फिजूल समस्याओं से मुक्ति प्राप्त करती है। हिन्दी उपन्यास की अपेक्षा अंग्रेज़ी उपन्यासों में स्त्री केलिए आशाजनक वातावरण का सृजन अंग्रेजी रचनाकारों द्वारा किया है।

बाकी सारे उपन्यास में भी स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाया गया है। जैसे ‘दौड़’ उपन्यास में स्टेल्ला को लेकर स्त्री के रसोई से नव जीवन की ओर का बदलाव, तकनीकी दुनिया में स्त्री का हस्तक्षेप आदि पहलू चित्रित है। मैत्रेयी पुष्पा के ‘विज़न’ उपन्यास में शिक्षित नारी का अमीर ससुराल में किये जानेवाला दमन और शादी प्रथा के परंपरागत रूप से बदलती स्त्री मानसिकता (डॉ. आभा के ज़रिए) आदि को अंकित किया है। नेत्र चिकित्सा में कुशल होने के बावजूद भी शरण आईसेंटर में डॉ. नेहा की रिसप्शेनिस्ट बनने की मज़बूरी आदि आत्म सम्मान केलिए तड़प्ती स्त्री मानसिकता का, आदर्श भारतीय पत्नी संकल्पना का, समाज में स्त्री की निस्सहाय अवस्था का खुलावर्णन करते हुए स्त्रियों पर की जानेवाली अमान्यताओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

"ईंधन" उपन्यास में स्वयंप्रकाश बड़े घर की स्त्री जीवन, ऐय्याशी से जीवन बिताने के पश्चात् ज़िन्दगी की कटु सच्चाईयों से अवगत होने चलने पर बदलती स्त्री चिंताएँ, शादी प्रथा, स्त्री पर

थोपी गई व्यवस्थाएँ, ब्रांटड़ संस्कृति की ओर आकर्षित नारी, वातावरण के अनुसार बदलती स्त्री मानसिकता आदि के बारे में अंकित किया है।

"कुल ज़मा बीस" उपन्यास द्‍वारा रजनी गुप्ता समाज में अपने मनचाहे ज़िन्दगी जीनेवाली अति नूतन नारी का चित्रण किया है। महानगरीय परिवेश में अमीर परिवार की लड़कियाँ घर से प्यार न पाने के कारण युवाओं को अपनी खूबसूरती से फँसाकर मौजमस्ती करती हैं बाद में किसी साधारण युवा से जबरदस्त शादी करती है लेकिन मनचाही ज़िन्दगी बिताकर अपने पति के बनकर रहना नहीं चाहती है। ऐसी एक नारी रोज़ी की कहानी है 'कुल ज़मा बीस'। "रोज़ी" के ज़रिए उसके पति अनिल के परिवार की टूटन, बच्चों के लापरवाह जीवन आदि को कथानक में विस्तृत रूप से दिया है।

"पासवर्ड़" कमल कुमार कृत ईमेल शैली में लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास है। जो एक स्त्री की मानसिकता को लेकर ही आगे चलता है। इसमें स्त्री पर की जानेवाली अत्याचारों

पर, मॉल कल्चर एवं क्रेज़ी वर्ल्ड़ की स्त्री इस्तेमाल पर, विज्ञापन की दुनिया में स्त्री शरीर के खुलेपन पर, फैशन की दुनिया की ओर आकर्षित एवं फंसी नारी पर, वेश्या बनने/बनानेवाली स्त्री पर अपना विचार विमर्श प्रस्तुत किया है।

"अपवाद" उपन्यास के ज़रिए श्याम सखा श्याम आदर्शवती स्त्री का चित्रण किया है। इस उपन्यास के नारी पात्र है "यति" अपने आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों के सहारे जीवन बिताती है।

"17 रानड़े रोड़" रवीन्द्र कालिया द्वारा महानगरीय मुम्बई के शोभान्वित जगत की सच्चाइयों को खोलने हेतु लिखा गया उपन्यास है। महानगरीय अतृप्त जीवन में एक दूसरे को धोखा देते पति-पत्नी, शहरीय औरतों पर दुनिया का दृष्टिकोण, शोभान्वित जगत के नामी महिलाओं पर ग्रसित असुरक्षा भय एवं तन्हाई, मुम्बई की गलियों की स्त्रियों के कुंठित जीवन, स्त्री के लेस्बियन मनोभाव, स्त्री शोषण के विरोध आवाज़ उठाते नवा

युवागण आदि का चित्रण करके स्त्री जीवन का एक महागाथा उन्होंने पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में "हाऊस ऑफ कार्डस्" के स्त्री पात्र मृदुला के आदर्शात्मक ज़िन्दगी को लेकर स्त्री पर हावी होता हर बदलाव, उसकी समस्याएँ, व समाधान, शादी के पहले और बाद के स्त्री जीवन, गाँव से शहर की विस्थापित लड़कियों की समस्याएँ, पति द्वारा तिरस्कृत पत्नी की मानसिकता, स्त्री के सपने आदि का भी चित्रण है। "युअर ड्रीस आर माईन नौ" में रूपाली को लेकर स्त्री जीवन में एक क्रांतिकारी बदलाव लाने की कोशिश लेखक ने की है। इस उपन्यास राजनीति के खिलाफ आवाज़ उठाती लड़की, सत्ताधारियों द्वारा जबरदस्ती का शिकार बनी निरीह औरत की कहानी है। स्त्री जीवन में एक नया मोड़ प्रदान करने में प्रस्तुत उपन्यास काबिल है। "कैन लव हैपन ट्वाईस" में अमीर घर की लड़कियों की आत्मकेंद्रित ज़िन्दगी, संयुक्तपरिवार के नियंत्रणों से मुक्ति की चाह, स्वतंत्रता की चाह करनेवाली स्त्री आदि का चित्रण "सिमार" के ज़रिए लेखक ने

किया है। "नाऊ दाट युआर रिच" में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में चलती स्त्री शोषण एवं तकनीकीकृत बदलती स्त्री मानसिकता, अस्तित्वहीन बनती स्त्री, कामयाबी केलिए अपने शरीर को बेचती स्त्री मानसिकता, शोषण के विरोध खड़ी युवा महिलाएँ, परिवारवालों द्वारा पैसे के वास्ते इस्तेमाल करती बेटियाँ आदि का चित्रण करके प्रतिरोध करती उत्तर-औद्योगिक स्त्री के रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है। परिवार में ज़ारी बेटा-बेटी भेदभाव का खुली चित्रण 'श्रुति' के पारिवारिक समस्याओं में निहित है। "द मदर आई नेवर क्नोस" में सुधा मूर्ति विभिन्न परिवेश की नारी पात्रों को चित्रित करने पर सफल हुई है। इस उपन्यास के दो भाग की कहानियों में बाँटता है। "वेंकटेश" की शांता और पुत्री गौरी विभिन्न सोच-विचार वाली औरत के प्रतीक बनकर आ रही है। शांता तो व्यावसायिक सोचवाली है लेकिन गौरी पारिवारिक शिष्टाचार एवं नैतिकता को महत्व देनेवाली है। दोनों विचारवालों के बीच की टकराहट उपन्यास में हर कहीं नज़र आतीे हैं। स्त्री सशक्तीकरण, नारी शिक्षा, गाँव के नारी लोगों का

स्वस्थ एवं प्यार भरी ज़िन्दगी को भी लेखिका ने अपने उपन्यास में ज़ोर दिया गया है। "द फोल्डेड एर्थ" अनुराधा रॉय द्‌वारा समाज में अकेली पड़ी औरत की आत्मसंघर्ष को चित्रित करके लिखा गया उपन्यास है। नायिका प्रधान उपन्यास होने के कारण स्त्री जीवन का बदलाव, शहर से ग्रामीण परिवेश में बदलते अकेली स्त्री जीवन, आत्म-सम्मान एवं अस्तित्व के संरक्षण केलिए कठिन परिश्रम करनेवाली महिला आदि को लेखिका अपने उपन्यास में विषय बनाया है।

इस प्रकार दोनों भाषाई उपन्यासों में स्त्री जीवन को लेकर अपना विचार विमर्श उपन्यासकार लगभग एक ही जैसे प्रस्तुत किया है। वर्तमान परिवेश की कामकाजी नारी पर आए बदलाव के साथ-साथ आज भी ज़ारी स्त्री शोषण की खुलासा करने की कोशिश दोनों हिस्सों में देख सकते हैं।

4.3.1.9. वर्तमान परिवेश में बुज़ुर्ग जीवन

पुरानी पीढ़ी एवं नई पीढ़ी के बीच के बढ़ते सांस्कृतिक अंतराल बुज़ुर्ग जीवन को भी असमंजस्य में डाल देता है। वर्तमान

समय में युवालोगों को बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना कम होती जा रही हैं। पश्चिमी संस्कृति एवं नई शिक्षा दीक्षा युवा लोगों को व्यावसायिक एवं बाज़ारीकृत कर दी हैं। भूमण्ड़लीय समाज में पैसा ही सबका आधार है और युवा लोग पैसा करने पीछे पड़े हैं। कामयाबी के पीछे भग दौड करनेवाली आधुनिक पीढ़ी, उन माँ-बाप और बुजुर्गों को अपनी ज़िन्दगी के संध्या समय में अंधकार में डाल देती है, जिन्होंने इस पीढ़ी को काबिलियत हैसियत और जीवन सपना देखना सिखाया था।

4.3.1.9.1. हिन्दी उपन्यासों में बुजुर्ग जीवन

"दौड़" उपन्यास में बूढ़े लोगों की ज़िन्दगी की दर्दनाक परिस्थिति को रेखा, राकेश, दोनों बेटा पवन और सघन के माध्यम से लेखिका चित्रित करती है। 'पवन' पहले ही अहमदाबाद में काम के वास्ते चला जाता है। अपने साथ कंप्यूटर के पीछे पड़े भाई सघन को भी ले जाने की जिक्र किया तो माँ का कथन इस प्रकार है कि- "इसको भी ले जाओगे तो हम दोनों बिल्कुल अकेले रह जाएँगे। वैसे ही यह सीनियर सिटिज़न कॉलनी बनती जा रही

है। हर घर में समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यह रह गया है।"[44] यह कथन खुद बुजुर्ग जीवन का संपूर्ण सारांश है। बच्चे पढ़ाई के बाद माँ-बाप को छोड़कर कहीं दूर चले जाते हैं। उनके अभिभावकों की मृत्यु होने पर भी घर आने की फुरसत उन्हें नहीं मिलते हैं। ऐसे वातावरण में अकेलापन, असुरक्षा एवं बेसहारा बनकर जीने की स्थिति को नियति समझकर इनको आगे बढ़ना पड़ता है।

"नदी" उपन्यास में ल्यूकीमिया से त्रस्त 'प्रवीण बहन' नामक पात्र के परिचरणे केलिए सिर्फ पति मात्र उस परिवार में रह गया है। बेटे तो अपने कामकाज में व्यस्त रहते हैं। इसपर 'प्रवीण बहन' का कथन निराशानजक है कि - "उसका अपना घर है, अपनी गृहस्थी है। उसे उन पुराने लोगों या चीज़ों से कोई मतलब नहीं है।"[45] माँ-बाप को यशवंत से कोई शिकायत नहीं है और उसे तकलीफ़ देना भी नहीं चाहता है। जो खुद कर सकते हैं करके आगे बढ़ते हैं। माँ-बाप के फिक्र किए बिना खुद की भलाई केलिए भागनेवाले युवागण कभी नहीं सोचते हैं कि भविष्य ने हमारे लिए

क्या संजोया है। "ईंधन" उपन्यास में स्वयं प्रकाश बुजुर्ग जीवन के एक भिन्न आयाम को प्रस्तुत किया है। जन्म से ही माँ की मृत्यु होने के कारण 'पापा' और 'स्निग्धा' के बीच आत्म संबंध व ममता कम पडा है। पत्नी की मृत्यु और बेटी का जन्म एक ही दिन में हुआ था। यहाँ अतः पिता द्वारा उपेक्षा की भावना स्वाभाविक है। बाप-बेटी के बीच का रिश्ता तो यहाँ निर्जीव सा नज़र आता है। 'रोहित' से मनपसंद शादी करके चले जाने के बाद 'स्निग्धा' बहुत कम ही पापा से मिलने आती है। दोनों एक दूसरे को मिस करते थे लेकिन कभी प्रकट करना नहीं चाहते थे। बूढ़ापे में पापा किसी ओर के साथ रहने लगता है ताकि अकेलापन से मुक्त हो जाएँ, पर कभी भी रोहित और स्निग्धा के साथ जाकर नहीं रहते हैं। चाहे अकेले हो, बेसहारा हो, आत्मसम्मान पर अडिक बुजुर्गों के जीवन का चित्रण स्निग्धा के पापा के ज़रिए लेखक ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

"कुल ज़मा बीस" में तीन पीढ़ियों का चित्रण है, दादी पुरानी पीढ़ी, अनिल-रोज़ी मध्यवर्ती पीढ़ी और आशु नई पीढ़ी का

प्रतिनिधित्व करते हैं। माँ रोज़ी के लापरवाह जीवन से चिंतित दादी, अपने पोते आंशु को अपने पास ले आती है। आशु अपनी दादी से बहुत प्यार करता है। उनके प्रति आशु के मन में लगाव और सम्मान भी है। लेकिन उनके अनुसार दादी तो आज के ज़माने से आउट डेटेड़ हो चुका है। इसके बारे में आंशु का कथन इस प्रकार है- "वह तो ये मानकर चलता था कि ये तो आज के ज़माने के हिसाब से आउट डेटेड़ हो चुकी है। इनके बूढ़े दिमाग में आज के फास्ट कल्चर में दिनोंदिन बदलती-बढ़ती नयी-नयी चीजें भला कैसे घुसेंगी? वे तो बस हर चीज़ में पैसा गिनाने बैठ जाएँगी या फिर उम्र का हवाला देने लगेंगी।"[46] उन्हें दादी की नहीं पैसे की ज़्यादा ज़रूरत है और इस रंग से दादी को इतना परेशान करता है। लेकिन पुरातन पीढ़ी के लोगों को युवा लोगों की बात समझ में आना बहु मुश्किल ही है। पीढ़ितर अन्तराल यहाँ भी पूर्णरूप से उजागर किया गया है। "17 रानड़े रोड़" में 'सुप्रिया' की गली की झोंपड़ी के ज़रिए उनके वृद्ध माँ-बाप की कठिनाइयों को लेखक ने समाविष्ट किया है। एक कमरेवाली झोंपडी में माँ-बाप,

बेटा-बेटी, बहू के साथ जीवन बिताते हैं। जटिलताग्रस्त रिश्ते-नाते के कारण, संत्रस्त ये लोग महानगरीय गरीब बुज़ुर्ग ज़िन्दगी का प्रतीक हैं। इसमें बेटा-बेटी-बहू के बीच की झगड़ा से व्याकुल एवं निस्सहाय माँ-बाप का चित्रण हैं। "पहर दोपहर" के हैदर साहब की ज़िन्दगी, मुम्बई के शोभान्वित जगत के बुज़ुर्ग जीवन की ओर इशारा करती है। फ्लिम लेखक बनने के वास्ते हैदर साहब मुंबई आया था। लेकिन अपने तीनों फिल्म के पिट जाने के कारण उन्हें फिल्मी क्षेत्र से धखेल दिया गया। अपनी असफल ज़िन्दगी और गैरकामयाबी किस्मत को लेकर हैदर साहब अंत तक हर रात को 'जालिब' के छत का शरण लेता है। मुम्बई जैसे महानगर में कामयाब न बने तो कहीं किसी का भी नहीं रह जाएगा। सिर्फ उपेक्षा एवं व्यंग्य ही सर्वत्र मिलेगा। जालिब के छत के नीचे सहारा लेने के कारण जालिब के अनैतिक प्रवृत्तियों एवं अवैध सम्बन्धों को नज़र अन्दाज़ करना उनकी मज़बूरी बन जाती है। इसप्रकार महानगरों में निस्सहाय बनकर जीना ही आज के ज़माने में बुज़ुर्ग लोगों की नियति बन जाती है।

4.3.1.9.2. अंग्रेज़ी उपन्यास में बुजुर्ग जीवन

उत्तर-आधुनिकीकरण एवं आत्मकेंद्रित मानसिकता सामाजिकता, परस्पर संबन्ध एवं परंपरागत संस्कृति को आमूल-चूल बदल डाली है। बदलते परिवेश में बुजुर्ग लोगों का आदर व सम्मान नहीं के बराबर रह गया है। परिवर्तित सामाजिक दौर में अकेले पड़े वृद्ध लोगों के जीवन का चित्रण भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में हम देख सकते हैं। सुधा मूर्ति कृत "हाऊस ऑफ कार्डस्" एवं "द मदर आई नेवर क्नोस" में वृद्ध समस्या एवं इसपर आशावादी विचारधारा दोनों का जिक्र है। पहले उपन्यास में 'भीमण्णा' की पड़ोसिन "चम्पा बाई कामीतर" एक सत्तर वर्षीय औरत है। जिनके पति की मृत्यु तो बहुत पहले हो चुकी थी। उन के बच्चे नहीं है। एक बच्चे को गोद तो लिया है पर वह पढ़-लिखकर विदेश चला जाता है और उसके बाद में मुम्बई में रहने लगता है। वह चम्पा बाई को बार-बार मुम्बई बुलाता है। पर वह अपना गाँव अलादहल्ली छोड़कर कहीं जाने को तैयार नहीं थी। और कहा करती थी कि- "चन्दू, अलादहल्ली मेरेलिए स्वर्ग के

बराबर है। यहाँ के लोगों के साथ आराम से रहती हूँ मैं। भीमण्णा भी मेरे पुत्र जैसा है। मैं इस उम्र में उस भीड़ भरी महानगर में जी नहीं सकती।"[47] वह सच कहे तो अकेली है पर कभी भी अपने बेटे को दोषी नहीं मानती। वह हर किसी को अपनी-अपनी मान्यता प्रदान करती हुई नज़र आती है। उपन्यास के अगले पात्र भीमण्णा और रुक्कुम्मा भी दोनों बच्चों की शादी के बाद अकेले रह जाते हैं। यह तो आज की नियति है कि ज़िन्दगी के आखिरी पड़ाव में इन लोगों का हमेशा उदास भरी अकेली ज़िन्दगी बितानी हैं। "द मदर आई नेवर क्नोस" उपन्यास में भागम्मा, आनंद पटेल, विजयाबाई आदि पात्र विभिन्न परिवेश के बुजुर्ग लोगों का प्रतीक है। भागम्मा पति की मृत्यु की वजह से छोटी उम्र में विधवा बनकर अपने बच्चे को लेकर 'हब्ली' चली आयी और कठिन परिश्रम करके आत्म-सम्मान के साथ जीवन बितानेवाली भारतीय बुजुर्ग नारी का प्रतीक है। वह बिना किसी शिकायत के और बिना किसी मदद के अपनी गरीबी के साथ मेहनत करती हुई जीवन बिताती है। इस प्रकार बुदुर्ग लोगों के लिए आत्म-

निर्भर, निड़र होकर जीवन बिताने की प्रेरणा बनकर भागम्मा पाठकों के सामने आ रही है। आनंद पटेल और विजया बाई भी घर में अपनी माँ के साथ रहते हैं। उनके दोनों बच्चे अपनी-अपनी ज़िन्दगी बसाने पलायन किए हैं। फिर भी माँ-बाप एक दूसरे के सहारे बनकर खुशी से जीवन बिता रहे हैं।

"It wasn't that they didn't have problems their son was away for work in a medicare job, they had a bedriedden old mother to take care of and they had to find a groom for Sunita. Since the Patels didn't have any inherited or an uncesbcar property, they had taken a big loan to constuct the house they were now living on . . . ."[48] इतनी समस्याएँ होते हुए भी वे वर्तमान केलिए जीते हैं। भविष्य की जटिलता पर कभी सोच-विचार नहीं करते हैं। "ऐनशियंट प्राँमिसस" में जयश्रि मिश्र ने ज़टिल भारतीय रूढ़ीग्रस्त संस्कृति से तड़पती दोनों वृद्ध विधवाओं का चित्रण 'जानु की माँ' एवं 'दादी माँ' के द्वारा किया है। ऐसा कि बेटी की नापसंद ज़िन्दगी को लेकर चिंतित लेकिन बेसहारे माँ को बहुत सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देख सकते हैं। *"Ma and Ammumma still lived in the old house from where my*

wedding entourage had set out so hopefully. Somany years ago Widows both, life had more or less come to a halt for them. . . . . both my grandmother and mother had taken on widowhood with an enthusiasm born of practical good sense.''[49] पति की मृत्यु के बाद सफ़ेद साड़ी पहनकर विधवा बनकर जीना केरल की एक रूढ़ी है। वहाँः विधवाओं के शुभ अवसरों पर जाना अपशकुन माना जाता है। सबसे वंचित और त्यागकर जीना उनकी नियति बन गई है। "द फाल्डड़ एर्थ" में भी समान परिवेश के बुजुर्ग जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के पात्र 'आमा' दो बच्चेवाली होते हुए भी बेसहारा ग्रामीण जीवन जी रही है। अपने शराबी बच्चों को घर से निकालकर अपनी पोती चा डिग्री की देखबाल करनेवाली निड़र निरीह बुजुर्ग औरत है। उनको यह पता है कि उन्हें किसी दूसरे की सहायता कभी नहीं मिलेगी इसलिए वे निड़र एवं आत्मनिर्भर बन जाती हैं। आमा भी ताकतवाली आत्मनिर्भर औरत है। 'दीवान साहब' इस उपन्यास के अन्य बुजुर्ग व्यक्ति है जो बिल्कुल अलग परिवेश में चित्रित एक उच्च कुल जात व्यक्ति के रूप में आते हैं। जो 'जिम कोर्बेट' की

जीवनी लेखन करके ‘शनीखत’ में स्वस्थ जीवन बिताते हैं। उनके भतीजा "वीर" आकर उनको खूब शराब एवं सिगरेट खरीद देते हैं ताकि उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाए। क्योंकि दीवान साहब केलिए ओर कोई रिश्ते-नाते नहीं है तो मरने के बाद वीर को ही सारी संपत्ति मिल जाए। सब कुछ समझकर भी दीवान साहब उसे झेल लेता है खुद की ज़िन्दगी एवं स्वास्थ्य बिगाड़ने देता है। अपने स्वार्थ लाभ केलिए बुजुर्गों को इस्तेमाल करनेवाले युवागण का चित्र इसमें दिया गया है।

इस प्रकार हिंदी और भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों का विचार-विमर्श एवं बुजुर्ग जीवन को लेकर अध्ययन करने पर यह समझ में अता है कि हिंदी उपन्यासों में अधिकतर जटिल एवं संत्रस्त बुजुर्ग जीवन का चित्रण हैं। जब कि भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में अकेलापन के साथ बेसहारा ज़िन्दगी बितानेवाले लेकिन आशावादी दृष्टि से जीवन बिताते नज़र आते हैं। इस प्रकार रूढ़ी-मुक्त बन जाना एवं आशावादी बन जाना, अकेलापन को स्वस्थ एवं सुकून समझना भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास की सकारात्मक पक्ष है।

क्योंकि पश्चिम में किसी के बीच कोई भावात्मक लगाव नहीं है। हर कोई स्वतंत्र है। बुज़ुर्ग भी बिना किसी परेशानी से खुद काम करके जीते हैं।

4.3.1.10. विस्थापित मानव जीवन

वर्तमान समय में सारी दुनिया "वैश्विक गाँव" रूपी अवधारणा को अपनाने की मुकाम में है। "वैश्विक गाँव" की संकल्पना में विस्थापन की कोई गुंजाईश नहीं है। क्योंकि देश, प्रदेश, विदेश सीमाओं को तोड़ मरोड़कर पूरा विश्व एक गाँव बनता जा रहा है। भूमण्ड़लीकृत यथार्थ सामने आ रहे हैं। लेकिन आज भी विस्थापन की समस्याएँ मानव जीवन को उथल-पुथल कर रही है। इसका मूल कारण जीविका की जद्दोजहद ही है। एक अच्छी सी अच्छी जीवन शैली एवं समाज में उच्च हैसियत की महत्वांकांक्षा से ही आज के मानव-अधिकांश युवा लोग-कहीं न कहीं महानगरों की ओर विस्थापित होते नज़र आते हैं। "21 वीं

सदी का कथासाहित्य विविध विमर्श" पुस्तक में एक निबन्ध के जरिए डॉ. अनु पाण्ड़ेय बताती है कि- “अपनी मातृभूमि से दूर जा बसे लोगों में से कुछ मनचाही तरक्की हासिल कर अपने सपनों को पूरा करने में सफल होते हैं तो कुछ असफल। उनके अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव होते हैं। तरक्की की इस होड़ में व्यक्ति मात्र अपने मूल स्थान से पलायित नहीं होता बल्कि कई बार उसके अपने विचारों, मान्यताओं, सभ्यता और संस्कृति आदि में भी काफी बदलाव आ जाते हैं। इसे बौद्धिक पलायन कहना सही होगा।”[50] विस्थापित मानव जीवन के आधार पर कई उपन्यास आज विद्यमान है। विस्थापन तो कभी अपने गाँव से होगा, या अपने देश से। गाँव छोड़कर शहर की ओर विस्थापित युवा लोगों की ज़िन्दगी, अपने घर, परिवार एवं देश से विस्थापित अकेली औरत की ज़िन्दगी, घर से शादी करके विस्थापित नारी जीवन, महानगर की शोभान्वित जगत की आकर्षण से गाँव छोड़कर चले आनेवाली महत्वाकाँक्षी नव पीढ़ी की ज़िन्दगी आदि हिन्दी उपन्यासों में पायी जाती है। जबकि भारतीय अंग्रेज़ी

उपन्यासों में शिक्षा प्राप्ति के दौरान घर से विस्थापित लड़कियों के जीवन, गाँव से शहर की ओर शादी करके मज़बूरी से पलायन करनेवाली नारी, वैवाहिक जीवन, पुरानी यादों को मिहाने हेतु शहर छोड़कर दूर स्थित किसी अनजाने गाव में बसनेवाली नारी की विस्थापन, नौकरी खातिर विदेश गए युवालोगों की ज़िन्दगी आदि विस्थापन की समस्याओं को लेकर आगे बढ़ते हैं।

हिंदी उपन्यासों के विस्थापित मानव जीवन "दौड़" उपन्यास के पात्र पवन से प्रारंभ करते हैं। अपने एं.बी.ए. पूरा करके प्लेसमेंट के ज़रिए नौकरी मिल जाने पर वह इलाहाबाद के अपने घर परिवार छोड़कर अहमदाबाद जाता है। प्रारंभिक दिनों में उनकी चिंताएँ अपने घरवालों के इर्द-गिर्द घूमती फिरती है। लेकिन कुछ ही दिनों में वह महानगरीय जीवन शैली अपना लेता है। फिर अपने गाँव के प्रति उनकी मानसिकता बदल जाती है। पिता द्वारा अपने गाँव में नौकरी ढूँढ़ने की बात करने पर पवन का जवाब इस प्रकार था कि- “यहाँ मेरे लायक सर्विस कहाँ? यह तो बेरोज़गारों का शहर है। ज़्यादा से ज़्यादा नूरानी तेल की

मार्केटिंग मिल जाएगी।"[51] साथ ही साथ अपनी मिट्ठी के पानी से घृणा करने लगा लगता है और अपने ही देश में परदेशी बन जाता है। यह विस्थापन की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि युवालोग जब आजीविका केलिए किसी महानगर या विदेश की ओर पलायन करते तो जहाँ तन्ख्वाह मिलता है वही अपना देश मानकर जीवन बिताने लगते हैं। खान-पान की संस्कृति, वेश-भूषा सब कुछ नए परिवेश के अनुसार वे बदल देते हैं। पुरानेपन की ओर मुड़कर देखना भी उनकेलिए नापसंद की बात बन जाती हैं। पवन भी अहमदाबाद से राजकोट, वहाँ से चेन्नाई और फिर विदेश जाकर आजीविका चलाने की अंधी दौड़ में आगे बढ़ रहा है। दूसरा बेटा सघन भी घर से विस्थापित होकर तायवान चला जाता है। वहाँ के प्रांतीय राजनीति में फंसकर वही जीवन बिताने में मज़बूर हो जाता है। वापस भारत आना है तो तीस लाख का ज़मा आदा करना पड़ेगा। इसलिए तायवान में रहने को मज़बूरी बन गया है। "17 रानड़े रोड़" में अपने गाँव छोड़कर मुम्बई राजधानी पर पहूँचे युवा 'चन्दन' को लेकर विस्थापित युवाओं पर किए जानेवाले

शोषण का चित्रण किया है। फिल्मी हीरो बनने की चाह में एक लाख रूपए लेकर घर एवं गाँव छोड़कर जानेवाले चन्दन शोषण का शिकार बनता है। अपने को कामयाब न पाकर विषादी और नाराज़गी के साथ वह गलि-गलियों में घूमता फिरता है। मुम्बई जगत से एक लाख वसूल किये बिना किसी को नहीं छोडूँगा कह-कहकर वह पागल सा दिन-रात-गुज़ार लेता है। "नदी" उपन्यास पूर्णरूप से विस्थापित प्रवासी भारतीय नारी की कहानी को लेकर आगे बढ़ता है। इसमें विस्थापित अकेली पड़ी असहाय औरत की चिंताएँ एवं भारतीय स्त्री की पश्चिमीकृत दुनिया की समस्याएँ, पति द्वारा विदेश में उपेक्षित स्त्री को आत्म-सम्मान एवं अस्तित्व संघर्ष, आजीविका केलिए दूसरे मर्दों से सम्बन्ध बनाने में मज़बूर एवं अपराध बोध से त्रस्त नारी मन आदि का चित्रण हैं।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास में चित्रित विस्थापित मानव जीवन की संदर्भ में "एशियंट प्रांमीसस" की जानकी आगे आती है। बचपन में केरल से दिल्ली की ओर विस्थापित जानकी

अठारह साल की उम्र तक दिल्ली में जीवन बिताती है। बाप के एयर फॉर्स के नौकरी के वास्ते ही वे लोग दिल्ली की ओर पालायन किए हैं। दिल्लीवाले बनकर दिल्ली के व्यस्त सभ्यता को अपनाकर जीनेवाली जानू को अर्जुन से प्यार करने के अपराध में तुरंत किसी ओर से शादी कराई जाती है, वह भी केरल के मारार परिवार के लड़के के साथ। अठारह साल की उम्र में माँ-बाप के साथ दिल्ली छोड़कर केरल की ओर विस्थापित जानू की भषागत समस्याएँ, उनपर हमेशा व्यंग्य एवं अपमान करते ससुराल लोगों के अनचाहे व्यवहार, पति द्वारा विमुख मनोभाव, भीड़ में अकेली बनती रूढ़ीग्रस्त स्त्री विस्थापन आदि को लेखिका ने यहाँ रंग रूप प्रदान किया है। नौ साल की तनावग्रस्त दाम्पत्य जीवन से तलाक लेकर अर्जुन के पास इंग्लेंट जानेवाली जानकी के ज़रिए स्त्री को भी अपना अस्तित्व और स्वतंत्र विचारधारा के साथ मनचाहे ज़िन्दगी जीने के अधिकार पर लेखिका बल देती हैं। घर से विस्थापित नारी चाहे ससुराल में किसी प्रकार का भी व्यवहार करें पराया तो ही बनी रहेगी। *"But there was at least a kind of rational to the nights that my days in the Marar*

household still seemed completely devoid of. It was getting clearer that it was the Marars I had married, not Suresh. He had not been unkind but had not seemed to want to spend much time alone with me."[52]

"*I needed to fit in as fast as possible. Not fitting in well enough was that gave the Maraars their licence to laugh at me . . . . but in a few short monthes I could barely recognize the girl who looked back at me in the mirror, who was she? Mrs. Suresh, Pretty and wearing nice saries and . . . nothing else was important anyway. A Maraar's Daughter-in-law? Not quite, looks like one on the outside . . .*"[53] ससुराल की ओर विस्थापित लड़कियों के अस्तित्व एवं आत्मसम्मान संघर्ष तथा हताश ज़िन्दगी को चित्रण करने में लेखिका पूर्ण सफलता पायी हैं। "नाऊ दाट यु आर रिच" में दुर्जोय दत्ता एवं मानवी अहूजा दोनों लेखकों ने नौकरी एवं आर्थिक स्तर बहतर बनाने केलिए घर-परिवार-गाँव छोड़कर महानगरों की ओर पलायित युवालोगों का चित्रण किया है। पैसों की अपर्याप्तता से त्रस्त युवा लोग अमीर बनने केलिए कठिन परिश्रम करके पसंदीदार बहुराष्ट्रीय कंपनी में प्लेसमेंट पाकर गाँव छोड़कर चले जाते हैं। हालाँकि ये युवा लोग

विभिन्न वातावरण से आते हैं फिर भी आशावादी एवं महत्वाकांक्षी रूप देकर उपन्यास में प्रस्तुत किया है। लेकिन घर परिवार छोड़कर चले आए नवयुवकों को बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एवं महानगरीय सभ्यता इतना इस्तेमाल कर रहा है कि उस जाल से मुक्ति पाना उनकेलिए नामुमकिन है। दिन-रात कठिन मेहनत करना पड़ रहा है। नवसीखुओं को चूस-चूसकर काम करवाते हैं। कामयाबी की महत्वाकाँक्षा में ये लोग सब कुछ सहन करके और काम करते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उनमें महत्वाकाँक्षी लोग ज़रूर कामयाब होते हैं पर कुछ लोगों को तो निराश भी होना पड़ता है। लेकिन इस क्षेत्र में काम करनेवाले लोग भविष्य में ज़रूर निर्भावुक, भौतिकवादी एवं पैसों की लालच बन जाते हैं। *"Silver man wasn't going to pay them for doing a nine to five cushy job. They wanted the last cell of their bodies to work for them till it died and decayed. The only good thing left about the job was the pay cheque, now that they know they would be working theirassess of for it."*[54] कामयाबी की लालच में घर से पालायित अपने को गलत इस्तेमाल करनेवाली लड़कियों का भी जिक्र इस उपन्यास में हैं। इंटन्शिप में जीत एवं सिलवरमैन में स्थाई बनने

केलिए चाँदनी एवं किरण नामी नए कर्मचारियाँ वहाँ के उच्च अधिकारी "तापार" से यौन सम्बन्ध करती हैं ताकि वे उन्हें अपनी नौकरी से कभी न निकाल दिया जाए। इस प्रकार करने की मज़बूर वातावरण पैदा करनेवाले उच्च अधिकारियों के प्रति विद्रोही मनोभाव भी "सौरव" नामक युवा सहभागी के ज़रिए प्रस्तुत किया है।

"द फॉलडेड़ एर्थ" उपन्यास के ज़रिए अनुराधा ने पति की यादों से मुक्ति की चाह में खुद शहर छोड़कर कहीं दूर एक पहाड़ी के नीचे के गाँव की ओर पलायन करनेवाली अकेली औरत माया का चित्रण किया है। शहरीय बनाम गाँव के परिवेशों के बदलाव, शैक्षिक पिछड़ापन की वजह से चलते मानसिक तनाव, असुरक्षा मनोभाव, राजनैतिक अत्याचारों का सामना, उचित आजीविका की ज़रूरी, अकेली औरत की समस्याएँ, दूसरा प्रेम आदि के ज़रिए विस्थापित माया के जीवन को लेखिका ने जीवंत बना दिया है। माया अपने पति माईकिल की मृत्यु एवं बाद के अकेलापन से निराश्रित होकर हिमालय के नीचे की प्रांत रानीखत चली आती

है। अपनी यादों को मिटाने केलिए कहती है- *I was going to be two thousand kilometers from anything I knew, but that was just numbers in truth the distance were beyond meassurment.''*[55] उनपर नौकरी के क्षेत्र में हँसी मसाल की बातें व्यंग्यात्मक वार्तालाप, समाज में उनपर चलती सोच-विचार आदि के सहारे भी उस छोटा सा गाँव को वह शीघ्र ही अपना बना देती है। वहाँ के वातावरण से, लोगों से मिलजुलकर अतीत को भूलने का प्रयास कर रही है। लेकिन अकेली औरत की बेसहारा जीवन को इस्तेमाल करके धोखा देकर चले जानेवाले रहस्यमय प्रेमी के रूप में 'वीर' का प्रवेश भी "माया" की ज़िन्दगी की एक अप्रत्याशित घटना एवं झंझट बन जाती हैं।

"कैन लव हैपन ट्वाईस" में खोया हुआ इश्क की दर्द से मुक्ति की चाह में बेल्जियम की ओर विस्थापित रविन के खुद की कहानी है। एक छोटी सी अवधि केलिए वह बेल्जियम जाता है लेकिन वहाँ उन्हें सिमार के रूप में दूसरा जीवन मिला है। बहुत सारे देश-विदेश में पर्यटन करने के कारण रविन केलिए बेल्जियम की दूरी व संस्कृति कठिन नहीं था। फिर भी खान-पान

संस्कृति, प्रवासी लोगों की अकेलापन आदि को लेखक कहीं न कहीं चित्रित किया है। बेल्जियम जैसे महानगरों में भारत के जैसे भोजन नहीं है। कभी कभी यहाँ के स्नाक्स वहाँ के नास्ता बन जाते हैं। इसके साथ समायोजित करने के बचाव और कोई रास्ता नहीं है। जब कोई विदेश जाते हैं तो उनकी सबसे बड़ी समस्या यह होगी कि अकेलापन। विभिन्न भाषा-भाषी, संस्कार रूपी लोगों के बीच अपनापन तो बिल्कुल नहीं होगा। *"My apartment building didn't have a single Indian. Most of the people who lived in the building spoke either French or Dutch. English to them was a third language. More of a sign language, in fact . . . I lived alone. I cooked alone . . . . and I ate alone. There wasn't anyone to talk to because of the language barrier."*[56]

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में विस्थापित जीवन को सिर्फ देश-विदेश के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं बल्कि हिंदी उपन्यासों के जैसे घर, परिवार, गाँव परिप्रेक्ष्य में भी चित्रित किया गया है। दोनों भाषी उपन्यासों में विस्थापन एवं प्रवासी समस्याओं को लेकर अपने खट्टे-मीठे अनुभव को पात्रों के ज़रिए कथानक में रचते हैं।

कभी किसी को विस्थापित देश परिवेश, संस्कृति पसंद नहीं होगा तो कभी विस्थापित परिवेश एवं संस्कृति अपनाकर वहाँ का बन जाते हैं। यदि विस्थापित होकर भी कामयाबी हासिल कर सकते हैं तो विस्थापन की समस्या से उत्पन्न दर्द को भूलकर आगे बढ़ सकेंगे। जब कामयाब नहीं होते हैं तो अपने देश, संस्कृति और पुरानी यादें हमें सताते हुए पीछे आ जाती है।

4.3.1.11. महानगरीय शोभान्वित जगत का मानव जीवन

वर्तमान उपन्यास शोभान्वित जगत के वास्तविक जन जीवन को एक नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास है। वास्तव में प्रस्तुत विषय को लेकर बहुत सारी चर्चाएँ और विमर्श आज के सामाजिक माध्यमों में ज़ारी है फिर भी सच्चाइयों की गहराइयों को छूने का प्रयास एवं हिम्मत उपन्यास साहित्य में ही देख सकते हैं। शोभान्वित जगत की चकाचौंध एवं कटु यथार्थ, पेज़ त्री कल्चर (Page 3 Culture - Industry critics often feel that India's page 3 culture reflects two levels of un aspirational society. One comprises individuals who consider it a serious reflection of lifestyle issues and the second who want to be seen

become famous by featuring on page 3 tabloid newspapars), स्त्री दमन एवं इस्तेमाल, ब्राँटड़ संस्कृति, फिल्मी जगत की कामयाबी एवं असफलताएँ, हाई-फाई पार्टी दिखावर की प्रवृत्ति, विज्ञापन जगत की सच्चाइयाँ एवं अनैतिकता आदि का खुला चित्रण उपन्यासों के ज़रिए हमें मिल जाता है।

हिंदी उपन्यासों में "17 रानड़े रोड़" एवं "पहर दोपहर" शोभान्वित जगत की सच्चाइयों को लेकर हमारे सामने आ जाते तो 'दौड़', विज्ञापन जगत की अनैतिकता एवं मानवीय मूल्यों का ह्रास को उजागर कर रहा है। भारतीय अंग्रेज़ उपन्यासों में "हाल्फ गर्ल्फ्रेंट" में विदेश में चलते "लाईव म्यूसिक विथ बार" कल्चर को चित्रित किया है।

पेज़ त्री संस्कृति रूपी मीड़ियाकृत यथार्थ के चित्रण के द्वारा माध्यमीकृत यथार्थ का चित्रण करने में "17 रानड़े रोड़" के लेखक रवीन्द्र कालिया सफल हुआ है। आज हम सीधे जो देखते हैं, सुनते हैं यानी कि ऐन्द्रियजन्य बोध से पनपते आशय से कोई मतलब नहीं बल्कि मसाला डालकर मीड़िया में जो परोसता है उसी पर

सब भरोसा करते हैं। पेज़ त्री कल्चर भी वही है जो मुम्बई जैसे शोभान्वित जगत के अमीरों द्वारा चलाए गए पार्टी साज़िश है। वहाँ के समाचार- पत्रों के तीसरी पन्ना में अमीर लोगों पर चर्चा होती हैं। उसी पन्ने में अपना जगह बनाने केलिए व्यर्थ दिखावे की प्रवृत्ति करने को पेज़ त्री कल्चर बुलाया करता है। शोभान्वित जगत की ओर कदम रखने के भ्रम में जाती आम लड़कियों की दशा का वर्णन भी इस उपन्यास में दिखाया गया हैं। उन्हें हाई-फाई पार्टी में शॉं ऑफ करने केलिए अमीर लोगों के साथ कम कपड़े पहनकर जाना पड़ता है। सुषमा जो फिल्मी हीरोइन बनने के वास्ते पिता के साथ मुम्बई आती है सम्पूरन की सहायता से उस लक्ष्य पर कामयाब हो जाती है। लेकिन बाद में दूसरे अवसर प्राप्त होने के कारण सम्पूर्ण से अलग हो जाती हैं। यही तो फिलमी जगत की विशेषता है कि सफलता पाना मुश्किल काम है अगर सफलता प्राप्त हो गई तो एहसानमन्द होना उससे भी मुश्किल काम बन जाता है। सुषमा कभी भी सम्पूर्ण एवं सुप्रिया के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की। लेकिन किसी फ्लेट में अकेले

रहने पर ड्राईवर के साथ कुछ अनचाही घटना हो जाने पर वह असुरक्षित और भय से संत्रस्त हो जाती है। इसका मतलब तो यह निकला कि ग्लैमरस वर्ल्ड सच कहे तो स्त्री को इतना शोभा नहीं देती बल्कि कटुवाहट एवं असुरक्षा से त्रस्त जीवन ही यहाँ भी मिलता है। शोभान्वित जगत की 'स्त्री असुरक्षा' पर अभिनेत्रि मनीषा का कथन इस प्रकार है कि- "आप शायद जानते नहीं, औरत हर इंटस्ट्री में असुरक्षित है। यहाँ तक कि बाज़ार में भी वह असुरक्षित है।"[57] उसी प्रकार उपन्यास का अगला पात्र "चन्दन" महानगरीय शोभान्वित जगत के चकाचौंध में पड़कर फिल्मी क्षेत्र में असफल बन जाने पर पागल हो जाता है और वापस गाँव चला जाता है।

शोभान्वित जगत के उपभोक्तावादी ब्राँटेड़ संक्कृति से प्रभावित मानव जीवन का भी जिक्र लेखक ने यहाँ किया है। पार्टी कल्चर पर शिवेन्द्र, सम्पूर्ण से कहे कथन इस प्रकार है कि-"बम्बई ग्लैमर और दौलत की नगरी है। जिसके पास पैसा है वह ग्लैमर के पीछे दौड़ रहा है और जिसके पास ग्लैमर है वह दौलत के

पीछे। इसलिए पार्टी में ग्लैमरस और दौलतमन्द चेहरे दिखाई देने चाहिए।"[58]

"पहर दोपहर" के ज़रिए असगर बजाहत फिल्मी जगत में फैले अवैध सम्बन्ध, सफलता के पीछे आराम बगैर दौड़ता जीवन, अण्डवर्ल्ड गुण्डाओं का चाल-चलन आदि को प्रस्तुत किया गया है। "पिया" पहर दोपहर का एक पात्र है फिल्मी जगत की कामयाबी पाने केलिए बहुत सारे लोगों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करनी पड़ती है लेकिन सबके द्वारा धोखा खाकर रंड़ियों के जैसा जीवन बिताती है। फिल्मी जगत के प्रसिद्ध व्यक्ति धर्मवीर सबकुछ जानकर भी पिया से शादी करती है लेकिन फिर भी पिया अन्य मर्दों के चक्कर में पड़ने लगी। इस प्रकार अतृप्त काम वासनाओं से चलते स्त्री की मानसिकता का चित्रण भी लेखक ने किया है। फिल्मी क्षेत्र में औरत केलिए एक निश्चित काल ही सुवर्णकाल रहता है। बाद में अपने माँसल बदन मिट जाने पर उनकेलिए फिल्मी क्षेत्र भी "एक्सपर्यड़" हो जाते हैं। तो सच्चाई यह है कि उनके बदन को ही फिल्मी विज्ञापन की दुनिया

इस्तेमाल करते हैं न कि उनकी क्षमता। फिल्मी जैसे शोभान्वित जगत में असली रिश्ता तो देख नहीं सकते हैं। सिर्फ व्यावसायिक मनोभाव के साथ स्वार्थ लाभ केलिए इन लोगों ने रिश्ते-नाते निभाते नज़र आते हैं। रतनसेन और जालिब के बीच सालों की दोस्ती है। लेकिन जालिब हर वक्त शराब में रहने के कारण रतनसेन अपने नए फिल्म में किसी ओर को म्यूज़िक डायरेक्टर बना लेता है। अपनी भलाई की सोच में स्वार्थ भावना से दोस्ती को भूलना दूसरों के अहसासों को तोड़ना भारी भरकम काम नहीं रह गया है। मनबहलाने केलिए पत्नी नीना के अभाव में घर में रँड़ियों को लेकर आने के जालिब की आदत के ज़रिए लेखक शोभान्वित जगत के व्यर्थ वैवाहिक जीवन की ओर भी इशारा करता है।

व्यवसाय एवं विज्ञापन की दुनिया में स्त्री शरीर के इस्तेमाल करने की प्रथा को अंकित करते हुए कमलकुमार जी 'पासवर्ड़' उपन्यास में विज्ञापन जगत की अनैतिकता को खोल दिया है। जब लेखिका की नैरेटर अमेरिकन तर्ज पर चलते रेस्तराँ

चली जाती है वहाँ सर्वीस करनेवाली लड़कियों को देखा। वहाँ सभी लड़कियाँ अपने टीशर्ट के बटन खुले रखे हैं। ताकि उनका जिस्म देख सकें। यह बाज़ार का हिस्सा है। “हमने कल यहीं इसी रेस्तराँ में शाम गुज़ारी थी, औरत होने के नाते में बार-बार आहत होती हूँ पर यह तो मेरी समस्या हुई न। इससे किसी को क्या कोई भी फर्क पड़नेवाला है? पर यहाँ बाज़ार में लड़कियाँ बाज़ार का अहम हिस्सा है।”[59] स्त्री बदन को व्यवसाय केलिए इस्तेमाल करनेवाली बाज़ारीकृत मनसिकता को उजागर करना यहाँ लेखिका का उद्‌देश्य है।

विज्ञापन जगत की स्पर्धा एवं नैतिक मूल्यों के खण्ड़न प्रवणता पर दौड़ उपन्यास के ज़रिए लेखिका अपना विचार प्रस्तुत कर रही है। उत्पादन, विपणन और विक्रय के बीच में पड़ी स्पर्धा तो आजकल दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। हर उत्पाद की टक्कर में बीस-बीस वैकल्पिक उत्पाद आज बाज़ार में हैं। सबको श्रेष्ठ, उत्कृष्ठ बनानेवाले विज्ञापन भी उनका साथ देते हैं। मार्किटिंग का काम आज आसान नहीं बल्कि जटिल से जटिल बन गया है।

विज्ञापन जगत की सच्चाइयों पर दोस्त राजुल को पवन इस प्रकार समझा रहा है कि- “दरअसल बाज़ार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द लाकर राजुल तुम सिर्फ कन्फ्यूशन फैला रही हो। मैंने अब तक पाँच सौ किताबें तो मैंनेजमेंड़ और मार्केटिंग पर पढ़ी होगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैप्टर नहीं है।”60 इन लोगों केलिए समस्याओं का सुझाव नहीं बल्कि समस्याओं को ज़ारी रखना ही भलाई है ताकि इससे ओर लाभान्वित हो जाए।

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में "हाल्फ गर्ल्फ्रेंट" के द्वारा विकसित देशों में चलते "म्यूसिक विथ बार" सभ्यता को चित्रित किया है। अपने खोए हुए प्यार को खोजने केलिए माधव न्यूयोर्क पहूँचता है। उनका विचार है कि रिया अपनी इच्छा की पूर्ति केलिए न्यूयोर्क के किसी बार में म्यूसिक कर रही होंगी। उनकी तलाश करने आ जाते हैं लेकिन न्यूयोर्क में म्यूसिक स्टेशन की बोला-बोला है। जब वह इंटरनेट के ज़रिए म्यूसिक स्टेशन का पता तलाश कर रहा था तो- *“That site itself had a top-100 list of the best live music venues in the city. In Patns, you would be lucky to find one place that played live music. In Damraon, the*

only way you could hear live music at a bar is if you yourself song. In New York City, however there is an endless number of places.''[61] भारत में तो "बार" में शराब पीना असभ्य माना जाता है। लेकिन न्यूयोर्क जैसे महानगरों में यह आम नित्यक्रम के रूप में स्त्री-पुरुष भेदभाव के बिना चलते काम है। वहाँ के 'बार' का वातावरण भी बहुत शांत एवं स्वस्थ होगा।

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय परिप्रेक्ष्य में शोभान्वित जगत तो जटिल, असभ्य अनैतिकता के केन्द्र लगता है। लेकिन भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में ये सारी बातें आम, सामान्य जीवन की गतिविधियाँ एवं स्वस्थ माना जाता है। दोनों सभ्यताओं की विविधता यहाँ हम देख सकते हैं। पाश्चात्य सभ्यता में गोपनीयता कम है बल्कि खुलापन ही है। इसलिए रिश्ते-नाते और शोभान्वित जगत के मानवजीवन में जटिलता कम नज़र आती हैं। गोपनीयता के बढ़ते ही जटिलता भी बढ़ जाती हैं। भारतीय सभ्यता में खुलापन कहीं नहीं है चाहे रिश्तों में हो, बातों में हो कुछ भी हो। गोपनीयता तो हमेशा बातों को उलझा देती हैं।

4.3.1.12. भाषागत बदलाव

भाषा की दृष्टि से उत्तर-आधुनिक जीवन में बहुत परिवर्तन आया है। हर उपन्यासकारों ने इन परिवर्तनों को अपने उपन्यासों में चित्रित भी किया है। बदलते परिवेश में बदलते सोच-विचार में भाषा की भी अपनी भूमिका रहती है। क्योंकि आज हर मानव की भाषा उनके विचारों एवं परिवेश मापने में सक्षम है। इसलिए हर उपन्यासकार पात्रों की शिक्षा एवं सामाजिक स्तर के अनुसार भाषा की संरचना में भी बदलाव लाते हैं। मतलब तो यह है कि समकालीन हिंदी उपन्यासों में भाषा की दृष्टि में भी एक बहुत बडा बदलाव दिखाई दे रहा है।

वैश्विक गाँव की परिकल्पना के ज़रिए भौगोलिक भाषा बनती अंग्रेज़ी भाषा का स्तर वर्तमान में और भी उन्नति प्राप्त करता है। हिंदी हो या अंग्रेज़ी, आज के उपन्यासों में अंग्रोज़ी भाषा का वर्चस्व कहीं न कहीं हमें देख सकते हैं। "पासवर्ड़" उपन्यास में पश्चिमी सभ्यता का ज़िक्र करते हुए अंग्रेज़ी भाषा का इस्तेमाल

हम देख सकते हैं। "दौड़" उपन्यास में भी स्टेल्ला अंग्रेज़ी बोलना पसंद करती है, कभी-कभी हिंग्लीश का भी इस्तेमाल कर रही है। "विज़न" चिकित्सा जगत् पर आधारित उपन्यास है इसमें डाक्टर्स बड़े-बड़े बैठक में सिर्फ अंग्रेज़ी भाषा का इस्तेमाल करते हैं ताकि उनके सामाजिक स्तर कहीं गिर न जाए। हिंदी एवं प्रांतीय भाषा बोलने से आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में बहुत कम स्टेंडेर्ड की श्रेणी में आंकने की प्रवृत्ति समाज में फैल रही है।

अंग्रेज़ी उपन्यासों में भी भाषागत समस्याएँ मानव जीवन को किस प्रकार प्रभावित और बदल देते हैं इसका चित्रण है। "हार्ल्फ गर्लफ्रेंट" का नायक माधव झा अविकसित बिहार प्रांतों से दिल्ली 'सेंट स्तीफन कॉलेज' में भर्ती लेता है। अंग्रेज़ी भाषा से अनभिज्ञ माधव को कॉलेज में बहुत कुछ झेलना पड़ता है। बिल्गेट्स अपने गाँव आने पर माधव को अंग्रेज़ी में भाषण देने को कहा तो माधव अपनी भाषाई समस्याओं के उलझन में पड जाता है। शैक्षिक स्तर पर पिछड़े बिहारी परिवेश से आने के कारण अंग्रेज़ी भाषा को काबू में करने पर माधव हमेशा पराजित

होता है, निराश बनना पड़ता है। *"My English is still bad, I have a Bihari Ancent."*[62] उपन्यास तो माधव की अंग्रेज़ी बोलने की समस्या को लेकर ही आदि से अंत तक प्रयाण करता है। सभ्यता का प्रतीक बनकर आयी अंग्रेज़ी भाषा को ही आज सब कहीं प्रतिष्ठा मिल रही है।

'17 रानड़े रोड़' में कहीं न कहीं मराठी भाषा का इस्तेमाल भी देख सकते हैं। "एनशियंर प्रामीसस" केरलीय परिवेश का उपन्यास होने के कारण मलयालम प्रभाव का तो मंग्लीश के रूप में हमें देखने को मिलता है। प्रत्येक भाषा की अपनी अस्मिता है। उस भूमिका को सही भाँती निभाने और समझाने केलिए उस भाषा का साहित्य काफी हैं। हर देश की भाषा वहाँ की संस्कृति पर हावी होती है। अंग्रेज़ी तो विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है और पश्चिमी जगत की सभ्यता तो फैलने और हर दैश में पनपने में काम आता है।

इतना ही नहीं बल्कि आज के समाज में व्याप्त जाति, प्राँत-भेद की नीति को भी उपन्यास के ज़रिए हर लेखक व्यक्त करते

हैं। सामाजिक पिछड़ापन, जाति-भेद आज के उत्तर-आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में भी विद्यमान है। इसप्रकार उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में सामाजिक स्तर में व्याप्त मानव जीवन के हर पहलुओं को उद्धृत किया गया है। यथार्थबोध एवं सच्चाई की स्थिति को बहुत ईमानदारी एवं आत्मसमर्पण के साथ बदलते सामाजिक परिवेश के अनुकूल मानवीय जीवन में आए हर परिवर्तन को समावेश करते हुए चित्रण करने में समकालीन उपन्यासकार सफल होते नज़र आते हैं।

4.3.2. राजनीतिक परिदृश्य में मानव जीवन

जिस तरह निस्वार्थ भावना से स्वतंत्रता केलिए हम लोग लड़े थे, आज उसी तरह स्वार्थ भावना से सत्ता एवं ताकत केलिए एक दूसरे से लड़ रहे हैं। आज भारत की राजनीति का दुर्भाग्य यह है जिसे भारत के विकास केलिए प्रयत्न करना चाहिए वे भारत को लूट-लूटकर खुद के आर्थिक विकास केलिए प्रयत्नशील है। इस प्रकार की राजनीतिक साजिशें भारत के हर क्षेत्र में फैल रही हैं। शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, बैंकिंग, सामाजिक माध्यम आदि

हर क्षेत्र में राजनीतिक बदलाव एवं शोषण शामिल हैं। छात्र-राजनीति के रूप में बच्चों के बीच भेद-भाव पैदा करके, झगड़ा पैदा करके उनको भी शासक वर्ग अपनी कठपुतली बना देते हैं। सत्ताधारी अपनी कूटनीतियों को छात्रों से करवाकर समाज में तनाव एवं असंतुलन पैदा करते हैं। क्योंकि हर कहीं स्वार्थ, ईर्ष्या एवं नफ़रत की भावना का बोलबाला है। आज का समय वास्तव में भारतीय राजनीतिक दृष्टि से उथल-पुथल का समय है। प्रजातंत्र की राजनीति का मतलब तो "जनता का, जनता के द्वारा, जनता केलिए" शासन व्यवस्था है। लेकिन आज हकीकन तो 'ताकतवालों का, ताकतवालों द्वारा ताकतवालों केलिए'। इन्हीं उत्तर-आधुनिक परिवेश की सच्चाईयों को विभिन्न विषयगत परिवेशों के संदर्भानुसार उपन्यासकार लोगों तक पहुँचा रहे हैं। आज की राजनीति में व्याप्त काला धंधा, रिश्वत गैर कानूनी कारोबार जैसे गैर सामाजिक व्यवहारों को अपने उपन्यासों के ज़रिए अभिव्यक्त करने की कोशिश वर्तमान रचनाओं में ज़ारी है।

राजनीतिक-साम्प्रदायिक दंगे में पड़कर आज बच्चे किस प्रकार गुमराह एवं विनाश की ओर जा रहे हैं इसका चित्रण "ईधन" उपन्यास में स्निग्धा-रोहित के पुत्र बेटू को लेकर स्वयं प्रकाश जी इशारा करते हैं। बेटू को खो जाने के बाद ही रोहित को सब कुछ याद आयी कि अपना बाटा सांप्रदायिक दंगे में पड़ने की सूचना तो उन्हें कभी पहले ही मिली थी लेकिन वह उतना ध्यान नहीं दिया। आज के राजनीतिज्ञ बच्चों को भड़काकर, उल्लू बनाकर कुछ करने-करवाने की प्रेरणा देते हैं। "आज कह रहे हैं मुसलमान खराब है, कल कहेंगे क्रिश्चियन खराब है या कोई और . . ."[63] इन सबसे प्रभावित होकर बेटू का सवाल इस प्रकार था कि-"अगर मुसलमान इतने अच्छे होते हैं तो मन्दिर क्यों नहीं बनाने देते? राम का मन्दिर यहाँ नहीं बनेगा तो कहाँ बनेगा? पाकिस्तान में? कहाँ है मन्दिर? अपने बरसोवा में कहाँ है मन्दिर बताइए। कहाँ जाऊँ मैं पूजा करने?"[64] इस प्रकार भ्रम में डुबाए बच्चों के मन का शोषण करना आज की राजनीति की विशेषता है।

"कुलज़मा बीस" उपन्यास के द्वारा लेखिका 'रजनी गुप्ता' पैसों पर चलती सत्ता एवं राजनीति का जिक्र कर रही हैं। उपन्यास का पात्र रोज़ी साजिशें रचाकर अनिल से जबर्दस्त शादी करती है। लेकिन अनिल उस बन्धन से मुक्ति चाहकर भी उनको तालाक नहीं मिलता है। लेकिन रोज़ी के भाइयों ने पैसों के बलबूते पर कानून को काबू कर रखा था और धमकी देकर अनिल को वापस लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आज पैसा ही सबकुछ है। पैसे से हम कुछ भी कर सकते हैं। यदि हमारे पास पैसा है तो हम चाहे कुछ भी कर सकते हैं न राजनीति या कानून हेमें रोक नहीं पाएँगे।

4.3.2.1. जनतंत्र के बदलते आयाम

"पासवर्ड" उपन्यास में जनतंत्र के वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आलोचना करती हुई बताती हैं कि- "कहने को यहाँ जनतांत्रिक सरकार है। पर उनकी कार्यविधि भी क्या जनतांत्रिक है? उनकी सोच कितनी जनतांत्रिक है ये बड़े जटिल सवाल है। इस समय राष्ट्र हो या जाति या व्यक्ति अपना अधिपत्य, दूसरों पर चाहता

है . . .।"[65] लेखिका स्टीफन की किताब "साम्यवाद की काली किताब" का विचार-विमर्श करके साम्यवादी देशों के अधिनायकों के क्रूर एवं हिंसात्मक पहलुओं को उघाड़ने का काम करती हैं। यह सवाल भी उद्‌घाटित करने का प्रयास है कि सच में आज देश का विकास हो रहा है या पूँजीवादियों का या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का या साम्राज्यशक्तियों का विकास हो रहा है? उनके मतानुसार आज विकास उनका हो रहा है, जिनके पास शासन है, ताकत है, सत्ता है, पैसा है। साधारण लोग तो ताकतवालों के पाँवों में पड़कर ज़िन्दगी बिता रहे हैं। "देश के विकास के कीमत चुका रहा है, किसान, आदिवासी, मेहनतकश और दलित। बलपूर्वक इनकी ज़मीन हड़पी की जा रही है। वह दर-दर की टोकरे खाने को मज़बूर हो रहे हैं। किसान को नई तकनीक, नए जेनिटिक बीजों, बैंक से कर्ज के नाम पर मौत के घाट उतारा जा रहा है। नए बीज, हमारे जलवायू के अनुकूल ही नहीं है। . . . . सरकारें खामोश है। कभी सेज के नाम पर, कभी औद्‌योगिकीकरण और विकास के नाम पर, उन्हें सरकारी बुल्ड़ोज़र के नीचे पीसा जा रहा है . . .।"[66] ये

पंक्तियाँ बिल्कुल प्रासंगिक समस्याओं को उजागर कर रही हैं जहाँ सत्ताधारी लोग आम-गरीब जनता का शोषण करके विकास का भ्रम देता है। लेखिका राजनीति एवं राजनीतिज्ञों पर खुल्लम-खुल्ला विरोध व्यक्त करती हुई कहती हैं कि- “जिनके हाथ में सत्ता है उनकी राजनीति अलग होती है। कथनी और करनी के बीच खाइयाँ है। सत्ता में बैठे मंत्री केलिए कुछ भी मायने नहीं रखता। न संविधान न कानून-व्यवस्था, न ही प्रशासन सबसे ऊपर है पार्टी। राज्य से ऊपर, राज्य की जनता से ऊपर।”[67]

"रेवल्यूसन 20-20" उपन्यास में चेतनभगत विकास के नाम पर चलते राजनीतिक भ्रष्टाचार पर विचार कर रहे हैं। जैसे वाराणसी रूपी शांत एवं दैविक परिवेश में विकास के नाम पर एम.एल.ए शुक्ला अपनी सत्ता एवं शासन की ताकत पर एक तकनीकी कॉलेज "गंगा टेक" का निर्माण करता है। वहाँ सिर्फ बड़े-बड़े घरों के छात्रों को भर्ती करवाते हैं। बिना कोर्स पूरा करके ही प्रमाणपत्र आदि देने का कार्य करते हैं। ये सब कुछ राजनीतिक शोषण के सशक्त मिसाल है। तकनीकी विकास एवं

शौक्षिक विकास के नाम पर साधारण जनता को शासक वर्ग किस प्रकार बेबकूफ़ बना रहे हैं इसकी ओर आवाज़ उठाना चेतन भगत का लक्ष्य है। वह अपने दूसरे पात्र "राघव" के ज़रिए इनके खिलाफ़ समाचार तैयार करके लोगों के बीच में उनपर होते भ्रष्टाचार एवं शोषण के बारे में अवगत कराने का प्रयास भी करते हैं। उनका समाचार तो सिर्फ आम लोगों केलिए ही नहीं बल्कि इन सत्ताधारियों को भी डराने लायक बन जाती है।

4.3.2.2. पिछड़े देशों की राजनीतिक तनाव

"हाल्फ गर्लफ्रेंट" उपन्यास में चेतन भगत बिहार जैसे देशों के राजनैतिक तनाव एवं शोषण की ओर इशारा कर रहे हैं। लेखक राजनीतिक धंधे के विरुद्ध आवाज़ अपने अधिकांश उपन्यासों के द्वारे उठा रहे हैं। उनके मतानुसार जनतंत्र, राजतंत्र सब कुछ साधारण जन केलिए होना चाहिए। कुछ प्रांतों को पिछडा छोड़कर वहाँ के लोगों को अपनी हकों से वंचित करानेवाली जनतंत्र रूपी राजनीति जो आज चल रही है, इसका खुला वर्णन "हाल्फ गर्लफ्रेंट" में विद्यमान है। माधव झा (बिहारी

नवयुवक) दिल्ली के विख्यात कॉलेज सेंट स्टीफनस में साक्षात्कार केलिए आए वक्त वहाँ के प्रोफेसर्स बिहार के पिछड़ेपन के बारे में पूछा तो उसने कहा कि- "*India is pretty backward. One of the poorest nations in the world.*"

"*Sure, but why is Bihar the poorest of the poor.*"

"*Bad Government*" यह जवाब तो माधव नहीं बल्कि वहाँ के एक प्रोफेसर ने ही बताया था। माधव इसपर बता रहा है कि- "*The Govt. is in bed with criminals and together they exploit the State and its people.*"[68] सही तो है कि वहाँ के शासक सब कुछ लूटता है, बस। अपने देश को अशिक्षित एवं अनभिज्ञ बनाए रखने में ही उनके लिए मुनाफा मिलता है। जो आरक्षण एवं निधियाँ उन पिछडे लोगों का हक है वे तो इन सब से अनभिज्ञ होने के वास्ते कोई पूछ-ताछ, झगड़ा नहीं करेंगे। एम.एल.ए ओझा के दफ़्तर में एक दिन माधव उनसे मिलने जाता है तो बाहर बहुत सारे गरीब लोगों को देखा और उनमें से किसी एक से पूछने पर मालूम पड़ा कि उन्हें चौबीस घंटे में से तीन घंटे बिजली चाहिए

था। महानगरों में एक घंटे बिजली बंद हुआ तो खूब हलचल मचेगी तो यहाँ सिर्फ एक घंटे की बिजली ही मिलती है। ये बेचारे इस बिजली को तीन घंटा बनाने के निवेदन देने आया है। यह सुनकर माधव को अपनी राज्य की हालत पर बहुत बुरा लगाता है। लेकिन पूरे भारत में ऐसे बहुत सारे प्रांत एवं लोग होंगे जो अपने हक से अनजान और वंचित हैं।

4.3.2.3. शिक्षा में राजनीतिक हादसा एवं छात्र राजनीति

आज तो पूरे शिक्षा नीति में बदलाव आया है। शिक्षा का मूल्य भारत में घटता जा रहा है। कहने का मतलब तो यह है कि कठिन परिश्रम करके शिक्षा पर उत्तीर्ण होकर आए युवालोगों को चुनौती देने केलिए बड़े उद्योगपतियों एवं सेठों के बिगडे-शहजादे बच्चे आरक्षण रूपी भ्रष्टाचार के वास्ते प्रवेश करके आते हैं। विश्वविद्यालयीन शासन भी इन लोगों की ताकत एवं पैसा के सामने चुप नज़र आते हैं। इन सबका चित्रण दौड़ उपन्यास के ज़रिए ममता कालिया ने प्रस्तुत किया है। "विज़न" उपन्यास में भी पैसों से एवं ताकत से प्राप्त डॉक्टरीय शिक्षा पर जिक्र किया

गया है। डॉ. अजय 'शरण आई सेंटर' के वारिस एवं अमीर घर का बेटा है। लेकिन सीखने और सोचने की क्षमता में उतना उत्तीर्ण नहीं है। फिर भी पिता के रियासत एवं सिफारिशों के बल पर चिकित्सा क्षेत्र में कदम रखा है, पैसों के बल पर नेत्र चिकित्सक की उपाधी भी प्राप्त किया है। चिकित्सा क्षेत्र में ऐसे असमर्थ एवं नकाबिल लोग प्रवेश होने से मरीज़ों का हाल कीड़ों जैसा बन जाएगा। इस भीषण स्थितियों की ओर लोगों को सतर्क करवाना लेखिका का उद्देश्य है।

अपने उपन्यास 'हाऊस ऑफ कार्डस' में सुधामूर्ती बड़े-बड़े महानगरों के सरकारी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों को अपनी नौकरी की ओर रहे कम समर्पण भाव की ओर इशारा किया है। जब मृदुला शादी के बाद अलादहल्ली के सरकारी स्कूल से तबादला पाकर बैंगलूर के येलाहँगा हाईस्कूल आयी थी तब उसे यह बात पता चला कि अलादहल्ली के जैसा वातावरण यहाँ कभी नहीं मिलेगा। सभी लोग कई छोटे-मोटे व्यावसायिक धंधे में विराजमान है। वे लोग अपने धंधे पर ही अधिक ध्यान देते हैं।

विद्यालय आकर रजिस्टर में हस्ताक्षर करके चले जाते हैं। वहाँ के बच्चों में अधिकांश गरीब घर के ही हैं। उन्हें कोई पब्लिक स्कूल में भर्ती करवाना गरीब अभिभावकों की पहूँच के बाहर की बात है। पर इन बच्चों की शिक्षा पर सरकार और वहाँ के राजनीतिज्ञों को कोई रुचि भी नहीं देख सकती है। यह स्थिति भारतीय महानगरों की शैक्षिक अवनति का ज्वलंत उदाहरण है।

आरक्षण के नाम पर शिक्षा जगत में होते अनैतिक एवं अयोग्य छात्रों के प्रवेश कार्य पर "यूअर ड्रींस आर माईन नाऊ" उपन्यास के ज़रिए लेखक ने अपना विरोध प्रकट किया है। आज बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में पिछड़े वर्ग के आरक्षण के बदले बड़े-बड़े नौकरशाहों के बच्चों को उनके पैसों के बल पर भर्ती करवाते हैं। इससे क्षमता एवं बौद्धिक स्तर पर प्रवीर्ण बच्चों का अवसर नष्ट हो जाता है। उपन्यास का प्रधान पात्र अर्जुन ऐसे अनैतिक भर्ती की वजह से शिकार बननेवालों में एक है। प्रो. महाजन वहाँ के राजनीतिक क्षेत्र में प्रबल व्यक्ति होने के कारण इस अन्याय पर उनका विरोध करने की हिम्मत किसी के पास नहीं है।

"Mahajan is like a cancer in our college system. A lot of wrong tings are flourishing in this university – the back door admission of a few students the upsurge in the demand to increase reservation quatas. It's all Mahajan doing. He has a strong hold on this University and the political backing of the party in power in the campus, as well as in the State."[69] चेतन भगत कृत "रेवल्यूशन 20-20" में शिक्षा जगत में राजनैतिक प्रभाव के साथ चलते भ्रष्टाचार को लेकर चिंतित मन की द्वंद्वात्मकता देखने को मिलती है। चेतन हमारे शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती भ्रष्टाचार को लेकर बहुत चिंतित नज़र आते हैं। वे इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ को राघव का नामक पात्र के ज़रिए व्यक्त किया है। एम.एल.ए. शुक्ला अपने लाभ केलिए, अपने दल के फायदा केलिए गोपाल के यहाँ वाराणसी में करोड़ रुपए खर्च करके "गंगा टेक" नाम से कॉलेज की स्थापना की। राघव, गोपाल एवं शुक्लाजी के शिक्षा संस्थान में फैले भ्रष्टाचार एवं आम जनता को लूटनेवाले साजिशों के खिलाफ अपने समाचार पत्र में लिखना शुरू कर देने परे शुक्लाजी उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। लेकिन राघव हार नहीं मानता और निड़र होकर समाचार पत्र आरंभ कर देता

है। रेवल्यूशन 20-20 भारत को भ्रष्टाचार मुक्त करने केलिए अकेला लड़ना शुरू करता है। गोपाल, शुक्ला एवं 'गंगाटेक' केलिए एक चेतावनी बनकर आगे बढ़ता है। बिहार जैसे शैक्षिक स्तर पर पिछड़े राज्यों के राजनैतिक तनाव को लेकर चेतन ने 'हाल्फ गर्लफ्रेंट' लिखा है। इसमें एम.एल.ए ओझा, माधव एवं रानी साहिबा के विद्यालय के विकास केलिए कुछ नहीं करते हैं। लेकिन जब अपनी भलाई का अवसर आए तो वे इनकी मदद करने को तैयार होते हैं। बदले में बिलगेट्स की बिहार जैसे पिछड़े राज्यों को विसिट करने के कार्यक्रम को अपने स्कूल में सुसज्जित आयोजन करना होगा। "*Rani shahiba, if Bill gates comes here, my constitueney will be in the news, will be good for Dumruon.*"[70] लेकिन रानी साहिबा को यह पता है कि 'डुमरून' केलिए नहीं बल्कि भविष्य के लोकसभा इलक्शेन केलिए ये अच्छा हैं।

इस प्रकार शिक्षा का क्षेत्र भी बुरी तरह राजनीति के गिरफ्त में है। राजनीतिज्ञों को शिक्षा की उन्नति पर नहीं बल्कि खुद की उन्नति पर अधिक लगाव है। इस स्वार्थ मनोभाव की वजह से ही

आज शैक्षिक मूल्यों की अवनति हो रही है। छात्रों के मन में राजनीति जुडी गतिविधियाँ भी ऐसे राजनीतिज्ञों के षड्यंत्र ही है। वे छात्रों के मन में राजनीतिक ज़हर अमृत के रूप में पिलाकर अपने राजनीतिक दल की ओर इतना आकर्षित कर देते हैं कि इनकेलिए कुछ भी करने केलिए ये तैयार हो जाते हैं। युवा लोगों के ज़रिए ही पार्टी को एक सुसज्जित भविष्य की स्थापना होती है। इसलिए कॉलेजों से लेकर वे लोग बच्चों को फँसाना शुरू करते हैं। हिंदी उपन्यासों में विश्वविद्यालयों के क्षेत्र में चलते राजनीतिक-अनैतिक व्यापारों की ओर इशारा करने का प्रयास उपन्यासकार कर रहे हैं। 'ईंधन' में साम्प्रदायिक-राजनीतिक धंधों में फँसकर स्निग्धा-रोहित के पुत्र 'बेटु' का निधन हो जाता है जो सिर्फ तेरह साल का लड़का था। 'युअर ड्रींस आर माईन नाऊ' में दिल्ली जैसे बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में चलते राजनीतिक भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। छात्र-राजनीति के तहत रहनेवाले शासकों की काली भूमिका को महाजन एवं उनके साथियों के ज़रिए रचनाकार ने चित्रित किया है। छात्र राजनीति

कभी जनतंत्र परक नज़र नहीं आती हैं। सिर्फ अपनो सत्ता को कब्जे में रखना राजनीतिक दलों का लक्ष्य बन गया है। इसलिए राजनीतिक चुनावों के संदर्भ में ये लोग सत्ता न खो जाने केलिए बहुत सारे कुतंत्र रचते हैं। अपने दल के किसी का खून करके या किसी को मार-तोड़ करके, दूसरे दलवालों पर इल्ज़ाम लगाते हैं। ताकि सारे अपने दल के प्रति सहानुभूति की भावना आए। कभी जातीय भेद-भाव जैसे अतिसंवेदनशील मुद्दों के नाम पर क्रांति, चलाकर वे अपने लक्ष्य तर्क पहुँचते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के महाजन कहते हैं- *"Create tension between quata student and others. Instill fear in the minds of the in the reservation category about what will happen in DU loses the quata system . . . with no other party in favour of the quator, they will vote for us. But to push them to vote, you need to orchestrate a battle between them. Sell them the idea of fighting for their rights. And in this battle, if an OBC student is hunt and gets admitted in KU, if will only full the fire. The media will run a story– 'Dalit boy brutally attacked in DU'."*[71]

आज की राजनीति रूपी ज़हर से छात्रों को घायल करके सत्ता को बनाए रखने की सोच तक बढ़ रही है। आज की राजनीति इतनी जहरीली बन गयी है कि अपना सत्ता को कायम रखने हेतु छात्रों के जीवन कुर्बान करने में भी हिचकती नहीं है।

'हाऊस ऑफ कार्डस' उपन्यास के मृदुला के पति यु.एस में जाने केलिए WHO स्कॉलर्शिप प्राप्ति की पूछ-ताछ के वास्ते स्वास्थ्य मंत्रालय में मंत्री को मिलने जाता है तो उनके सहायक से मिलता है। संजय को स्कॉलर्शिप की सारी योग्यताएँ थी, लेकिन सहायक बहुत नफ़रत एवं गुस्से से उसके साथ व्यवहार करता है। *"Give me one reason why the Govt. should sponsor you. You must."* **. . . .** *think that the government is a bottomless treasury. You should first understand the rules of the sponsorship and then come here. You're wasting my time."*[72] उनकी रुचि किसी और को देने को हैं, जो बडे-बडे सिफारिशें लेकर आते हैं। उनसे वह खुद लाभान्वित हो जाए। संजय को स्कॉलर्शिप देने से उसे कोई लाभ नहीं मिलेगा। इस भ्रष्टाचार पर वहाँ के लिपिक

चिकञ्चप्पा का कथन इस प्रकार है- *"Doctor, if you keep working for the government, you'll make many visits to our department. You can't get a transfer, promotion, NOC or sponsorship without our department's co-operation. You should also know who's who here. Our people help the doctors. That's the reason many doctors consider the people from our department to the VIPs. If you've ever noticed, several of your collagues come to our dept often."*[73] इन बातों से स्पष्ट है कि सत्ता और अधिकारियों से संबन्ध रखनेवालों को ही आज सब प्रकार के फायदा मिलते रहते हैं। 'हाऊस ऑफ कार्डस्' में डॉ. लता के पति आयकर विभाग के बड़े अधिकारी हैं। अगर डॉ. लता को किसी से घृणा हो जाएँ तो पति के अधिकार से आयकर विभाग द्वारा राईड़ आदि करवाकर उन्हें परेशान करती है ताकि आईंदा उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न किया जाय। इस प्रकार ताकत दिखाकर सत्ता का गलत इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति आज के समाज में हम सर्वत्र देख सकते हैं।

इस प्रकार आज के परिदृश्य में राजनीतिक क्षेत्रों में मानव जीवन बहुत भयानक एवं जटिल स्थिति तक पहूँच रहा है। बहुत

रहस्यमय स्वभाव की राजनीति जनता के चारों और विद्‌यमान है। इनमें से सही गलत का अंतर पहचानना सीदे-साधे लोगों केलिए अप्राप्य बनते जा रहे हैं। हिंदी उपन्यासों में इसके भयावह रूप को वही-के-वही प्रस्तुत किये जा रहे हैं। लेकिन अंग्रेज़ी उपन्यासों में प्रासंगिक समस्याओं को ज्यों का त्यों चित्रित करते हैं एवं उसे अपने पात्रों के ज़रिए इन भ्रष्टाचारों के सुझाव एवं मिटाने का प्रयत्न भी करते देख सकते हैं।

पुराने हो या वर्तमान, जनतंत्रीय मानने वाले भारत में सत्ता तो जनता के पास होना चाहिए। लेकिन उस सत्ता का सबसे ताकतवाला रूप राजनीति बन गया है। भारतीय संविधान तो भारत की जनता केलिए बनाया गया है। लेकिन सारी कानून, संविधान सारी व्यवस्था आज किसके काबू में है यह सबको पता है। "हम भारत के लोग" से शुरू होती भारतीय संविधान की सर्वश्रेष्ठ एवं पूजनीय प्रस्तावना को आज के शासक वर्ग किस प्रकार झकझोर देते हैं उसी प्रकार भारतवासियों की भी खुद

अवनति हो रही है। आज ऐसी स्थिति है कि आम जनता भ्रष्टाचार मुक्त भारत की प्रतीक्षा मात्र कर सकते हैं।

4.3.3. आर्थिक स्तर पर मानव जीवन

समाज के हर क्षेत्र में विकास का अहम मुद्दा तो वहाँ की आर्थिक व्यवस्था एवं विकास योजना है। वर्तमान युग की एक बहुत बड़ी समस्या है आर्थिक विकास की समस्या। अगर किसी को व्यावसायिक रूप में ऊँचाई प्राप्त करना है तो इसकी जड़ आर्थिक स्थिति ही है। आर्थिक स्थिति में अगर कोई व्यक्ति ऊँचाई में हो तो वहाँ के समाज में भी उसका प्रभाव देख सकते हैं। इसलिए सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को एक दूसरे का पूरक माना जा सकता है।

पुराने ज़माने में हर व्यक्ति तीन मूलभूत आवश्यकताओं को-रोटी-कपडे-मकान-पूरा करने केलिए कठिन प्रयत्न किया करता था। लेकिन आज स्थिति एवं आवश्यकताएँ बदल गयी हैं। तकनीकी विकास, उत्तर-औद्योगिकीकरण, उपभोक्तावाद,

बाज़ारीकरण आदि के प्रभाव से मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताएँ बदली और बढ़ती जा रही हैं। बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए व्यक्ति को कठिन मेहनत करके अपने आर्थिक स्तर को मज़बूत करना होगा। व्यक्ति के आर्थिक स्तर के अनुसार निम्नवर्ग, मध्यवर्ग एवं उच्च वर्ग के रूप रूपायित तीन वर्गों की ज़िन्दगी और उनके तमाम परिवेश का अध्ययन किया जा सकता है।

4.3.3.1. निम्नवर्गीय मानव जीवन

हर वर्गों की अलग-अलग जीवन शैली होती है, जो ज़्यादातर उसकी आर्थिक दशा पर निर्भर होती है। निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति बहुत नाज़ुक होती है। प्राचीन काल से लेकर उत्तर-आधुनिक समय तक उनका हाल यातनाओं से भरा हुआ है। आज के ज़माने भी वैसा है जो अमीर है वो अमीर बनते रहेंगे, गरीब तो गरीबी की गहराइयों पर डूबते नज़र आते हैं। इस अध्ययन के दौरानआर्थिक स्तर पर निम्न वर्गीय मानव जीवन की तुलना का प्रयास है।

"ईंधन" उपन्यास में स्वयंप्रकाश ने तो अपने प्रधान पात्र रोहित को शुरू में निम्न-वर्गीय परिदृश्य में चित्रित किया है। हर दिन बहुत कठिनाइयों से गुजरनेवाले नवयुवक पात्र है रोहित। पर वह अपने परिश्रम से शिक्षा प्राप्त करता है और भविष्य की ओर महत्वाकांक्षी दृष्टि रखनेवाला भी है। रोहित पहले तो हमेशा ब्रांटेड़ संस्कृति की ओर विमुखता प्रकट करता है लेकिन जब ज़िन्दगी में कामयाब हो जाने पर वह एकदम बदल जाता है। आज हर आदर्शों का मायना तो मनुष्य की हालत पर निर्भर होता है। व्यक्ति के पास पैसा नहीं रहता है तब विद्रोही बन जाता है और सबके खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। लेकिन पैसा आने के बाद हाल बदलने के बाद धारा के अनुसार तब्दील होना पसंद करता है।

सुधा मूर्ति ने भी अपने उपन्यास "द मदर आई नेवर न्योस" में शंकर एवं उनके परिवार को लेकर निम्नवर्गीय गरीब जीवन का चित्रण किया गया है। उपन्यास का पात्र शंकर हब्ली में एक छोटे मकान में रहते हैं और अपनी तीन बेटियाँ एवं पत्नी को लेकर बहुत गरीबी हालत की ज़िन्दगी बिता रही है। बड़ी बेटी की

शादी को लेकरें वह बहुत चिंतित है। पर कभी किसी से मदद नहीं माँगता, कभी किसी से शिकायत नहीं करता। जैसा है वैसा ही होने दो यह उसका आदर्श है। कुछ मिलावटी एवं दिखावे की भावना नहीं, बल्कि सीधे-सादे लोग।

'इंधन' में रोहित कठिन परिश्रम करके ज़िन्दगी में आगे बढ़ जानेवाले उत्तराधुनिक श्रमिक मानव का प्रतीक है तो "द मदर आई नेवर न्यूस" में शंकर एवं परिवार अपनी कमियों को समझकर उसके साथ सामंजस्य रूपायित करके गरीब होकर ही जीवन को आगे ले जाता है।

"17-रानड़े राड़" में रवीन्द्र कालिया ने मुम्बई महानगर की गलियों के निम्नवर्गीय मानव जीवन का चित्रण किया है। एक कमरेवाली झोंपड़ी में छह-सात लोग एक साथ जीवन यापन करते हैं। भाई और भाभी के पर्दा के पीछे का यौन सम्बन्ध, इसपर उत्तेजित होते छोटा भाई, माँ-बाप की कुंठा आदि से संत्रस्त सुमित्रा की कहानी निम्नवर्गीय जीवन की जटिलताओं को जीवंत बना देती है।

"द फाल्डड़ एर्थ" उपन्यास में अनुराधा ने रानीखत नामक एक छोटा सा गाँव की निम्नवर्गीय आम जनता का चित्रण किया है। आमा नामी बूढ़ी एवं उसकी पोती चारू के ज़रिए गरीब घर की हालतों का वर्णन एवं भविष्य के प्रति उनकी आकांक्षाओं एवं चिंताओं को व्यक्त करती हैं। चाहे गरीब हो या समाज में पिछड़ापन हो, बहुत सारी समस्याओं को लेकर जीने पर भी उनका जीवन दूसरों से ज्यादा स्वस्थ और मतलब का महसूस लगता है। सिर्फ पैसों की कमी है। वह नैतिकता एवं शिष्टाचारों को भूलकर जीना कभी भी पसंद नहीं करती है। उसने अपने पुत्र एवं चा डिग्री के पिता को शराब पीकर पत्नी को मारते देखकर घर से निकाल दी। दिल से सच्चा होने के कारण वह कभी किसी से डरते नज़र नहीं आती है। इसपर उनका कथन इस प्रकार है।

"He still visited, a weedy fellow with a ravaged face, and a beedi tucked behind each ear. He sat glumly in the countryard and smoked while his mother scolded him about keeping a misturs and demanded money for his daughter's up keep Meanwhile, somehow she fed and housed yet poorer relatives who arrived without warning from remole villages and stayed for days,

sometimes weeks.'[74] निम्नवर्गीय जीवन की विशेषता भी यह है कि दिखावे की कमी। व्यर्थ दिखावा एवं कपटता निम्नवर्गीय गरीब जीवन में हम नहीं देख सकते हैं। "हार्ल्फ गर्ल्फ्रेंट" उपन्यास में बिहार के डामरूउन प्रांत के अविकसित मानव जीवन का चित्रण है। वहाँ के लोग पूरे दिन में सिर्फ तीन घंटे की बिजली प्राप्ती के लिए निवेदन लेकर घूमते फिरते नज़र आते हैं। अपना परिवार आर्थिक स्तर से निम्न होने के कारण बच्चों को भी शिक्षा के बजाय खेती-मज़दूरी करना पड़ता है। और कहते हैं कि- *"Don't make the poor dream of having a future. Rajkumar Ji. The schools you have don't help us get ahead in life. So we don't send our kids there. It's as simple as that we are not village idiots who don't know better."*[75] उनके मतानुसार बेवजह ये शिक्षा-दीक्षा करके उन्हें कुछ नहीं मिलनेवाला है। समय की बरबादी करने के बगैर कुछ काम सीख लेते तो घर की परेशानियों में कुछ कमी तो ज़रूर आएगी। आर्थिक विषमता है ही इन लोगों से ये सब कहने को मज़बूर कर लेती है। भारत में अब भी ऐसे अनेक अविकसित प्राँत है।

उच्च-निम्न वर्ग रूपी भेदभाव समाज में कम होते जा रहे हैं। जो आर्थिक स्थिति में बहुत नीचे नज़र आते हैं वे लोग खुद आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि आज की व्यस्त ज़िन्दगी में उनकी ओर हाथ बढ़ाने केलिए किसी के पास वक्त नहीं होगा। सब अपने आप में व्यस्त एवं आत्म केंद्रित बन गए हैं। शिक्षा के प्रति इनकी मानसिकता को बदलना भी आर्थिक विषमता को कम करने में सहायक होगा। कम से कम अपने अधिकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

4.3.3.2. मध्यवर्गीय मानव जीवन

मध्यवर्ग उसे कहते हैं जो निम्नवर्गीय जीवन स्तर से बढ़कर हो फिर भी उच्चवर्ग के साथ कोई ताल-मेल नहीं हो। मध्यवर्गीय लोग अधिकांश समाज की आचार-विचार, रीति-रिवाज़ के आधार जीने वाले हैं। शिक्षा प्राप्ति में भी ये लोग काफ़ी सफलता हासिल कर चुके हैं। समाज में उच्च हैसियत प्राप्त करने केलिए वे हमेशा संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि वे कभी भी निम्न वर्गीय स्तर की ओर जाना पसंद नहीं करते हैं। इसलिए

सामाजिक स्तर को बनाए रखने केलिए ये खूब मेहनत करते रहते हैं। अधिकांश मध्यवर्गीय लोग सरकारी नौकरी या निजी क्षेत्र में नौकरी करके आमदनी कमानेवाले होते हैं। मध्यवर्गीय लोगों के अनुसार ही आज सामाजिक-आर्थिक स्तर आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन मध्यवर्गीय जीवन में व्यक्तिवादिता एवं सम्बन्धों का विघटन आज बहुत अधिक देख सकते हैं। क्योंकि मध्यवर्गीय युवालोग आजीविका के चक्कर में पड़कर, पैसे की लालच में सामाजिक-पारिवारिक दायित्वों को भूलकर खुद की भलाई के पीछे अंधी दौड़ करते हैं।

हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के अधिकांश उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन-यथार्थ को खोलने में सक्षम हैं। मध्यवर्गीय जीवन के विविध आयामों को लेकर उपन्यासकार अपना उपन्यास की संरचना बुनी हैं। मध्यवर्गीय युवा लोगों का पैसे के पीछे की दौड़, कमज़ोर होते पारिवारिक शिष्टाचार, बुज़ुर्ग माँ-बाप का अकेलापन, पुत्री की शादी को लेकर आर्थिक तनाव, मध्यवर्गीय बच्चों पर बढ़ती पैसों की लालच, बेटी को बड़े घरों की ओर शादी कराकर उनकी ज़िन्दगी

बचाने की माँ-बाप की व्यर्थ कोशिश, तनावग्रस्त सम्बन्धों से टूटती रिश्ताएँ, महत्वाकाँक्षी युवा लोग, ज़िन्दगी में आगे बढाने की सोच में एवं अमीर बनने की सोच में कठिन परिश्रम करने वाले युवा लोग, कामयाबी एवं धनार्जन हेतु अनैतिक काम की ओर मुड़ते युवा लोग सबका चित्रण मध्यवर्गीय परिवेश में ही देखने को मिलते हैं।

"दौड़" उपन्यास को मध्यवर्गीय जीवन परिवेश की एक सशक्त भूमिका माना जाना चाहिए। एक पत्रकार राकेश पाण्ड़ेय एवं अध्यापिका रेखा ने अपने छोटी सी आमदनी को बचा-बचाकर दोनों बच्चों को सबसे उच्च एवं समय के अनुकूल की शिक्षा प्रदान की। लेकिन दोनों बेटों को लेकर इन लोगों ने भविष्य केलिए कितने सपने संजोकर रखे थे सब मिट्टी में मिल गए। पवन तो आजीविका के पीछे पड़ गया है सघन ने तकनीकीकरण की विशाल दुनिया की ओर पलायन किया। दोनों की सोच इस प्रकार है कि जीवन की सार्थकता कैरियर की उन्नती में है। उपभोक्तावादी एवं औद्योगिकीकृत संस्कृति ने इन दोनों को

अपने चंगुल में फंसा दिया ताकि इनके मन के बची हुई पारिवारिक शिष्टता, नैतिकता सबकुछ नहीं के बराबर रह गई। इस प्रकार लेखिका ने वैश्वीकरण एवं बाजारवादी सभ्यता के अंतर्द्वंद्व में पड़ते मध्यवर्गीय जीवन को उजागर की है जहाँ माँ-बाप जैसे बुजुर्ग लोगों केलिए सिर्फ तनहाई बची हैं।

"नाऊ दाट युआर रिच" में स्थिति थोड़ा सा अलग है। श्रुति एवं अभिजीत मध्यवर्गीय परिवार में पले बच्चे हैं। श्रुति तो बचपन से ही माँ-बाप के द्वारा प्रताड़ित तनावग्रस्त ज़िन्दगी से पली थी। इसलिए इस वातावरण से मुक्ति केलिए वह कठिन से कठिन परिश्रम करती है और उच्च शिक्षा हासिल करके उच्च हैसियत लक्ष्य करती हुई 'सिल्वर मैन फिनान्स' जैसे बहुराष्ट्रीय कम्पनी में अधिक वेतनवाले नौकरी ढूँढकर घर परिवार छोड़कर चली जाती है। अभिजीत भी घर की गरीबी एवं कमियों से त्रस्त है। वह भी अमीर बनने के लक्ष्य में खूब मेहनत और पढ़ाई करके सिल्वर मैन फिनैन्स में नौकरी पाने में सफल हो जाता है। कठिन परिस्थितियों से गुज़रकर आनेवाले इन युवा लोगों की एक

विशेषता तो यह है कि अपनी नैतिकता एवं सामाजिक मूल्यों को भूलकर कभी कुछ नहीं करते हैं। मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षी युवालोगों का चित्रण करने में दुर्जेय दत्ता पूर्ण रूप से सफल हुआ है।

'अपवाद' नामक उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार में से कठिन मेहनत करके उच्च हैसियत प्राप्त करनेवाले लोगों को चित्रित किया है। "विज़न" में नेहा के माँ-बाप के द्वारा बेटी की शादी को लेकर परेशान मध्यवर्गीय माँ-बाप का चित्रण किया गया है। नेहा को 'शरण आई सेंटर' के वारिस एवं अमीर लड़का 'अजय' की रिश्ता आने पर मध्यवर्गीय माँ-बाप अमीरों की साधन सम्पन्नता को, प्रतिभा और योग्यता मानकर उनके बराबरी में शादी धूम-धाम से मनाते हैं। इस प्रकार अपनी ज़िन्दगी भर की कमाई से ज़्यादा खर्च करके, भविष्य के बारे में बिना सोच-विचार करके वे ये सब करते हैं। यह मध्यवर्गीय नीति है कि हर माँ-बाप समाज में आत्म सम्मान पाने केलिए अपनी बच्ची की शादी ऐसे ही घरानों में कराना चाहते हैं ताकि वहाँ राजकुमारी जैसे जिएगी।

पर वास्तविकता कभी ऐसी नहीं होती बल्कि सीधा उलटा ही होती है।

अंग्रेज़ी उपन्यासों में "कैन लव हैप्पन ट्वाईस" में रविन का परिवार तो मध्यवर्गीय नज़र आता है। रविन एक मध्यवर्गीय पारिवारिक शिष्टाचार को पालनेवाले युवालोगों का प्रतीक है। वह कभी अपने माँ-बाप को छोड़कर जाने की सिमार की बात पर सहमति नहीं देता है और कहा कि बुढ़ापे में मेरे माँ-बाप को ख्याल रखना मेरा फर्ज है मैं उन्हें अकेले छोड़कर नहीं आऊँगा कहने पर रविन-रिमार का रिश्ता टूट जाता है। "हार्ल्फ गर्ल्प्रेंट", "रेवल्यूशन 20-20", "द मदर आई नेवर न्यूस", "एन्शियंट प्रामीसस" आदि उपन्यासों में भी मध्यवर्गीय जीवन की सच्चाईयों एवं समस्याओं को उजागर करने का प्रयास प्रत्येक लेखक विभिन्न परिदृश्यों के ज़रिए करते हैं। लेकिन यहाँ मध्यवर्गीय जीवन को लेकर एक पारदर्शिता का मनोभाव भी है जो हिंदी उपन्यासों में कहीं देख नहीं पाते हैं।

4.3.3.3. उच्चवर्गीय मानव जीवन

आर्थिक दृष्टि से उच्चवर्ग माने समाज में आर्थिक स्तर पर सबसे ऊँचा हो। उसे अमीर भी कहा जा सकता है। कुछ लोग तो अमीर बनकर ही जन्म लेते हैं अतः उन्हें रियासत के रूप में बहुत कुछ पाए जाते हैं। वे कभी अन्य दोनों वर्गों की मानसिक तनाव को समझ नहीं पाते हैं। लेकिन कुछ लोग अपने कठिन परिश्रम से अमीर बन जाते हैं ऐसे लोग मानसिकताओं को समझने के बावजूद भी अनजाने जैसे व्यवहार करते हैं।

उत्तर-आधुनिक उच्चवर्गीय मानव जीवन की कुछ खास विशेषताएँ हैं, ऐय्याशी ज़िन्दगी, पार्टी कल्चर, कृत्रिम दिखावे की प्रवृत्ति या प्रदर्शनकारी सभ्यता, ब्राँट संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति, डील शादी प्रणाली, चेहरों पर कपटता, नैतिक मूल्यों का शोषण, रिश्तों में आए बदलाव, भावुक एकता की कमी आदि।

वर्तमान हिंदी एवं भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासों में ये सारे प्रसंग विभिन्न संदर्भानुसार देखने को मिलता है। "विज़न" उपन्यास में चिकित्सा क्षेत्र में प्रसिद्ध शरण अई सेंटर के परिवारवालों के ज़रिए आज पैसे के वास्ते घटित मानवीय मूल्यों

एवं रिश्ते-नाते में आए बदलाव को लेखिका ने चित्रण किया है। शरण आई सेंटर शहर के बहुप्रसिद्ध नेत्र चिकित्सालय है। इसका मालिक शरण एवं परिवार समाजिक स्तर पर उच्च हैसियत में है। लेकिन परिवार के सदस्यों के बीच का संबंध तो कुंजी वाली गुड़िया जैसा है। शरण जी के कहने के बगैर कोई कुछ नहीं करते हैं। अपनी क्षमतावाली बहू डॉ. नेहा को शरण ने आई सेंटर के रिसप्शनिस्ट बनाकर रखी है। अमीर घरों में चलती स्त्री दमन मानसिकता को पुरुषवर्चस्ववाद को भी लेखिका ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

ऐसे ही स्त्री दमन एवं पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता को चित्रित करने वाला एक दूसरा भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यास है "एन्शियंट प्रामीसस"। प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए अमीर घरों में सामान्य घर से आई बहुओं को लेकर चलती उपेक्षा का मनोभाव एवं स्त्री द्वारा स्त्री के दमन की प्रवृत्ति, व्यावसायिक धंधों मेंे उलझते रिश्ते आदि बातों को लेखिका उजागर करती है। प्रधान पात्र जानु की शादी केरल के एक बड़े मारार परिवार के साथ

होती है। मारार लोग एवं उनके पति दोनों उनसे उतना लगाव कभी प्रकट करते नहीं हैं। हर किसी के नकली चेहरे को पहचानकर जानू नौ साल के बाद उससे तलाक माँगती है तो समाज में उनपर होनेवाले तमाशा के बारे में सोचकर, स्टाटस को ध्यान देकर तालाक देने से भी वह आदमी विमुखता प्रकट करता है। अमीर घरानों की कपटता और स्त्री समस्याओं को स्त्री लेखिकाओं ने मिलकर रचनाओं के ज़रिए दी है। 'विज़न' उपन्यास के पात्र नेहा को अपनी शादी रूपी बन्धन से मुक्ति की चाह है पर उसे पारिवारिक तनावों से मुक्ति नहीं मिलती है। लेकिन "एन्शियंट प्राँमीसस" की जानु अपने व्यर्थ बन्धनों से मुक्त होकर ज़िन्दगी में आगे बढ़ जाती है। नेहा रूढ़ीग्रस्त नारी रूप अपनाते नज़र आती है तो "जानू" उत्तर-आधुनिक स्वच्छंद नारी बनकर स्त्री सशक्तीकरण के मुद्दे को भी जीवंत बना देती है। वह अमीरी व्यर्थ दिखावे की ज़िन्दगी से जीवन की असली मोड़ की ओर पहूँचने में सफल बन जाती है।

चेतन भगत का "हाल्फ गर्लफ्रेंट", "रेवल्यूशन 20-20" दोनों उपन्यासों में उच्चस्तरीय जीवन के दो पहलुओं का जिक्र किया है। रिया सोमानी जो जन्म से ही अमीर वातारवण में पली बढ़ी है तो गोपाल, कर्मों से अमीर बन जाता है। दोनों की ज़िन्दगी को लेकर अमीरी परिदृश्यों एवं दिखावों की दुनिया से विमुख होते नव युवति एवं सारी सुख-सुविधाओं की ओर आकृष्ट युवागण की बदलती मानसिकता को लेखक ने उद्धृत किया है। "कुल ज़मा" बीस उपन्यास के ज़रिए अमीर घर की लड़कियों की मौज-मस्ती एवं उनकी मनपसंद ज़िन्दगी के बारे में रजनी गुप्ता ने अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है। अपनी युवा बदन दिखाकर अतृप्त कामवासनाओं से चलते अमीर लड़कियों का चित्रण भी अमीषा-के ज़रिए लेखिका ने यहाँ खीचा है। उपभोक्तावादी दुनिया में रिश्ता भी उपभोग की वस्तु बन कर जा रहा है। ऑनलाईन के ज़रिए, वर्चुअल दुनिया के ज़रिए ये लोग अपनेलिए रिश्ता ढूँढ़ता है। हर दिन नया रिश्ता। यह भी उच्चवर्गीय जीवन की एक असलियत है।

सुधामूर्ति ने "द मदर आई नेवर क्न्यूस" के ज़रिए व्यावसायिक बनते जा रहे उच्चवर्गीय पारिवारिक रिश्तों को विषय बना दिया है। शांता और पुत्र रवि के ज़रिए पारिवारिक मूल्यों के ऊपर व्यावहारिक मूल्यों का प्रभाव, रिश्तों में आए निर्भावुक मनोभाव आदि को लेकर उच्चवर्गीय मानव जीवन में आए बदलाव को हू-ब-हू प्रस्तुत करती हैं।

4.3.3.4. औद्योगिकीकरण के फल स्वरूप मानव जीवन में आए बदलाव

18 वीं सदी के मध्य से लेकर पश्चिमी जगत् से शुरू होती एक आर्थिक क्रांति को औद्योगिकीकरण कहा जाता है। 20 वीं शताब्दी के अंत में भारत सबसे बड़े औद्योगिक क्षोत्रों में से एक बन गया था। औद्योगिक क्रांति खेती-मज़दूरी, से विमुख होते युवा लोगों का नौकरी की तलाश में गाँवों से शहर जाने की प्रवणता को और भी उत्तेजित किया। यह प्रवृत्ति शहरीकरण को ओर सबल बना दिया। पारिवारिक संरचना में भी इसका प्रभाव आने लगा। शहरीकरण एवं उत्तर औद्योगिकीकरण संयुक्त से परमाणु परिवार

एवं अपरिवार तक की स्थिति को जन्म दिया। इन सारी बातों को लेकर उत्तर-आधुनिक रचनाकार ने अपनी रचनाओं को संपुष्ट बना दिया है।

हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं के उपन्यास औद्योगिकीकृत दुनिया की विशेषताएँ एवं सच्चाइयों को चित्रित करने में सफल हुए हैं। 'ईधन', 'दौड़', 'नाऊ दाट यू आर रिच' आदि उपन्यासों में आजीविका प्राप्ति एवं आर्थिक स्तर को बेहतर बनाने के वास्ते दौड़ते युवापीढी का चित्रण है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ओर आकर्षित इन लोगों के जीवन में आए आर्थिक बदलाव अन्य चीज़ों पर कैसे प्रभाव डालते हैं इन सारी बातों को रचनाकारों ने यथार्थवादी दृष्टि से इन रचनाओं में उजागर किया है। साथ ही आवागमन के साधनों के बल पर देश-विदेश में रहते पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन का ज़िक्र 'दौड़' उपन्यास में किया गया है। सुधा मूर्ति जी "द मदर आई नेवर क्न्यूस" में भी औद्योगिक जगत की चकाचौंधों में पड़कर मानवीय रिश्ते-नातों में आए बदलावों को, तनावों को एवं व्यावसायिक मानसिकता को व्यक्त

कर रही हैं। "अपवाद", "विज़न" और ‘हाऊस आफ कार्डस’ में चिकित्सा जगत् के औद्योगिकीकरण एवं औद्योगिकीकृत मानसिक बदलावों को व्यापक तरीके से प्रस्तुत किया है। शिक्षा क्षेत्र के औद्योगीकरण को प्रस्तुत करने में "युअर ड्रींस आर माईन नाऊ", "रेवल्यूशन 20-20" आदि रचनाएँ अपनी भूमिका निभा रही हैं। औद्योगिक उपभोक्तावादी दुनिया की ओर इशारा करते हुए "कुल ज़मा बीस", "17 रानड़े रोड़", "पासवर्ड" आदि हमारे सामने हैं। इस प्रकार आज बिना भाषिक भेद-भाव के औद्योगिकीकृत देश की सच्चाइयों को खुलकर दिखाने का प्रयत्न साहित्यकारों द्वारा ज़ारी हैं। औद्योगिकीकरण आज के समाज की एक बुनियादी प्रक्रिया बन गया है। इसके बिना समाज का आर्थिक विकास संभव नहीं है।

आवागमन के साधनों का विकास औद्योगिकीकरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। शिक्षा जगत् को विस्तृत करने केलिए आवागमन साधनों की भूमिका सराहनीय है। विदेश में जाकर शिक्षा प्राप्त करनेवालों की संख्या भी इसलिए आज बढ़ गई हैं।

"दौड़", "अपवाद" एवं "हाऊस आफ कार्डस" उपन्यासों में शिक्षा के वास्ते विदेश चले जानेवाले बच्चों का चित्रण किया गया है। जिनमें आए बदलाव एवं पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, घर से दूर रहने पर अनुभव कर रहे तनाव एवं स्मृतियाँ, ज़िन्दगी में घर परिवार की ज़रूरत कितना है आदि मुद्दों पर विचार किया गया है।

इस प्रकार औद्योगिकीकरण मानव जीवन को भाग-दौड़वाली ज़िन्दगी ही प्रदान कर रही है। उनका स्वस्थ जीवन उनसे चीन लिया गया है। रूढ़ीवादिता की सम्पत्ति तो हुई है, लेकिन व्यक्ति हमेशा तनाव एवं कुंठा से ग्रस्त दिखता है। निजी व्यावसायिक धंधों को प्रोत्साहित करने के कारण युवालोगों कोें एक हद तक स्वावंलंबी बन गया है। पारिवारिक रिश्ते-नाते, प्यार सब कुछ बदल गया है। लेकिन अपने बच्चे अगर नौकरी में कामयाब दिखते तो माँ-बाप इससे स्वस्थ एवं खुशी पाते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अतिप्रसरण एवं आजीविकावाद के पीछे का पलायन

को लेकर उत्तर औद्योगिकीकरण सामने है जिसके ज़रिए मानवजीवन और जटिल बन जाते हैं।

4.3.3.5. कामकाजी महिला

आज की नारी घर की चार दीवार की सीमा से बाहर निकलकर अपनी-अपनी क्षमताओं की पहचान बना रही है। अधिकांश स्त्रियों ने नौकरी प्राप्त करके आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त की है। आर्थिक स्वतंत्रता एवं घरेलू बन्धनों से मुक्ति तो ज़रूर पायी है लेकिन दोहरी भूमिका का निर्वहण करने से मुक्ति नहीं मिली है। घरेलू कामों के साथ-साथ दफ़्तर के कार्यों की भी पूर्ती करने से उनका दायित्व और बढ़ गया है। इसप्रकार की कामकाजी महिला के बारे में विभिन्न परिवेश को लेकर वर्तमान उपन्यासकारों ने अपना विचार व्यक्त किया है।

"ईंधन" उपन्यास में "स्निग्धा" कुछ दिन अध्यापिका का काम कर रही थी। लेकिन सामान्य शिक्षण पद्धतियों से हटकर

शिक्षण कार्य करने पर बच्चों की माँ-बाप चिंतित हो जाते हैं क्योंकि माँ-बाप अपने बच्चों को होमवर्क जैसे गतिविधियों से बाँधना चाहते थे ताकि वे स्वस्थ रह सकें। इसलिए उन लोगों ने स्निग्धा की शिक्षण पद्धति का विरोध करके नौकरी से निकाल देते हैं। एक असफल कामकाजी नारी का चित्रण स्निग्धा के ज़रिए लेखक स्वयंप्रकाश ने यहाँ प्रस्तुत किया है। "द फॉल्डड़ एर्थ" की माया भी असफल अध्यापिका के रूप में चित्रित है। फिर भी वह अध्यापिका के काम के साथ-साथ मोमबत्ती कारखाने में "छात्रों को रोज़गार मिलने का शिक्षण प्रदान करके अपने काम के साथ-साथ बच्चों में स्वरोज़गार क्षमता बढ़ाने की कोशिश कर रही है। इसलिए वह कभी पूर्ण रूप से असफल नहीं बन जाती है।

"दौड़" उपन्यास की रेखा एवं स्टेल्ला दो पीढ़ियों की कामकाज़ी औरतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। रेखा अध्यापिका है। अपनी आमदनी से दोनों बच्चों को समयानुकूल शिक्षा भी प्रदान करती है। घर के सारे घरेलू काम भी संभालती है। लेकिन बहू स्टेल्ला तकनीकी क्षेत्र के अच्छे ज्ञाता एवं कम्प्यूटर विशेषज्ञ भी

है। घंटो तक कम्प्यूटर में काम कर सकती है लेकिन एक पल केलिए रसोई का काम करना नामुमकिन सी बात है। रसोई में काम करने को लेकर युवा महिलाओं में दिखाई देनेवाली मन मुटाव की भावना आजकल फास्ट फुड़ कल्चर को बढ़ावा दे रही है। इस प्रकार पवन की माँ एवं पत्नी के ज़रिए दोनों पीढ़ियों की कामकाजी महिलाओं को चित्रित करके स्त्री सशक्तीकरण को ममता कालिया ने आगे बढ़ने का प्रयास किया है।

स्त्री नौकरी पेशा के विरुद्ध उत्पन्न सामाजिक परिदृश्य को भी 'एनशियंट प्रॉमीसस' एवं 'विज़न' उपन्यास में देख सकते हैं। 'विज़न' में ससुराल में आई बहू डॉ. नेहा को कम आँकने के मनोभाव एवं उसकी क्षमताओं के अनुसार काम करने से मना करते सास-ससुर का चित्रण है। डॉकटर नेहा को कभी भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के साथ जीने का अवसर नहीं मिल जाती है। डॉ. होने पर भी ससुर के आई सेंटर के रिसप्शनिस्ट बनकर पुरुषवर्चस्वावाद के दमन से पीड़ित होनी पड़ती है। 'एनशियंट प्रॉमीसस' में 'जानू' केरल के बड़े मारार घर की बहू बनकर आयी

तो वहाँ उसकेलिए उचित स्थान कभी प्राप्त नहीं होता है। इसलिए पुत्री 'रिया' को लेकर वह मानसिक रूप से मंद छात्रों केलिए विशेष शिक्षण प्रदान करनेवाले विद्यालय में जाना शुरू कर दी। सास एवं ससुराल के लोगों को यह काम बिलकुल पसंद नहीं था। रोकने का प्रयास तो खूब किए। पर जानू तैयार नहीं थी। यहाँ दोनों नारी प्रताड़ित है लेकिन एक भारतीय नारी संकल्प को अन्वर्थ बना देनेवाली है तो दूसरी अपनी अस्मिता को महत्व देनेवाली महत्वाकांक्षी उत्तर-आधुनिक युवा नारी बनकर हमारे सामने प्रस्तुत होती है।

"अपवाद" और "नाऊ दाट यू आर रिच" में आज के सशक्त नौकरी पेशा नारियों का चित्रण है। यति एक डॉक्टर है, वह खुद की आर्थिक स्थिति को मज़बूत करने के बजाय समाज सेवा के वास्ते चिकित्सा क्षेत्र में निश्वार्थ सेवा करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पताल बनाकर वहाँ के गरीब लोगों केलिए अच्छे से अच्छे इलाज प्रदान करने का प्रयास करती रहती है। वह निड़र, आत्मनिर्भर एवं आत्मविश्वासवाली वर्तमान नारी बनती नज़र

आती है। "नाऊ दाट यु आर रिच" में श्रुति एवं गरिमा के ज़रिए, घर के आर्थिक तनाव एवं जटिलताएँ तथा प्यार व धोखा खानेवाली लड़की का अकेलापन एवं कुंठाओं का चित्रण, इन समस्याओं से मुक्ति पाने केलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनी में नौकरी पाने हेतु शहर आनेवाली लड़कियों का चित्रण किया गया है। दोनों कठिन मेहनत और उच्च, शिक्षा प्राप्त करके अपनी हैसियत बनाने के वास्ते 'सिल्वर मैन फिनेन्स' में आ गयी हैं। वहाँ वरिष्ठ लोगों द्वारा प्रताड़ित एवं से त्रस्त दोनों लड़कियाँ कभी भी अपने परिवेश को भूलकर जीने केलिए तैयार नहीं होती हैं। कठिन से कठिन काम भी काफी लगन और रुचि के साथ करके अपनी आजीविका को मज़बूत बनाने का सतत प्रयास कर रही हैं। आज लोगों की चिंता यह है कि विदेशी कम्पनियों में काम करनेवाली लड़कियाँ गलत रास्ते पर विचरण करनेवाली है। ऐसी गलत फहमी आज प्रचलित है। उक्त अवधारणा को श्रुति और गरिमा के चरित्र के ज़रिए गलत स्थापित करने में रचनाकार सफल हुआ है।

देश के आर्थिक विकास में स्त्री की महत्वपूर्म भूमिका है लेकिन इस सच्चाई को मानने और स्वीकार करने में पुरुष तैयार होते ही नहीं बल्कि उनके आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। हर क्षेत्र में आजकल स्त्री-पुरुष की बराबरी स्वीकार हो चुकी है। हर क्षेत्र में नारी की उन्नति केलिए औपन्यासिक रचनाएँ एक अहम भूमिका निभा रही है।

4.3.4. मानव जीवन में आए साँस्कृतिक बदलाव

संस्कृति माने वह है जो मानवीय जीवन मूल्यों पर आधारित है। मानवीय जीवन मूल्यों को इकट्ठा करने से सामाजिक मूल्यों का उदय हो जाता है। एक देश की संस्कृति माने वहाँ की जनता का, समाज का, व्यक्ति का मूल्यों पर आधारित रहन-सहन, खान-पान, सोच-विचार शिष्टाचार आदि हैं। भारतीय संस्कृति जीवन मूल्यों पर आधारित है जैसे "माता-पिता-गुरु-ईश्वर", "अतिथि देवो भवः", 'असतोमा सद्गमया तमसोमा ज्योतिर्गमया . . . . . .", "कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचना" आदि पौराणिक तथ्यों के अनुसार संस्कृति का रूपायन होता है।

वर्तमान स्थिति तो बदल गयी है। औद्योगिकीकरण, तकनीकीकरण, भूमण्ड़लीकरण, उपभोक्तावाद आदि ने परंपरागत संस्कृति की संरचना को बदल दिया है तथा शहरीकृत संस्कृति की स्थापना हो चुकी है। आज पूर्वनिश्चित परिणाम को लक्ष्य करते हुए ही काम किया जा रहा है। "मा फलेषु" बदलकर सिर्फ 'फलेषु' में तब्दील हुआ है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से समाज केन्द्रित मानव बदलकर व्यक्तिकेन्द्रित मानव बन रहा है। मानवीय जीवन में दिखाई देनेवाले परंपरागत मूल्य आज लुप्त होते जा रहे हैं। जीविका प्राप्ति केलिए संत्रस्त युवापीढी स्वार्थी और व्यस्त बनकर समाज हित के बजाय सिर्फ व्यक्ति हित में ही ज़्यादा ध्यान देते हैं। समकालीन लेखक भी अपने उपन्यासों में इन बिन्दुओं पर ध्यान देते हैं। ब्राँटड़ एवं फैशन संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति, बाज़ारवादी संस्कृति, इंस्टेंट कल्चर, पार्टीकल्चर या पेज़ थ्री कल्चर या कृत्रिम प्रदर्शनकारी संस्कृति, खान-पान में आए बदलाव यानी फास्ट फुड़ कल्चर आदि को

लेकर विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों को परखने की कोशिश इस अध्ययन के दौरान मैंने की है।

4.3.4.1. ब्राँटड संस्कृति एवं फैशन की दुनिया

ब्राँटड संस्कृति वह संस्कृति है जो किसी कम्पनी के उत्पाद को उसके अन्य विकल्पों से अधिक शक्तिशाली एवं बहुमूल्य स्थापित करके उपभोक्ताओं को फसाने में सफल होते हैं। प्रत्येक उत्पाद के क्षेत्र में प्रत्येक कंपनी के ब्राँट संस्थापित करना कम्पनी का लक्ष्य होता है। उस ब्राँट के प्रति जनता में आत्मविश्वास पैदा करना कम्पनी और वहाँ के कर्मचारियों का लक्ष्य है। कम्पनी का मुनाफा ब्राँट की संस्थापना की सफलता के अनुसार निर्धारित है। अपने ब्राँट की और लोगों को आकर्षित करना कर्मचारियों का कर्तव्य है। कर्मचारियों के उत्तम निष्पादन के अनुसार उन्हें पुरस्कार भी दिए जाते हैं। हकीकत यह है प्रत्येक ब्राँट संस्कृति बनने से कम्पनी का मुनाफा बढ़ता है और आम जनता उक्त संस्कृति में फँसती और लुभती जा रही हैं।

"दौड़" उपन्यास ब्राँटड़ संस्कृति केलिए एक सशक्त मिसाल है-पवन का दोस्त "रोजविन्दर" इंड़िया लीवर के टूथपेस्ट डिविज़न में काम करता है। उसे तो अब दुनिया में दाँत के सिवा कुछ नज़र नहीं आता है। उनका कथन इस प्रकार है-“हमारी प्रोडक्ट के एक-एक आइटम को इतना प्रचारित कर दिया गया है कि अब इसमें बस साबुन मिलाने की कसर बाकी है।”[76]

इस ब्राँटड़ संस्कृति में मध्यवर्गीय परिवार ही सबसे ज़्यादा फँसते हैं। अपने सामाजिक स्तर को ऊपर उठाने केलिए ये लोगों बड़े-बड़े ब्राँटड चीज़ें इस्तेमाल करने की कोशिश में हैं ताकि अडोस-पड़ोसियों की दृष्टि उनकी जीवन शैली पर आ जाएँ और ईर्ब्यालू हो जाएँ।

"द मदर आई नेवर न्यूस" में शांता ब्राँटड़ संस्कृति को अपनाकर ऐय्याशी ज़िंदगी जीनेवालों में एक है। अमीर परिवार की पत्नी ‘शाँता’ हमेशा ब्रांटड़ चीज़ों का इस्तेमाल करती है, क्योंकि महिला क्लब में सजकर जाने पर सबकी नज़र उनपर पडें और ब्राँटड चीज़ों को देखकर आदर प्रकट करें। ‘नाऊ दाट यू आर

रिच’ में बदलते जीवन परिवेश शैली के तहत आए चारित्रिक बदलावों को चित्रित किया है। सामान्य परिवार से बहुराष्ट्रीय कम्पनी ‘सिल्वरमैन फिनेन्स’ की जगत में कदम रखने पर इन लोगों को स्वाभाविक वेशभूषा एवं रहन-सहन को ब्राँटड़ के रूप में बदलना पड रहा है। सिल्वर मैन फिनान्स का परिदृश्य इस प्रकार है- *“It was sea of expensive fabric, banned leather and exotic perfumes. People glidid across the floor in Hugo Bosses, Arenonis, and versuces with Louis Vintton either hanging from their shoulders making their feet looks beautiful.”*[77] इस उपन्यास के ‘सौरव’ पहले ही दिल्ली के सबसे अच्छे ब्राँट्स को इस्तेमाल करता है लेकिन अभिजित और श्रुति केलिए यह बस शुरूआत थी। ब्राँटड कल्चर के बेंचमार्क के रूप में सिलवर मैन फिनेंस को लेखक परिचय करा रहे हैं।

"17 रानड़े रोड़" में भी मुम्बई फिल्मी जगत् की ब्रांटड़ संस्कृति का जिक्र लेखक कर रहा है। "केसर कस्तूरी और टुडे कबाब" अध्याय में पार्टी के दौरान ब्राँटड़ पेय पदार्थों एवं खाने के चीज़ों का इस्तेमाल करने का चित्रण है। सुषमा नाम की ग्रामीण

लड़की फिल्मी अवसर के तलाश में दिल्ली आने पर सिर्फ दो-तीन कपड़े थी। फिल्मी जगत में कदम रखते ही सिर्फ ब्राँटड़ चीजों का इस्तेमाल करना शुरू करती है। कॉस्मेटिक्स से लेकर अधोवस्त्र तक नामी ब्राँटड़ ही इस्तेमाल करती हैं। "पासवर्ड़" उपन्यास में भी कमलकुमार ब्राँटड़ एवं फैशन दुनिया का चित्रण करती है। "हमारी अल्मारियाँ कपड़ों और चीज़ों से भरी होती हैं। हम ओर खरीदकर उनमें रखते जाते हैं, आधे से ज्यादा कपड़े पहनते नहीं चीज़ें इस्तेमाल नहीं करते। मन से उतर जाते हैं क्योंकि नए फैशन के खरीद लिए गए होते हैं। पुरानों का क्या किया जाए। . . . मार्केट की ताकत है हम ओर खरीद लेते हैं। खरीदना एक मज़बूरी बन जाता है।"[78] आज हमारी दुनिया का ही एक लघु परिछेद मॉल, यानी मॉल संस्कृति। 'ईटस् शॉप एण्ड प्ले'। 'खाए, खरीदें और खेलें'। यही आज की जिंन्दगी का नया नारा है। बड़े-बड़े मॉल बनाए गए हैं- शॉपिंग सिटी! आज सभी ब्राँटड़ चीज़ें एक ही छत के नीचे उपलब्ध हैं। बैंक से कर्ज़ लेकर गैर ज़रूरी चीज़ें खरीदने में मज़बूर हो जाते हैं। वरना हम दूसरों से गिरे गिनें जाएँगे।

सामान्य मध्यावर्गीय लोगों की यहीं चिंता और हालत है। "नदी" उपन्यास में भी लेखिका ब्राँटड़ युग के आगमन की ओर जिक्र करके बतायी गयी है कि- "गुसलखाने में न घुला तौलिया था . . . . . . न नया साबुन। यह सब चोचले यहाँ नहीं चलते, एक ही साबुन लाईबोय से हाथ धोना, एक ही हमाम से नहाना, पर अब लाइबाय की जगह डेटोल था और हमाम की जगह डव।"[79]

हिंदी उपन्यासों में ब्राँटड़ कल्चर की ओर आकृष्ट मानव जीवन का उल्लेख मिलता है तो अंग्रेज़ी में पाश्चात्य परिवेश के ब्राँटड कल्चर के साथ जीनेवाले परिवार को अधिकतर देखने को मिलते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में अधिकांश पाश्चात्य वेश-भूष को ही प्रधानता मिलती हैं रहन-सहन भी पश्चिम के अनुकूल होते हैं। इसलिए उपन्यासकारों ने उसी वातावरण का चित्रण किया है। भरतीय परिप्रेक्ष्य में ब्राँटड और फैशन संस्कृति का चित्रण अजीब लगना स्वाभाविक सी बात है।

4.3.4.2. उपभोक्तावादी संस्कृति

वर्तमान दुनिया को उपभोग की दुनिया कहना ज्यादा उचित होगा। आज उपभोग ही सबकुछ है। मानव जीवन के सुख का मानक उपभोग बन गया है। समाज केंद्रित व्यक्ति से आत्म केंद्रित व्यक्ति की ओर पलायन काल क्षण है उपभोग वाद। मानव अपने भोग विलास की पूर्ती विभिन्न मार्गों से करते हैं। बदली जीवन शैली और विभिन्न उपादान का उपयोग सामान्य मानव को भोग के मैं नई धरातल में पहुँचा देता है। भोगवादिता के चंगुल से मुक्ति पाना आसान नहीं हैं। मानव अपनी-अपनी झूठी हैसियत और प्रतिष्ठा को बनाए रखने का व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। आजकल आचार-अनुष्ठान त्योहार आदि फैकेज़ के रूप में उपलब्ध किया जा रहा है। एक प्रकार के दिखावे की साँस्कृति लोगों में फैल रही है। एक दृष्टि से उपभोक्तावादी संस्कृति नशे की तरह वर्तमान समाज में फैल रहे हैं। रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के ज़ारिए इस मुद्दे की ओर श्रोताओं की सतर्क करने की कोशिश की है।

आज के उपन्यासों में भी उपभोक्तावादी संस्कृति स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। यह मानव जीवन पर किस-प्रकार का परिवर्तन लाया है, उपभोक्तावादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं की तलाश, मानवीय रिश्ते-नातों में इसका प्रभाव आदि मुद्दों को लेकर वर्तमान लेखन कार्य ज़ारी है। "पासवर्ड़", "दौड़", "विज़न", "17 रानड़े रोड़", "कुल ज़मा बीस", "ईंधन" आदि में उपभोक्तावादी जीवन शैली के नकारात्मक पक्षों को उद्धृत किया गया है। "हाल्फ गर्लफ्रेंट", "कैन लव हैपन टुवाइस", "द मदर आई नेवर क्नूस", "द हाऊस ऑफ कार्ड़स" आदि में उपभोक्तावादी संस्कृति के दोनों पक्ष हमारे सामने प्रस्तुत हैं।

"पासवर्ड़" उपन्यास में उपभोक्तृ दुनिया की ओर इशारा करते हुए लेखिका ने अपनी चिंता हमारे सामने प्रकट की हैं-"धन कुबेरों के देश की अर्थव्यवस्था का वर्चस्व दूसरे देशों में भी फैल रहा है। साथ ही फैल रही है आर्थिक विषमता और सामाजिक विषमता जिसके मूल में हैं उपभोक्तावादी संस्कृति, बाज़ारवाद की संस्कृति जिसके दो छोर हैं।"[80] साथ ही साथ उन्होंने अपने देश

के गरीबों को लेकर भी चिंता प्रकट की है- "एक छोर पर लेग, गाड़ियों के निर्माता, बहुमंज़िला भवनों के निर्माणकर्ता, तरह-तरह के उद्योगों और व्यापारों में लगे, फायदे कमाते लोग, मालों में डिपार्टमेंटल स्टोर्स के मालिक . . . दूसरी तरफ आम आदमी, मध्यम और निम्नवर्ग का आदमी। इस विषमतावादी अर्थ व्यवस्था मूल मंत्र है, उपभोक्ताओं की माँग बढ़ाना, उनमें नए उत्पादों की माँग पैदा करना, ताकि वे खूब खरीददारी करें। . . . लेकिन इस अर्थ व्यवस्था में कृषि और किसान कहाँ होगे, इसमें मज़बूर कहाँ होंगे? छोटे और घरेलू उद्यमों में लगे अपनी आजीविका चलाते लोग कहाँ होंगे? माध्यम और निम्नवर्ग के लोगों की क्या स्थिति होगी।"[81] उपभोक्तावादी संस्कृति की भारतीय परिवेश की ओर लेखिका के उपयुक्त सवाल इशारा कर रहे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति यहाँ की आम जनता के जीवन में पैदा करनेवाली खतरनाक परिस्थितियों पर लेखिका अपना दर्द एवं चिंता व्यक्त करती हैं।

"हाउस ऑफ कार्डस" में अनिता-अलक्स, लक्ष्मी एवं शंकर उपभोक्ता संस्कृति का ज्वलंत उदाहरण हैं। अनिता और लक्ष्मी अमीर परिवार के हैं। अलक्स अपने व्यापार को लेकर हमेशा व्यस्त है तो अनिता हमेशा कुछ शॉपिंग पार्टी करके अपना वक्त बिताती है। अनिता को इसके अलावा कुछ करने को है ही नहीं है, वह बड़े-बड़े मॉलों में, शांपिंग सिटियों में घूमना-फिरना अपनी आदत बना देती है। लेकिन लक्ष्मी-शंकर मध्यवर्गीय परिवार के हैं, पर संयुक्त परिवार में रहने के कारण भाई-भाभियों से व्यर्थ मुकाबला करने के वास्ते बड़ी-बड़ी कीमती चीजें खरीदकर व्यर्थ दिखावे की प्रवृत्ति में जुडे रहते हैं। बैंकों से कर्ज लेकर भी येे लोग दिखावे की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते हैं। *"Shankar want to show off and Lakshmi agree with him. The truth that they don't need phone. But Shankar wants it because his brother Mahadeva has one in Mysour. There is so much comptetion emong the brothers and their wives. The competction should be about who earns more money and not about who spends more."*[82] यह शंकर और लक्ष्मी के खर्चों पर चिंतित रत्नम्मा का कथन है। इस प्रकार अमीर और गरीब दोनों परिवेश की उपभोक्तावादी दुनिया की ओर

बढ़ती चाहु को लेखिका ने अपने उपन्यास के ज़रिए व्यक्त किया है। "दौड़" उपन्यास में उपभोग, उपभोक्ता आदि पर इस प्रकार विचार प्रस्तुत किया है कि-“दरअसल बाज़ार में दिन भर दिन स्पर्धा कड़ी होती जा रही थी। उत्पादन, विपणन और विक्रय के बीच ताल मेल बैठाना दुष्कर कार्य था। एक-एक उत्पाद की टक्कर में बीस-बीस वैकल्पिक उत्पाद थे। इन सबको श्रेष्ठ बताते विज्ञापन अभियान थे जिनके प्रचार-प्रसार से मार्केटिंग का काम आसान की बजाय मुश्किल होता जाता। उपभोक्ता के पास एक-एक चीज़ के कई चमत्कार विकल्प थे।”[83]

संस्कृति में उपभोक्तावादी संस्कृति की तीव्रता पर लेखिका पवन के ज़रिए यह बताती हैं कि- “पापा मेरेलिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़ा, कलकत्ते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है। कन्ज्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो-न-हो कनज़्यूमर कल्चर ज़रूर है।

मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[84]

उपभोक्तावादी संस्कृति एक ऐसा ज़हर है जिसमें फँसने पर कोई हमें बचा नहीं सकते हैं। मकड़जाल में फँसनेवाले कीटे की तरह युवापीढ़ी इस जाल में फँस जाती है और दिग्भ्रमित होकर देश के भविष्य निर्माण के बजाय अपना अस्तित्व खोकर सब कुछ नष्ट कर बैठती हैं। उपभोक्तावाद का दबाव तो बहुत जबरदस्त नज़र होता है। इसलिए उपभोक्तावादी संस्कृति के विरोध संघर्ष करना बहुत कठिन कार्य बन गया है। आज समाज की हर व्यवस्था में विज्ञापन का महत्वपूर्ण स्थान है। हमारा रहन-सहन, खाना-पीना, आचार-विचार सब में विज्ञापन का असर है। जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली चीज़ों की जानकारी विज्ञापन प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में विज्ञापन के विरोध करने का कोई मतलब नहीं है बल्कि स्वागत ही करेंगे। आज सारा शाँपिंग हमारे ऊँगलियों पर है। कहीं जाने की, घूमने-फिरने की ज़रूरत तक नहीं बल्कि एक स्मार्ट फोन, इंटरनेट के

ज़रिए हम दुनिया के हर चीज़ बिस्तर पर लेटकर खरीद सकते हैं। आँनलाइन शाँपिंग की क्रांतिकारी आन्दोलन आज बढ़ते जा रहे हैं। यह प्रणाली मानव को और भी आत्मकेंद्रित बना देती है क्योंकि आस-पड़ोसवालों से कोई लेन-देन की आवश्यकता इन्हें आज नहीं पड़ रही हैं। परिणाम स्वरूप 'सामाजिक मानव' एक संकल्पना मात्र बनकर रह गयी है।

4.3.4.3. बाज़ारवादी संस्कृति एवं इंस्टेंट कल्चर

पुराने ज़माने में बाज़ार हमारी आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए गठित थी, इसलिए हम सानन्द बुनियादी चीज़ों की खरीदारी कर सकते थे। लोगों के बीच में आदान-प्रदान, लेन-देन, रिश्ते-नाते आदि बाज़ार के बहाने हो जाते थे। लेकिन वर्तमान परिदृश्य में बाज़ार के अर्थ, रूप, परिभाषा सबकुछ बदल गया है। मूल्यों पर भी बदलाव आ रहा है। बदलाव ही नहीं मूल्यों का पतन हो गया है। उपभोक्तावाद एवं सूचना क्रांति की अतितीव्रता मनुष्य के मूल्यों को, रिश्ते-नाते को ढीला किया है। एक मायामोहिनी के रूप में बाज़ार आाज हमारे चारों ओर व्याप्त है।

वास्तव में भूमण्ड़लीकरण बसुधैवकुटुम्बकम की पवित्र संकल्पना को प्रस्तुत किया था। लेकिन ठीक उल्टा प्रभाव ही इसके अंजान के रूप में पडा था। बाज़ारवादी संस्कृति की झलक उपन्यास साहित्य में स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

हिंदी में 'ईधन' उपन्यास बाज़ारवादी संस्कृति के प्रभाव में जीवन बिताती स्निग्धा की कहानी है। बड़े-घर की बेटी होने के कारण बाजार की ओर कुछ ज़्यादा लगाव है। लेकिन एक आम व्यक्ति रोहित से शादी करने पर वहाँ के वातावरण के साथ समायोजित होने के दौरान महसूस करनेवाली कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। अपना वर्चस्व दिखाने की कोशिश हमेशा पति-पत्नी में एक दूसरे के बीच तनाव पैदा करती है। स्निग्धा की बाज़ारीकृत दुनिया की ओर के आकर्षण से रोहित पर होती विड़म्बनाओं का दर्दनाक चित्रण किया है आम परिवारों में बाज़ारीकरण के कुप्रभाव का चित्रण पर लेखक ने अपना विचार प्रस्तुत किया है।

"दौड़" में बाज़ारीकृत महानगरों का चित्रण हमें मिल जाते हैं। "यहाँ दूध मिलता है पर भैंसे नहीं दिखती। कहीं साईकिल की घंटी टनटनाते दूधवाले नज़र नहीं आते। बड़ी-बड़ी सुसज्जित डेरी शॉप हैं, एयरकंडीशंड, जहाँ आदमकद चमचमाती स्टील की टंकियों में टोंटी से दूध निकलता है। ठड़ा, पास्चराइज़्ड।"[85] यही तो वर्तमान सच्चाई है। आज कोई छोटे बच्चे से दूध कहाँ से मिलते हैं? पूछने पर मिल्मा से या कोई मॉल का नाम बता देगा क्योंकि उन्हें यह तक पता नहीं कि गाय हमें दूध देती है। सब कुछ इंस्टेंट है। जैसे 'कुल ज़मा' बीस में बच्चा आंशु बता रहा है कि- "यहाँ तो सब कुछ इंस्टेंट होता है। इंस्टेंट काफी, इंस्टेंट न्यूडिल्स, इंस्टेंट मैसेजस और इंस्टेंट रिलेशनशिप भी।"[86] किसी के द्वारा नकारनेवाली सच्चाई तो यही तथ्य है।

अमीर घराने की नारियों को बाज़ार के प्रति होती अति-आकर्षण को सुधाजी शान्ता के ज़रिए "द मदर आई नेवर क्नोस" में चित्रित किया है। नई-नई कीमती साड़ियाँ एवं गहने पहनकर

क्लबों में जाना, शादी-वादी में सहभागिता करना आदि उत्तर-आधुनिक बाज़ारी सभ्यता की विशेषता है।

बाज़ार तो आज परोक्ष रूप में भी सर्वव्यापी है। बाज़ारहीन दुनिया मानवजाति केलिए दुष्कर हो जाती है। यह निश्चित बात है कि भविष्य में ये बाज़ार विखराल रूप धारण करके दुनिया कोऔर विकृत बनाएँगे। बाज़ारीकृत दुनिया मौलिकता की कमी और नकलापन की अधिकता ही पायी जाती है। आज दूध से लेकर हर चीज़ के नकल उत्पाद उपलब्ध है। अपनी हैसियत को बनाए रखने केलिए सब जानकारी रावने के बावजूद भी अनजान बैठकर नाटकबाजी करते हैं।

4.3.4.4. पार्टी एवं फास्ट फुड़ कल्चर

बढ़ती ब्राँटड़ एवं फैशन संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि का परिणाम पार्टी कल्चर के नाम के नई प्रणाली उभर आयी है। पार्टी कल्चर अमीर और उच्चवर्गों के बीच चलती प्रथा है जहाँ व्यर्थ दिखावे की प्रवृत्ति अधिकतर पायी जाती है। अपनी

कपट हैसियत की स्थापना हेतु शान और शौकत के पहनावा और कृत्रिम मुस्कुराहट के साथ पार्टी में आते हैं। इन पार्टियों का आयोजन ऐसे अधिकांश बड़े-बड़े पाँच सितारे होटलों में आयोजित होते हैं। वहाँ के खान-पान की संस्कृति का भी पश्चिमीकृत बदलाव देख सकते हैं। फास्ट-फुड़ कल्चर इसका एक सशक्त मिसाल है साथ ही साथ जंग फुड़ भी अपना स्थान बना लिया है। छोटी-छोटी बातों को लेकर साहित्य के क्षेत्र में भी बड़ी-बड़ी खर्चीली पार्टियों आयोजित होती है। महानगरीय परिवेश से टुड़कर कम से कम ऐसे कई पार्टियों के ज़िक्र के बिना वर्तमान उपन्यास अधुरा ही है।

हिंदी उपन्यासों में 'ईंधन', 'अपवाद', 'कुल ज़मा बीस', '17-रानड़े रोड़', 'पहर दोपहर' आदि पार्टी कल्चर के जोशीले वातावरण का आनन्द उठानेवालों के साथ-साथ पीडा का अनुभव करनेवालों का भी चित्रण किया गया है।

अंग्रेज़ी उपन्यासों में "नऊ दाट यू आर रिच", "कैन लव हेपन ट्वाईस", "हाल्फ गर्लफ्रेंट", "हाऊस ऑफ कार्डस", "एंशियंट प्रॉमीसस"

आदि अधिकांश उपन्यासों में पार्टी के कपट चेहरों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

'ईधन' एवं 'अपवाद' पार्टी कल्चर की व्यर्थता, भावशून्यता एवं रागात्मक संबंध की कमी आदि को चित्रित किया गया है। दोनों उपन्यासों में माँ-बाप द्वारा आयोजिक पार्टियों में बच्चों के प्रति उपेक्षा का मनोभाव की दर्दनाक स्थिति भी है। रोहित और स्निग्धा की शादी पर असंतुष्ट स्निग्धा के पापा सिर्फ उन्हीं केलिए पार्टी चलाते हैं वह खुद पार्टी के दिन गैरहाज़िर होकर दिल्ली चला जाता है और अपना मनमुटाव व्यक्त करता है। अपवाद में पुत्री यति को मेनिञ्जाईटिस बुखार से पीड़ित होकर अस्पताल में भर्ती कराई है। पापा-मम्मा उनकी देखभाल करने केलिए अस्पताल नहीं आती हैं। क्योंकि उनकी शादी की रजतगॉठ समारोह की तैयारियों में कोई बाधा न आए। पार्टी के बाद जब यदि को मिलने आई तो सिर्फ औपचारिक तरीके से पूछ-ताछ करके पार्टी के बारे में विस्तार से व्याख्या शुरू करते हैं। अमीर और व्यस्त लोगों के मन में रिश्तों के प्रति आई बदली

मानसिकता तथा अपनी हैसियत को बनाए रखने केलिए की जानेवाली पार्टी कल्चर आदि पर समकालीन उपन्यासकार अपनी लेखनी चलायी है।

"हाऊस ऑफ कार्डस्" में लक्ष्मी कीमती कपड़े, गहने पहनकर अपनी भाभी लोगों पर ईष्या पैदा करने के वास्ते शंकर के साथ पार्टी में जाती है तो "द मदर आई नेवर क्नोस" में अमीर घर की औरतों का कपट प्यार एवं हँसी की यथार्थता को शान्ता के क्लब एवं पार्टी के ज़रिए लेखिका व्यक्त करती हैं। क्लब के किसी सदस्य को शांता पसंद नहीं करती है। लेकिन पार्टी में उनसे इतनी मीठी बातें करती है कि इतने जिघरे दोस्त हैं। इस प्रकार की कपटता पार्टी में पायी जाती है।

"17 रानड़े रोड़" एवं "दौड़" में खान-पान में आए बदलाव का भी चित्रण किया गया है। "दौड़" में पवन जब नौकरी के वास्ते अहमदाबाद में आने पर भोजन शैली बदलना पड़ता है। नास्ते में भी फास्ट फुड़ अपनाने में मज़बूर हो जाता है। पिसा, सानविच आदि खाकर वे लोग अपना भूख मिटा लेते हैं। पाश्चात्य भोजन

पदार्थों का भारतीयकरण करके बचने की प्रणाली भी शहरों में है। मुम्बई जैसे महानहपों में सेलिब्रिटिस वजह खोजकर पार्टी करके अपने शान और शोकत दिखाते हैं। वे लोग सिर्फ यह चाहते हैं कि अपना हर दिन रंगीन हो। इसलिए कीमती पेय एवं खाने के पदार्थ परोसका दूसरों की मुँह से अपनी प्रशंसा सुनने चाहते हैं।

खान-पान की बदलती संस्कृति के बारे में "कैन लव हापेन ट्वाईस" उपन्यास के ज़रिए रविन बताता है कि-*"Unlike India, Where a Sandwich is more like a snack, in the west it is more of a meal. Having lived in various countries I have adapted to every kind of meal by now."*87 भारत में सेनविच जैसे खाद्‌य पदार्थ सिर्फ एक हल्का भोज्य पदार्थ है लेकिन पश्चिम में यह एक संपूर्ण भोजन है। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप यह आज एक नाश्ता के रूप में बदल गया है। 'हाफ्ल गर्ल्फ्रेंड़' में पार्टीकल्चर से त्रस्त 'रिया सोमानी' को हम देख सकते हैं। रिया इस प्रकार के दिखावे केलिए की जानेवाली पार्टी पसंद नहीं करती हैं। इन सबसे नफ़रत करने पर भी मज़बूरी से ऐसे पार्टियों में भाग लेनी पड़ती है। पार्टी के बारे में उनकी कथन इस प्रकार है कि *"I understand*

how you feel. In some ways even I feel like a tourist at these parties! It's not real. All this, I've lived with this fakeness all my life."[88]

इस प्रकार पार्टी कल्चर एवं भारतीय खान-पान सभ्यता में आए बदलावों को हर लेखक अपने-अपने परिवेश में ईमान्दारी के साथ रचनाओं में व्यक्त किया है।

4.3.4.5. भारतीय बनाम पाश्चात्य संस्कृति

भारतीय संस्कृति तो दुनिया की सबसे श्रेष्ठ एवं पुरानी संस्कृतियों में से एक मानी जाती है। पश्चिमी संस्कृति तो हमारे लिए आधुनिक या उत्तर-आधुनिक संस्कृति लगती है। भारतीय संस्कृति बहुत सारी रीति-रिवाजें, मानवीय, सामाजिक मूल्यों, जीवन शैली में सरलता एवं पारिवारिक शिष्टाचार आदि को बहुमूल्य स्थान दिया गया है। "विविधता में एकता" भारत की एक अन्य

विशेषता है, जहाँ बहुत सारी भाषा-भाषी लोग हैं, बहुत सारे धर्म पर विश्वास करनेवाले लोग हैं फिर भी हम सब एक हैं। पारिवारिक जीवन एवं बंधन को प्राथमिकता देनेवाले लोग हैं। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति स्वच्छंदता को अधिक बल देती है। पाश्चात्य संस्कृति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण में जीने के कारण संयुक्त परिवार रूपी संगठन पर कभी विश्वास नहीं रखते हैं। पश्चिमी संस्कृति तो समय के साथ बदलती है, लेकिन भारतीय संस्कृति अतीत से जुड़ी है। भारतीय संस्कृति विश्व मंगल भावना को लेकर "सर्वे भवन्तु सुखिनः' पर आधारित हैं।

भारत की ओर व्यापक रूप से पश्चिमी विचारों का प्रभाव फैलने लगे। देश की संस्कृति में बदलाव आना शुरू हुआ। रिश्ते नातों में अवैधता का अतिक्रमण पाश्चात्य संस्कृति का दुष्प्रभाव माना जाना चाहिए। लेकिन स्वच्छता एवं सुव्यवस्था तो पश्चिम से अपनाने की चीज़ें हैं। क्योंकि विदेशों में हर जगह स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित होती हैं।

"एनसियंट प्रामीसस" एवं 'विजन' भारतीय स्त्री परिकल्पना पर आधारित उपन्यास हैं। एक में जानकी जो दिल्ली में पला-बढ़ा लेकिन केरल के एक अमीर परिवार में शादी करके आती है। माँ के द्वारा समझाई मान्यताओं को आत्मसमर्पण की भावना से अपनाकर ससुराल में जीने की कोशिख करती है। लेकिन पति एवं उनके परिवारवाले उनके प्रति अपनापन एवं लगाव नहीं दिखाते हैं। नौ साल तक ऐसी ज़िन्दगी बिताती है। लेकिन बेटी रिया के प्रति भी उपेक्षा की भावना को पहचानकर वह पति से तलाक माँगती है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर अपना पहला प्यार अर्जुन के साथ इंग्लेंट जाकर लिविंग टुगेथर में अपनी ज़िंन्दगी एवं शिक्षा आगे बढ़ाती है। इस उपन्यास पढ़ने पर स्त्री को स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बनाने में पाश्चात्य संस्कृति बहुत ही सराहनीय प्रतीत होते हैं। लेकिन "विज़न" में शिक्षित भारतीय नारी को कम आंकने की प्रवृत्ति एवं उनकी क्षमताओं को दमन करनेवाले ससुरालवालों का चित्रण है। 'नेहा' एक निपुण नेत्र चिकित्सक है लेकिन उनके ससुर उन्हें कभी कामयाब होने नहीं देते। नेहा के

अनुसार आदर्श भारतीय नाही का स्वरूप उनकी माँ हैं। नेहा माँ के जैसे आत्मसमर्पित नारी का व्यवहार करती है लेकिन अपने परिवार में कोई उसे प्रोत्साहन नहीं करती है।

'अपवाद' एवं "हाऊस ऑफ कार्ड्स" भारतीय पश्चिमी संस्कृति का द्वंद्वात्मक चित्रण है। कथानक की दृष्टि से दोनों उपन्यासों में बहुत समानताएँ हैं। "अपवाद" की "यति", "हाऊस ऑफ कार्ड्स' की मृदुला सफल भारतीय नारी, पत्नी, माँ, बेटी बनकर हमारे सामने आ रही हैं। मृदुला एक सफल बेटी भी है लेकिन "यति" अपने व्यंस्त माँ-बाप से कभी कोई नाता-जोड़ना नहीं चाहती। वे दोनों पात्र पारिवारिक एवं सामाजिक शिष्टाचारों के अनुकूल ही जीवन बिताती हैं। ज़िन्दगी में बहुत सारी बदलाव आये, फिर भी दोनों मूल्यों के साथ ही रहे और अंत में भलाई सफलता एवं उचित सम्मान सब कुछ प्राप्त होती हैं।

"द फाल्डेड एर्थ" उपन्यास में क्रमशः माईकल-माया द्वारा अनुराधा ने भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य को ही खींचा है। माईकल का मृत्यु पर बेसहारा बननेवाली माया आत्मनिर्भर एवं

निड़र बनकर दूसरे गाँव जाकर नौकरी करके जीवन बितती है। लेकिन वीर नामक एक मर्द उन्हें इस्तेमाल करके धोखा देने पर वह विद्रोही भी बन जाती है। भारतीय परिवेश में अकेली औरत को कितना कुछ सहना पड़ती है इसका चित्रण करना लेखिका का उद्देश्य है। 'यूअर ड्रीम्स आर माईन नाऊ' भी भारतीय आदर्श नारी के चित्रण का ज्वलंत उदाहरण है जो खुद पर या दूसरों पर होती आत्याचारों के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। 'नदी' भारतीय-पाश्चात्य सभ्यता का मिलन एवं इस द्वंद्व में पड़नेवाली स्त्री मानसिकता का सशक्त चित्रण है। अमरिका जानेवाले भारतीयों के एवं वहाँ अकेली पड़ी 'आकाशगंगा' के मन की उद्वेलनों को चित्रित किया है। "पासवर्ड" उपन्यास तकनीकीकरण औद्योगिकीकरण, उपभोक्तावाद आदि पाश्चात्य सभ्यता के बहुरूपों को भारतीय परिदृश्य में चित्रित करने का प्रयास है।

इस प्रकार जाने अनजाने में हर मनुष्य के जीवन में (भारतीयों) पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव कहीं न कहीं विद्यमान है। पाश्चात्य सभ्यता ही दुनिया के हर कहीं विराजमान सभ्यता

ही है। इसे नकारते हुए, नज़र अंदाज़ करते हुए कोई कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि उपनिवेशवादी शक्तियाँ हमारे ऊपर अपना अधिकार समाया है। पाश्चात्य संस्कृति की नब्ज परखने में भारतीय उपन्यास सहायक सिद्ध होते हैं।

4.4. निष्कर्ष

हम सब यह जानते है कि आज मानव से लेकर हर चीज़ बिकाऊ माल मात्र रह गया है। मानव जीवन में अब कोई प्यार, जीवन मूल्य, दर्शन, शिष्टाचार, नैतिक मूल्य बाकी नहीं रह गया है। इतिहास, संस्कृति एवं परंपरा रूपी अतीत का महत्व नष्ट और भ्रष्ट हो गया है। आज के बहुलतावादी या बहुसंस्कृतिवादी परिदृश्य में व्यक्ति के अस्तित्व को बनाए रखना मुश्किल कार्य बन गया है। सारी नैतिकताओं को तोड़कर धन और दौलत के पीछे भागनेवाले मानव जीवन का चित्रण उत्तर-आधुनिक कालीन उपन्यासों में समीचीन ढंग से प्रस्तुत किया है। ऐसे विपरीत वातावरण में मानव जीवन शैली किस प्रकार है और उन्हें किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इन सबका परिणाम

क्या होगा आदि का अध्ययन परम्परागत बनाम उत्तर-आधुनिक जीवन के आधार पर करने की कोशिश मैंने की है। पाश्चात्य संस्कृति की नकारात्मक पक्षों के बारे में अवगत होने के बावजूद भी हम अनजान होकर इसके अधीन रहकर सभी पहलुओं का अनुभव करते हैं और हिस्सा बनते हैं। जब तक हम इस संस्कृति के हिस्सा बनकर रहेंगे, ऐसी समस्याओं से मुक्त होने की कल्पना करना व्यर्थ है। हमें खुद इसे पहचानकर बाहर आना होगा। अन्यथा ऐसी समस्याओं के चंगुल में हम फँसे रहेंगे। कमरतोड़ मेहनत करके खूब कमाते हैं लेकिन ज़िन्दगी में एक दिन भी चैन नहीं है तो क्या मतलब है। किस्केलिए कमाते रहे हैं।

स्वार्थपूर्ति हेतु रिश्ते-नातों की परवाह किए बिना ज़िन्दगी में कमाई पर ही ध्यान देकर सबकुछ हासिल करते हैं। लेकिन जीवन में काफी कुछ खो जाते हैं जिसपर ध्यान नहीं जाता है। लेकिन ज़िनदगी के एक पड़ाव में मुड़कर देखने पर अपने पास सिर्फ कमाई ही रहेगी, अपने साथ रहनेवाले कोई नहीं रहेगा। यह एक सच्चाई है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नेमीचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार – पृ. सं. 1.

2. डॉ. रत्ना शर्मा, समकालीन हिन्दी उपन्यास यथार्थबोध और उसकी भाषा – पृ. सं. 11.

3. मूक आवाज़, हिन्दी जर्नल, अंक 7, जुलाई-सितंबर 2014, निबंध भूमण्ड़लीकरण की भट्टी में भस्म होते मनुष्यत्व की कथा – धर्मा रावत।
4. पुष्पपाल सिंह, 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास – पृ. सं. 356.
5. स्वयं प्रकाश, ईधन – पृ. सं. 102.
6. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस् – पृ. सं. 72.
7. डॉ. रत्ना शर्मा - समकालीन हिंदी उपन्यास : यथार्थबोध और उसकी भाषा - पृ. सं. 40.
8. डॉ. विद्याभूषण और डी.आर सचदेवा, समाज शास्त्र – पृ. सं. 137.
9. चेतन भगत, हाल्फ गर्लफ्रेंड - पृ. सं. 217.
10. श्याम सखा श्याम, अपवाद – पृ. सं. 35.
11. रविन्द्र सिंह, कैन लव हैप्पन ट्वाईस – पृ. सं. 181.
12. वही – पृ. सं. 185.
13. मैत्रेयी पुष्पा, विज़न – पृ. सं. 70.
14. वही – पृ. सं. 36.

15. रजनी गुप्ता, कुल ज़मा बीस – पृ. सं. 19.

16. सुधा मूर्ती, द मदर आई नेवर क्नोस – पृ.   सं. 10.

17. वही – पृ. सं. 106.

18. ममता कालिया, दौड - पृ. सं. 71.

19. रजनी गुप्ता, कुल ज़मा बीस – पृ. सं. 159.

20. कमल कुमार – पासवर्ड - पृ. सं. 105.

21. रवीन्दर सिंह, कैन लब हैप्पन ट्वाईस – पृ.   सं. 213.

22. चेतन भगत, रेवल्यूशन 20-20 – पृ. सं. 67.

23. मैत्रेयी पुष्पा, विज़न – पृ सं. 164.

24. ममता कालिय, दौड - पृ. सं. 63.

25. वही – पृ. सं. 56.

26. सुधा मूर्ति, मदर आई नेवर क्नोस – पृ. सं. 149.

27. वही – पृ. सं. 69.

28. जयश्री मिश्रा, एन्शियंट प्रामीसस – पृ. सं. 70.

29. वही – पृ. सं. 69.

30. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस – पृ. सं. 3, 4.

31. वही – पृ. सं. 189.

32. सुधा मूर्ति, मदर आई नेवर क्न्यू – पृ. सं. 49.

33. ममता कालिया, दौड - पृ. सं. 48.

34. रजनी गुप्ता, कुलज़मा बीस – पृ. सं. 101.

35. असगर बजाहत, पहर दोपहर – पृ. सं. 17.

36. स्वयं प्रकाश, ईधन – पृ. सं. 81.

37. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस – पृ. सं. 152.

38. दुर्जेय दत्ता, मानवी अहूजा, नाऊ दाट यु आर रिच – पृ. सं. 23.

39. सुधा मूर्ति, मदर आई नेवर क्न्यूस – पृ. सं. 4.

40. उषा प्रियंवदा, नदी – पृ. सं. 44.

41. वही – पृ. सं. 69.

42. वही – पृ. सं. 74.

43. जयश्री मिश्रा, एन्शियंट प्रामीसस – पृ. सं. 146, 147.

44. ममता कालिया, दौड - पृ. सं. 43.

45. उषा प्रियंवदा, नदी – पृ. सं. 98.

46. रजनी गुप्ता, कुल ज़मा बीस – पृ. सं. 96.

47. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस – पृ. सं. 5.

48. सुधा मूर्ति, द मदर आई नेवर क्न्यूस – पृ. सं. 49.

49. जयश्री मिश्रा, एन्शियंट प्रामीसर – 142.

50. डॉ. अनु पाण्डेय, 21 वीं सदी का कथा साहित्य विविध विमर्श – पृ. सं. 44.

51. ममता कालिया, दौड - पृ. सं. 12.

52. जयश्री मिश्र, एन्शियंट प्रामीसस – पृ. सं. 87

53. वही – पृ. सं. 99-100.

54. दुर्जोय दत्ता, मानवी अहूँजा, नाऊ दाट यू आर रिच – पृ. सं. 54.

55. अनुराधा राय, द फाल्डेड एर्थ – पृ. सं. 15.

56. रवीन्दर सिंह, कैन लब हैप्पन ट्वाईस – पृ. सं. 48-49.

57. रवीन्द्र कालिया, 17 रानडे रोड - पृ. सं. 261.

58. वही - पृ. सं. 158.

59. कमल कुमार, पासवर्ड - पृ. सं. 13.

60. ममता कालिया, दौड - पृ. सं. 42.

61. चेतन भगत, हाल्फ गर्लफ्रेंट – पृ. सं. 218.

62. वही – पृ. सं. 2.

63. स्वयं प्रकाश, ईधन – पृ. सं. 225.

64. वही – पृ. सं. 224.

65. कमल कुमार, पासवर्ड – पृ. सं. 15.

66. वही – पृ. सं. 63.

67. वही – पृ. सं. 67.

68. चेतन भगत, हार्फ गर्लफ्रेंड – पृ. सं. 12.

69. रवीन्दर सिंह, युअर ड्रींस आर माईन नाऊ – पृ. सं. 88.

70. चेतन भगत, हार्ल्फ गर्लफ्रेंड – पृ. सं. 116.

71. रवीन्द्र सिंह, युअर ड्रींस आर माईन नाऊ – पृ. सं. 213.

72. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस – पृ. सं. 92-93.

73. वही – पृ. सं. 95.

74. अनुराधा राय, द फल्डेड एर्थ – पृ. सं. 19.

75. चेतन भगत, हार्लफ गर्लफ्रेंट – पृ. सं. 108.

76. ममता कालिया, दौड – पृ. सं. 24.

77. दुर्जेय दत्ता, मानवी अहूजा, नाऊ दाट यू आर रिच – पृ. सं. 48.

78. कमल कुमार, पासवर्ड - पृ. सं. 14.

79. उषा प्रियंवदा, नदी – पृ. सं. 54.

80. कमल कुमार, पासवर्ड – पृ. सं. 169.

81. वही – पृ. सं. 169.

82. सुधा मूर्ति, हाऊस ऑफ कार्डस – पृ. सं. 71.

83. ममता कालिया, दौड – पृ. सं. 23-24.

84. वही – पृ. सं. 44.

85. वही – पृ. सं. 15.

86. रजनीगुप्ता, कुल ज़मा बीस – पृ. सं. 57.

87. रवीन्द्र सिंह, कैन लब हैप्पन ट्वाईस – पृ. सं. 42.

88. चेतन भगत, हाल्फ गर्लफेंट – पृ. सं. 57.

पाँचवाँ अध्याय

संस्तुतियाँ

मेरा शोध-प्रबंध 'उत्तर-आधुनिक हिन्दी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन-एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर है। प्रस्तुत शोध अध्ययन कार्य में तुलनात्मक प्रविधि का प्रमुखता से

प्रयोग हुआ है जो दो भाषा साहित्य एवं संस्कृति से संबंधित जानकारियाँ प्रदान करने में सक्षम है।

इस विषय पर भविष्य में भावी शोधकर्ताओं के लिए निम्नलिखित संस्तुतियाँ हैं –

- विश्व साहित्य, विश्व सांस्कृतिक संकल्पनाओं को स्थापित करने केलिए तुलनात्मक साहित्याध्ययन संबंधी विभिन्न सूचनाएँ तथा जानकारी अत्यंत महत्वपूर्ण और अपेक्षित हैं।
- भारतीय अंग्रेज़ी एवं हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करके भाषा के ज़रिए सादृश्य निरूपण एवं सांस्कृतिक विविधता में एकरूपता खोजने और सामाजिक-सांस्कृतिक संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।
- एक भाषा साहित्य के परे जाकर विश्व साहित्य में विभिन्न प्रकार से निरूपित ज्ञान के विविध आयामों का परिचय प्रदान कर सकते हैं।

- विभिन्न भाषा साहित्यों की भाषाई विशेषताओं के तहत साहित्यगत एकरूपता या समानता का निरूपण कर सकते हैं।
- तुलनात्मक साहित्याध्ययन के ज़रिए इस संसार की नूतन साहित्यिक प्रवृत्तियों को ढूंढ कर आगामी पीढ़ी केलिए अध्ययन हेतु उपलब्ध कर सकते हैं।
- तुलनात्मक अध्ययन के सहारे सिर्फ साहित्य का ही नहीं इससे परे कला, इतिहास, समाज विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि पर भी भाषाई सीमाओं को पार करते हुए विस्तृत अध्ययन कर सकते हैं।
- भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो भाषिक भिन्नता प्रचुर मात्रा में हैं। विभिन्नता में समानता की खोज के साथ ही साथ समानता में छिपी हुई विशिष्टता की खोज तुलनात्मक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता हो सकती है।

तुलनात्मक साहित्याध्ययन विश्व साहित्य एवं विश्व मानवतावाद के साधन के रूप में आज बहु प्रचलित और

लोकप्रिय होते जा रहे हैं। इस दृष्टि से यह अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

उपसंहार

उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित मानव जीवन की तुलनात्मक अध्ययन करने पर, वर्तमान मानवीय जीवन में विभिन्न पहलुओं में आए बदलावों पर दृष्टि डाला है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसका विचार विमर्श करना भी मेरा कर्तव्य है। भारतीय भाषा हिंदी और वैश्विक भाषा अंग्रेज़ी दोनों, समय एवं

साहित्य के साथ तीव्र गति से चलनेवाली भाषाएँ हैं। दोनों भाषाओं में रचित उपन्यासों का अध्ययन, विश्लेषण करके भारतीय परिवेश में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव कितनी गहरी ढंग से हुआ है इसका प्रस्तुतीकरण है। यह प्रभाव भाषा के ज़रिए भारत में आए हैं या साहित्य के ज़रिए इन सबका विषयाधिष्ठित ढंग से चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में एक वैश्विक भाषा को अपनाना एवं उस भाषा पर अधिकार पाना उतना मुश्किल काम नहीं है। लेकिन एक वैश्विक भाषा होने के नाते अंग्रेज़ी का अपना एक वर्चस्व है एक अलग सभ्यता है। यह सभ्यता तो बेशक पाश्चात्य पर हावी होती हैं।

अंग्रेज़ी भाषा के ज़रिए भारतीय-अंग्रेज़ी साहित्य में (Indo-Anglean Literature) भारत का या पाश्चात्य का असर ज़्यादातर प्रकट होता है, इस बात का अध्ययन एवं विश्लेषण करने से यह मालूम हुआ है कि भारतीयता में ही सबकुछ पनप रहा है।

मतलब भारतीय संस्कृति में ही भारतीय अंग्रेज़ी साहित्यकार पाश्चात्य सभ्यता को अपनाते हैं। भारतीय मानव जीवन को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में चित्रण करने में दोनों भाषा के रचनाकार सफल नज़र आते हैं।

भूमंडलीकरण के दौर में उपन्यास जगत में और पश्चिमीकृत बदलते वातावरण में मानव जीवन पद्धति, मूल्य, दृष्टिकोण, आपसी संबन्ध आदि में जो बदलाव आ रहा है, साहित्य विशेषतः उपन्यास में इन बदलावों का प्रभाव अधिकतर देखने को मिलता है। इन सारी स्थितियों में मनुष्य के अंदर की मानवीयता को बचाने का प्रयास एवं व्याकुलता भी दोनों भाषाओं के पूरे साहित्य में विभिन्न परिवेश एवं रूपों में अंकित किया गया है।

आज के कथासाहित्यों में तात्कालिक समस्याओं को अति गहराई से पकड़ने एवं चित्रित करने की कोशिश बड़ी कुशलता से लेखकों ने की है। विकास रूपी नए-नए प्रारूपों का-बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, विज्ञापन जगत, उत्तर-औद्योगिक वर्चस्व आदि-

नब्ज टटोलकर हिंदी-अंग्रेज़ी भाषा के लेखकों ने समय के साथ-साथ अपनी कलम चलाया है।

आज मानव, से लेकर हर चीज़ बिकाऊ माल मात्र रह गया है। इसलिए ही मानवीय जीवन की भावुकता नष्ट होकर सिर्फ मशीनीमात्र रह गयी है। प्यार, जीवन-मूल्य, दर्शन आदि नहीं के बराबर रह गया है। आज उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में इतिहास, संस्कृति एवं परम्परागत मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। मतलब तो यह है कि इन सबका अंत हो रहा है। इसलिए ही इस उत्तर-आधुनिकता को परम्परागत सारी प्रारूपों का अंत समझकर पुरानी सारी बातों का खण्डन करने की प्रवणता समझना चाहिए। इन सारी बातों का वास्तविक चित्रण पात्रों के ज़रिए विषयानुकूल हर हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों में चित्रित किया है।

आज प्रौद्योगिकी, झोंपड़ों से लेकर बड़े-बड़े मालों तक सर्वस्वीकृत बन गयी है। आनलाईन वर्चस्व एवं तकनीकी के बिनाआज मानव का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उतनी गहराई से मानव और मशीन दोनों मिलजुल गया है। मानव व्यवहार भी

मशीनों जैसे भावना-विहीन बन गया है। आज के युवालोग एक 4 जी (चौथा पीढ़ी) स्मार्ट फोन या लापटोप के चित्रपट पर सिकुड़ते जा रहे हैं। इस तरह सिकुड़ने से आपसी-सम्बन्धों एवं रिश्ते-नातों में भी विघटन आ रहा है। इन लोगों का एकमात्र लक्ष्य तकनीकी क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित करना, आजीविका को स्थाई बनाना तथा धन और दौलत की प्राप्ति मात्र रह गया है। माँ-बाप की पुरानी मान्यताओं पर उन्हें घृणा एवं चिढ़ लगते हैं। पुराने भारतीय संस्कृति एवं नए पाश्चात्य संस्कृति जैसे दोनों विपरीत वातावरण में उनका जीवन किस प्रकार है किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इन मुद्‌दों को लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं।

नगेन्द्र के अनुसार मानव के खोए हुए व्यक्तित्व की खोज को आधुनिकता कहते हैं तो मुझे लगता है उत्तर-आधुनिकता मानव के खुद के व्यक्तित्व खो देने की ओर झुकाव है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जाल में फँसकर गुलाम बनने की प्रवणता को वर्चस्व एवं दौलत प्राप्ति की एक नई प्रवृत्ति आज चल रही

हैं। हम सबको पता है कि कुछ पाने केलिए कुछ तो खोना ज़रूर पड़ता है। लेकिन खुद के अस्तित्व खोकर दौलत एवं वर्चस्व पाने की कोशिश फिर से 1947 के पहले की स्थिति की ओर जानबूझकर पलायन करने जैसा ही है।

इस पलायन रूपी आत्मसमर्पण को उत्तर-आधुनिक हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यसकारों ने अपनी रचनाओं में चेतावनी के रूप में प्रस्तुत किया है।

21 वीं सदी के उपन्यासों के ज़रिए स्पष्ट होता है कि जहाँ से मीड़ियाकृत यथार्थ को मान्यता एवं महत्व देने की प्रवृत्ति ज़ारी है वहाँ से सच्चे ढंग से उत्तर-आधुनिक समय का आरंभ है। आज हर बात को स्थापित करने केलिए मीड़िया की ज़रूरत है। 'स्थापित' करना शब्द जानबूझकर इस्तेमाल किया है कि मीड़िया, आज बातों को सही-गलत परखे बिना बस उसे स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखा रही है जिससे उनके रेटिंग बढ़ जाएँ। मसाला डालकर झूठ को मानव मानस में थोपने का प्रयास भी आज मीड़ियाकृत

जगत में ज़ारी है। समाचारों को उलटा-पुलटा मनपसंद तरीके से प्रस्तुत करते हैं।

इन्सानियत, असलियत एवं नैतिकता को छोड़कर मीड़ियाकृत सच्चाई को घुमा-फिराकर प्रस्तुत करने की प्रणाली दिखाई देती है।

जिसमें अधिकतर फ़िज़ूल तथ्यों को जोड़ती हैं। विज्ञापन जगत में भी ऐसा ही है कि जहाँ ग्राहक लोग गुणवत्ता की जानकारी जानने के भावजूद खरीदने में मज़बूर हो जाते हैं। क्योंकि आज बाज़ार में हर एक चीज़ केलिए बहुत सारे विकल्प उपलब्ध है। अपने उत्पादन की बिक्री बढ़ाने केलिए, ग्राहकों को आकृष्ट करने केलिए विज्ञापन को बढ़ाचढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है जिसमें वास्तविक तथ्यों के बगैर मसाला अधिक डाला जाता है। ब्राँटड़ कल्चर की शुरूआत यहीं से शुरू होती है। इन विषयों पर सतर्क होकर भी आज मानव इन सारी बातों के सिलसिले के पीछे दौड़ते हैं। ब्राँटड़ कल्चर को युवा पीढ़ी इसलिए अपनाती हैं कि इससे समाज में अपनी हैसियत बढ़ जाए, लोगों के बीच में

प्रतिष्ठा पा सकें। इस प्रकार माध्यमीकृत अयथार्थता एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के भूमण्डलीकृत विकृत परिदृश्य आज के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

आज के विकेन्द्रित अवस्था व्यक्ति चिंताओं को आत्मकेंद्रित बना दिया है। यहाँ उत्तर-आधुनिक संकल्पना 'स' (स्वार्थ, सेल्फ) को महत्व देता है। इसलिए ही व्यक्ति बाज़ार का एक साधन मात्र रह गया है। उत्तर-आधुनिकता के मूल में इच्छा है। हर व्यक्ति अपने प्रति, अपने भविष्य के प्रति इच्छुक है। हमेशा अपने बारे में सोचने के कारण वह मन ही मन एवं सामाजिक स्तर पर अकेला है। परिवार के हर व्यक्ति खुद की ओर सिकुड़ रहे हैं। अपनी अस्मिता को बनाए रखनेवाले स्वार्थी मानव का चित्रण करना उत्तर-आधुनिक हिंदी एवं भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकारों ने अपना लक्ष्य माना है।

उत्तर-आधुनिकता के मूल में बहुलतावाद भी पनपते हैं। मतलब तो यह है कि साँस्कृतिक विविधता। भारतीय परिदृश्य में विविधता तो एक नई बात नहीं है। भाषाई विविधता, साँस्कृतिक

विविधता, रीति-रिवाज़ों में विविधता आदि में एकता का पहचान बनाए रखना (विविधता में एकता) भारत की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। लेकिन उत्तर-आधुनिक परिवेश में स्थिति थोड़ा अलग है। पाश्चात्य संस्कृति

एवं सभ्यता, भारतीय रहन-सहन में प्रभाव डाल रहे हैं। इन दोनों संस्कृतियों के मिलन के परिणामस्वरूप मानवीय जीवन में आए बदलाव, भाषाई बदलाव आदि पर भी आज के हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासकार अपनी रचनाओं के माध्यम से विचार-विमर्श कर रहे हैं।

भाषाई बदलाव तो इसप्रकार आ रहा है कि भारत की हर भाषा के साथ आम जनता अंग्रेज़ी शब्द का भी इस्तेमाल करते आ रहे हैं।

हिंदी उपन्यासों में भी कहीं न कहीं अंग्रेज़ी वार्तालाप एवं प्रयोग जुड़ा हुआ है। इस बदलाव को हम एक वैश्विक देन के रूप में मान सकते हैं। भारत एक बहुभाषी देश होने के कारण यहाँ के लोगों को एक से अधिक भाषा सीखना कोई कठिन कार्य नहीं है।

इसलिए अंग्रेज़ी जैसे वैश्विक भाषा को भारतीय भाषा के रूप में मानकर वे अपना रहे हैं। इसका एक ज्वलंत दस्तावेज़ है भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य या इंडो एंग्लियन लिटरेचर।

सामाजिक स्तर के मानव जीवन को व्यक्त करने का प्रयास करके मानव जीवन की बुनियादी चीज़ की तलाश इसमें की है।

व्यक्ति संबन्धों से, आदान-प्रदान एवं पारस्परिक सहभागिता से एक सशक्त समाज का गठन पूरा होता है। बात तो कल, आज एवं भविष्य केलिए लागू है, लेकिन आज के मायने में इस गठन में जो बदलाव आया है यह सोचने की बात है। आज मानव 'स्व' के बंधन से आदान-प्रदान, पारस्परिक सहभागिता आदि से दूर होते जा रहे हैं।

सामाजिक गठन भी पारिवारिक गठन के साथ दुर्बल बनते जा रहे हैं।

इसलिए ही समाज में आज इतनी विड़म्बनाएँ, समस्याएँ चल रही हैं।

जिस हद तक हम अस्मिता केलिए आन्दोलन कर रहे हैं उसी हद तक वे सब हमसे छूट रहे हैं। आज के हर भाषा साहित्य में 'स्व' रूपी बंधन से मुक्त होने की, एक सामाजिक प्राणी बनने की आवश्यकता बताते हुए भविष्य की सामाजिक मंगल केलिए अपनी लेखनी चलानेवाले युवा लेखकों को हम देख सकते हैं। अगर एक व्यक्ति 'स्व' से मुक्त हो तो उसका पारिवारिक गठन ठीक हो जाएगा।

हरेक व्यक्ति अपना पारिवारिक गठन ठीक करें तो समाज, प्राँत, देश, विदेश एवं 'वसुधैवकुटुम्पकम्' सार्थक शब्द बन जाएगा।

उत्तर-आधुनिक आर्थिक स्तर तो तीन प्रकार के होते हैं निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग। वित्तीय संकट अधिकांश नाम से ही पता है कि निम्न एवं मध्यवर्गीय लोगों पर ही लागू है। क्योंकि जहाँ तक उच्चवर्गीय लोगों की बात आते हैं उनकेलिए ताकत, सत्ता एवं शासन साथ देते हैं। पैसा ही सब कुछ हैं। इसलिए अधिकाँश उच्चवर्गीय अमीरी लोगों को कोई समस्या या संकट का सामना नहीं करना पड़ता है। निम्न-मध्यवर्गीय लोगों पर उत्तर-

आधुनिक अवधारणाओं का प्रभाव इतना पड़ता है कि ब्राँटड़ कल्चर, उपभोक्तावादी संस्कृति, बाज़ारीकरण आदि सब कुछ इन लोगों पर ही थोपे जा रहे हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति भी यह बाज़ारीकृत-माध्यमीकृत अवधारणा है जिससे आदमी को आदमी के रूप में नहीं बल्कि उपभोक्ता के रूप में देखा जाता है। मतलब यह है कि एक व्यक्ति को बाज़ार से क्या खरीदना है, उन्हें क्या-क्या चाहिए इसे आज विज्ञापन एवं बाज़ार तय करते हैं। यानी की उपभोक्तावादी संस्कृति में बाज़ार व्यक्ति केलिए नहीं, व्यक्ति बाज़ार केलिए बनाया जा रहा है। समस्या तो खुद के हैसियत एवं सामाजिक दर्जों को लेकर आती है। क्योंकि मध्यवर्गीय लोग अपने को अमीरों जैसे सम्मान प्राप्त करने की सोच में आमदनी से बढ़कर खर्च करके व्यर्थ दिखावे की प्रवृत्ति को अपनाते हैं। अमीरों की तरह प्रतिष्ठा पाने की अंधी दौड़ में उन लोगों के ऋण तो इतना बढ जाते हैं कि वे ऋण में डूबकर खुद को खो देने की हालत तक पहुँचते हैं। लेकिन ठीक उसी वक्त निम्नवर्गीय लोगों को

भरपेट भोजन तक नहीं मिलते हैं। आज के समय की विशेषता भी यह है कि गरीब लोग गरीबी की गहराइयों में डूबते जा रहे हैं। आर्थिक दशा में बदलाव सिर्फ नवयुवकों के काबू में हैं जो बिना स्वार्थता की भावना से काम करते हैं।

औरतों की नौकरी के प्रति भी दृष्टिकोण बदल रहा है। हर

परिवार की औरत आज नौकरी करके कुछ कमाना शुरू कर दी हैं।

घर के चार दीवारोंवाली विशेषण को छोड़कर आज हर क्षेत्र में महिलाएँ अपना स्थान प्राप्त कर रही हैं। आर्थिक दशा में कुछ बदलाव लाने में इन कामकाजी महिलाओं द्वारा भी आज संभव बन गया है। आर्थिक दशा को हर परिप्रेक्ष्य में चित्रित करके बदलाव एवं सुझाव देकर हिंदी-अग्रेज़ी उपन्यासकार ने महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई है।

उत्तर-आधुनिक राजनीतिक परिदृश्य जनतंत्र के बदलते आयाम के साथ हमारे सामने आते हैं। सत्ता एवं ताकत को खुद

की भलाई केलिए इस्तेमाल करनेवाले स्वार्थ राजनीतिज्ञों एवं नेताओं को चीर फ़ाड़ करके प्रस्तुत करने में उत्तर-आधुनिक युवा लेखकगण पूर्ण सफलता पाई हैं। आज के समय में समाज में चलते राजनीतिक भ्रष्टाचार, शिक्षा क्षेत्र के राजनीतिक हादसा, छात्र राजनीति के दोषपरक बदलाव, विकास के नाम पर किए जानेवाले राजनीतिक शोषण, सामाजिक माध्यमों की कूट राजनीति आदि का ज्वलंत चित्रण करके स्वस्थ सामाजिक बदलाव की कल्पना प्रकट करते हुए नज़र आते हैं। उत्तर-आधुनिक परिदृश्य, क्रांतिकारी परिदृश्य होने पर भी हिंदी-अंग्रेज़ी दोनों उपन्यासों में अपने ऊपर किए जानेवाले शोषणों के खिलाफ विद्रोह और संघर्ष करते हुए तथा चेतावनी देकर एक सकारात्मक परिणाम की प्रतीक्षा दिला देने की कोशिश हुई है।

उत्तर-आधुनिक मानवीय जीवन में संस्कृति के बदलते आयाम को भी अध्ययन में समाविष्ट करके यह निष्कर्ष पर पहूँच गया है कि ब्राँटड़ एवं फैशन की दुनिया में आज

मानवजीवन तो सिर्फ उपभोक्तावादी बाज़ारीकृत सभ्यता की ओर मुड़ते नज़र आते हैं।

क्योंकि आज उत्पाद को उपभोग की दृष्टि से हटकर महज दिखावे केलिए खरीदनेवाले नव मानव तो सिर्फ इन संस्कृतियों का शिकार मात्र बन गया है। हिंदी-अंग्रेज़ी उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन करके भी पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति के मिलन दोनों भाषाओं में एक जैसे ही नज़र आते हैं। आज पाश्चात्य सभ्यता तो नवजात शिशु पर भी लागू है। दोनों संस्कृतियों पर आई विषमताएँ एवं विवादों को अतिजीवित करके, मनुष्य दोनों संस्कृतियों को एक साथ अपनाकर आगे बढ़ रहे हैं। इस विषम परिस्थिति को भी विविधता में एकतावाली सूत्र को अपनानेवाले भारतीयों ने आसान बना दिया है और आगे बढ़ रहे हैं।

इसप्रकार हिंदी और अंग्रेज़ी उपन्यासों के तुलनात्मक अध्ययन करके विषमताओं से परे समानताओं को पहचानकर अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। दोनों में भविष्य की सफलता में

विश्वास एवं समस्याओं को दूर करने की भावना भरी हुई है। वैश्विक भाषा को अपनाकर भारतीयता की पहचान को बनाए रखने में भारतीय अंग्रेज़ी युवा लेखन भी अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है। दोनों भाषा लेखकों ने बहुस्तरीय जीवन संघर्षों को प्रस्तुत करने में सफलता हासिल की है। समय के साथ हस्तक्षेप करना प्रतिबद्ध रचनाकार की रचनाधर्मिता होती है। प्रतिबद्ध रचनाकार समय के साथ न्याय करते हुए यह रचनाधर्मिता सदा निभाता है। जनता को अपनी सारी विड़ंबनाओं से मुक्ति दिलाने और उन्हें सही मार्ग पर जीवन बिताने का मार्ग दर्शन के रूप में समकालीन हिन्दी और अंग्रेज़ी उपन्यासकार खड़े हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची

<u>मूल रचनाएँ : हिन्दी</u>

1. अलका सरावगी : एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, सं 2008.
2. असग़र वजाहत: पहर दोपहर, वाणी प्रकाशन, सं. 2011.

3. उषा प्रियंवदा: नदी, राजकमल प्रकाशन, सं. 2014.

4. कमल कुमार: पासवर्ड, सामयिक प्रकाशन, सं. 2013.

5. चित्रा मुद्गल : एक ज़मीन अपनी, सामयिक प्रकाशन, सं. 2013.

6. नासिरा शर्मा: ज़ीरो रोड़, भारतीय ज्ञानपीठ, सं. 2012.

7. ममता कालिया: दौड़, वाणी प्रकाशन, सं. 2005.

8. रजनी गुप्ता:कुल ज़मा बीस, सामयिक प्रकाशन, सं. 2012.

9. रवीन्द्र कालिया: 17 रानड़े रोड़, भारतीय ज्ञानपीठ, सं. 2013.

10. राजेन्द्र मोहन भटनागर: वालन्टाईस डे, नाशनल प्रकाशन, सं. 2004.

11. विष्णु प्रभाकर: संकल्प, वाणी प्रकाशन, सं. 2013.

12. विष्णु प्रभाकर: स्वप्न, वाणी प्रकाशन, सं. 2014.

13. श्याम सखा श्याम : अपवाद, अमन प्रकाशन, सं. 2013.

14. स्वयं प्रकाश : ईधन, वाणी प्रकाशन, सं. 2004.

अग्रेज़ी

1. Anuradha Roy :The folded Earth, Hachette India Publishing, Year 2011.

2. Arudhati Roy:The God of Small Things, India ink Publishing, Year 1997.
3. Chetan Bhagat: One Night at the Call Centre, Rupa Publication Publishing Year 2005.
4. Chetan Bhagat: Revolution 20-20, Rupa Publication, Publishing Year 2011.
5. Chetan Bhagat: The Half Girlfriend, Rupa Publication, Publishing year 2014.
6. Chetan Bhagat: Three Mistakes of My Life, Rupa Publication, Publishing year 2008.
7. Chetan Bhagat: Two States, Rupa Publications, Publishing year 2014.
8. Durjoy Dutta & Manavi Ahuja: Now That You Are Rich, Penguin Metro Reads, Publishing year 2011.
9. Elinor Lipman: The Family Man, Headline Book Publisher, Publishing year 2010.
10. Jayasree Misra: Ancient Promises, Penguin Books, Publishing year 2000.
11. Narayan R.K.: Swami and Friends, Hamiltoo Publication, year 1935.
12. Narayan R.K.:Malgudi Days, Indian Thought Publications, year 1982.

13. Ravinder Singh: Can Love Happen Twice, Penguin Metro Reads, Year 2011.
14. Ravinder Singh: Your Dreams Are Mine Now, Penguin Reads, year 2014.
15. Sudha Murthy : House of Cards, Penguin Books, Publishing year 2013.
16. Sudha Murthy : The Mother never Knows, Penguin Books, Publishing year 2014.

आलोचना ग्रंथ - हिन्दी

1. अजिता सी (डॉ.) : हिंदी एवं मलयालम के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, जवाहर पुस्तकालय, सं. 2009.
2. अमनदीप राणा (सं.) : ए क्रिटिकल स्टडी ऑव द फिक्शनल वर्लड ऑव आर.के. नारायण, एटलांटिक पब्लिकेशन, सं. 2013.
3. अमरनाथ प्रसाद (सं.): क्रिटिकल रेस्पॉन्स टू इंडियन फिक्शन इन इंग्लिश, एटलाँटिक पब्लिकेशन, सं. 2001.
4. इंद्रनाथ चौधुरी: तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, वाणी प्रकाशन, सं. 1983.
5. इंद्रनाथ चौधुरी: तुलनात्मक साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, सं. 2006.

6. इंद्रनाथ मदान: आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, सं. 2006.

7. उषा कीर्ती राणावत (डॉ.): प्रभाखेतान का औपन्यासिक संसार, वाणी प्रकाशन, सं. 2005.

8. कमल कृष्णा (डॉ.): समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में नारी समस्याओं का आधुनिक स्वरूप, सं. 2013.

9. कुमुद शर्मा : भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, रिप्रो पुस्तक लिमिटेड, सं. 2003.

10. कृष्णा दत्त पालीवाल: उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, प्र. सं. 2008, सं. 2010.

11. कृष्णा दत्त पालीवाल: उत्तर आधुनिकता की ओर, दिल्ली आर्य प्रकाशन मंडल, सं. 2007.

12. खत्री. एस.पी. (डॉ.): अंग्रेज़ी साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं. 2014.

13. गजेन्द्रकुमार: इंडियन इंग्लिश नावल, टेक्स्ट एण्ड कान्टक्स्ट, सरूप एण्ड सन्स, सं. 2002.

14. गोपाल राय: हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, सं. 2010.

15. गोरखनाथ तिवारी: अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, सं. 2008.

16. गंगा प्रसाद विमल: आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता, नई किताब प्रकाशन, सं. 2021.

17. जगदीश चतुर्वेदी: उत्तर-आधुनिकतावाद और विचार- धारा, अनामिका प्रकाशन, सं. 2018.

18. जगदीश भगत: हिन्दी उपन्यास एक विस्तृत अध्ययन, आनंद प्रकाशन, सं. 2021.

19. देवशंकर नवीन, सुशांत कुमार मिश्रा (सं.): उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार, वाणी प्रकाशन, सं. 2000.

20. दोषी. एस.एल.: आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रिवाट बुक्स प्रकाशन, सं. 2002.

21. नगेन्द्र (डॉ.) : तुलनात्मक साहित्य, दिल्ली नाशनल पब्लिशिंग हाऊस, सं. 1984.

22. नगेन्द्र (डॉ.), (सं.) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, विशाल कैशिक प्रिंटर्स, सं. 1973.

23. नयना: समकालीन उपन्यास : रचना और परिवेश, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2012.

24. नरेन्द्रकुमार सिंधि और वसुधाकर गोस्वामी: समाजशास्त्र का विवेचन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, सं. 2019.

25. नरेन्द्र कोहली: हिन्दी उपन्यास: सृजन और सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, सं. 2018.

26. नरेन्द्र कौर: वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की भूमिका, नेहा प्रकाशन, सं. 2013.

27. नाईक एम.के.: भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी प्रकाशन, सं. 1989.

28. नानवल्ली प्रफुल्ला (सं.): रीथिंगिंग इंड़ियन इंग्लिश लिटरेचर, पेन क्राफ्ट इंटर्नाशनल, सं. 2000.

29. नी डिग्री अग्रवाल (सं.): भूमण्डलीकरण और हिंदी उपन्यास, अनन्या प्रकाशन, सं.2015.

30. प्रमोदकुमार सिंह: मेदप इण्टो इंग्लिश नोवलिस्ट्स् एण्ड नोवल्स, सब्लिम पब्लिकेशन, सं. 2001.

31. प्रमोद कोवप्रत्त (सं.): इक्कीसवीं शदी के हिंदी उपन्यास, अमन प्रकाशन, सं. 2018.

32. प्रभा खेतान : बाज़ार के बीच: बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, सं. 2004.

33. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु: उत्तर-आधुनिकता बहु आयामी संदर्भ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2010.

34. पारूकांत देसाई (डॉ.): आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, चिंतन प्रकाशन, सं. 1994.

35. पुष्पपाल सिंह: 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्णन प्रकाशन, सं. 2015.

36. पुष्पपाल सिंह: वैश्विक गाँव:आम आदमी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सं. 2012.

37. पूर्णिमा कोड़िया (डॉ.): हिंदी और उड़िया रीति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, जयभारती प्रकाशन, सं. 1989.

38. फ्रेडरिक जेम्सन: पोस्ट मार्डनिज़्म और द कल्चरल लॉजिक ऑव लेट केपिटालिज़्म, ड्यूक यूनिवार्सिटी सं. 2006.

39. बली सिंह: उत्तर आधुनिकता और समकालीन हिंदी आलोचना, स्वराज प्रकाशन्, सं. 2016.

40. भ. ह. राजूरकर (डॉ.), रजमल बोरा (डॉ.): तुलनात्मक साहित्य स्वरूप और समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, सं. 1990.

41. माधव सोनटके (सं.): वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भाषा और साहित्य, अतुल प्रकाशन, सं. 2010.

42. माया प्राकश पाण्डेय: समकालीन साहित्य:बाज़ार और मीड़िया, चिंतन प्रकाशन, सं. 2014.

43. रत्नाशर्मा (डॉ.): समकालीन हिंदी उपन्यास, यथार्थबोध और उसकी भाषा, अमन प्रकाशन, सं. 2019.

44. रमेश कुमार (डॉ.) : वैश्वीकता और वर्तमान साहित्य, मनीषा प्रकाशन, सं. 2019.

45. राजमोहन अग्रवाल, दिव्यारागणी दत्ता : पोस्ट कोलोणियल इंड़ियन-इंग्लिश लिटरेचर, क्रेसेंट पब्लिशिंग कॉरपरेशन, सं. 2013.

46. राजेन्द्र मिश्र (डॉ.): समकालीन विचारधाराएँ और साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन, सं. 2002.

47. रामचंद्र तिवारी (डॉ.): हिंदी का गद्य साहित्य, विश्व - विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1955, आ. सं. 2012.

48. रामनाथन के (डॉ.): हिंदी और तेलुंगू वैष्णव भक्ति साहित्य: एक तुलनात्मक अध्ययन, विनोद पुस्तक मंदिर, सं. 1968.

49. रामेश्वर पाण्डेय (डॉ.): उत्तर-आधुनिकता तथा अन्य निबन्ध, प्रतिमा प्रकाशन, सं. 2019.

50. रामसेवक सिंह: भारतीय अंग्रेज़ी कथा साहित्य, अक्षरा प्रकाशन, सं. 1972.

51. रेखा पाटेल (डॉ.): समकालीन लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, विधा प्रकाशन, कानपुर, सं. 2013.

52. रोहिणी अग्रवाल: समकालीन कथा साहित्य सरहदें और सरोकार, आधार प्रकाशन, सं. 2007, आ. 2012.

53. लक्ष्मी गौतम: उत्तर-आधुनिकता और समकालीन कथा साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, सं. 2013.

54. वनजा के. (डॉ.): तुलना और तुलना, जवाहर पुस्तकालय, सं. 2001.

55. विजय कुमार राऊत (डॉ.): नासिरा शर्मा, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, दिव्या डिस्ट्रिब्यूर्टस, कानपुर, सं. 2010.

56. विश्वनाथ अय्यर. एन.ई.: तुलनात्मक साहित्य, विद्या विहार, नई दिल्ली, सं. 2004.

57. विष्णु नागर : भारत एक बाज़ार है, राजकमल प्रकाशन, सं. 2011.

58. वीरेन्द्रसिंह यादव (डॉ.) : उत्तर-आधुनिकता की पृष्ठभूमी, कुछ विचार, कुछ प्रश्न, ओमेगा पब्लिकेशन, सं. 2011.

59. वीरेन्द्र सिंह यादव : उत्तर-आधुनिकता विचार और मूल्यांकन, ओमेगा पब्लिकेशन, सं. 2011.

60. वेदप्रकाश अमिताभ: हिंदी उपन्या की दिशाएँ, गोविनद प्रकाशन, मथुरा, सं, 2003.

61. शीतला प्रसाद दुबे : अलका सारावगी का उपन्यास साहित्य, अतुल प्रकाशन, सं. 2013.

62. सच्चिदानंद सिंहा : भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, सं. 2003, आ. सं. 2007.

63. सतीश पटेल : 21 वीं शती के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यास, सरस्वती प्रकाशन, सं. **2013**.

64. सभापति मिश्र (डॉ.): भारतीय काव्य शास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, जयभारती प्रकाशन, सं. 2009.

65. सानप शाम (डॉ.) : ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना, विकास प्रकाशन, कानपुर, सं. 2010.

66. सीता मिश्रा (डॉ.) : साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पात्रों का परिवर्तित मूल्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, सं, 2010.

67. सीतालक्ष्मी के (डॉ.): तुलनात्मक साहित्य विश्व संस्कृति और भाषाएँ, अमन प्रकाशन, सं. 2013.

68. सुधाकर टी साली (डॉ.) : इंडियन राईटिंग इन इंग्लिश, चन्द्रालोक प्रकाशन, सं. 2013.

69. सुधीश पचौरी: आलोचना से आगे उत्तर-आधुनिकतावादी और उत्तर-संरचनावादी विमर्श, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 2000.

70. सुधीश पचौरी: उत्तर-आधुनिक साहित्य विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1996.

71. सुधीश पचौरी: पॉपुलर कल्चर के विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2011.

72. सोफिया राजन (डॉ.): हिंदी साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावाद, विद्या प्रकाशन, सं. 2008.

73. संजय चौहान (डॉ.): उत्तर-आधुनिकता और हिंदी उपन्यास, आशा पुस्तकालय, सं. 2011.

74. स्टीवन (सं.): पोस्ट मॉर्डणिज़्म, कैंब्रिड़ज यूनिवेर्सिटि प्रस, सं. 2004.

75. श्रीनारायण समीर (डॉ.) : अनुवाद और उत्तर-आधुनिक अवधारणाएँ, लोकभारती प्रकाशन, सं. 2012.

मलयालम ग्रंथ

1. അച്ചുതനുണ്ണി ചാത്തനാത്ത് (ഡോ.): താരതമ്യ സാഹിത്യ പരിചയം, കറന്റ് ബുക്സ് - 2000.

2. കരീം എം.എ. (ഡോ.): താരതമ്യസാഹിത്യ സമീക്ഷ, പ്രഭാത് ബുക്ക് ഹൗസ്, 1991.

3. കാരശ്ശേരി എം.എൻ: താരതമ്യസാഹിത്യ വിചാരം, കേരള ഭാഷാ ഇൻസ്റ്റിറ്റ്യൂട്ട്

4. കാരശ്ശേരി എം.എൻ: താരതമ്യ സാഹിത്യ വിവേകം, കറന്റ് ബുക്സ്, 1999.

5. പത്മറാവു ജി (ഡോ.): താരതമ്യസാഹിത്യം: പ്രമാണങ്ങൾ, പ്രയോഗം, പ്രസക്തി, മൈത്രി ബുക്സ്, 2018.

6. പുരുഷോത്തമൻ പി.ഒ (പ്രൊ.): താരതമ്യസാഹിത്യം തത്ത്വവും പ്രസക്തിയും, കേരളഭാഷാ ഇൻസ്റ്റിറ്റ്യൂട്ട്, 2000.

7. പുരുഷോത്തമൻ പി.ഒ (പ്രൊ.): താരതമ്യസാഹിത്യ പ്രമാണങ്ങൾ, കറന്റ് ബുക്സ്, 1997.

8. രാധിക സി. നായർ (ഡോ.): സമകാലികസാഹിത്യ സിദ്ധാന്തം, കറന്റ് ബുക്സ് - 2001, 2007.

9. രാമചന്ദ്രൻപിള്ള ടി.ജി (ഡോ.):താരതമ്യ സാഹിത്യ സമീക്ഷ, നാഷണൽ ബുക് സ്റ്റാൾ, 1987.

10. താരതമ്യസാഹിത്യ പീഠിക: കമ്പാരറ്റീവ് ലിറ്ററേച്ചർ സ്റ്റഡി (എഡി.), കേരളഭാഷാ ഇൻസ്റ്റിറ്റ്യൂട്ട്, 1988.

11. വിജയകുമാർ വി: ഉത്തരാധുനികശാസ്ത്രം, വിശ്ലേഷണവും വിമർശനവും, പൂർണ്ണ പബ്ലിക്കേഷൻ, 2006.

<u>अग्रेज़ी ग्रंथ</u>

1. Abraham Mathew: Essays on Literary Theory and Criticism. Cyber Tech Publications, 2011.
2. Aman Deep Rana: A Critical Study of the Fictional World of RK. Narayan, Atlantic Publication, 2013.
3. Amar Nath Prasad: Critical Responses to Indian Fiction in English. Atlantic Publications, 2001.
4. Beena Agarwal (Dr.): Chetan Bhagat: A Voice of Seismic Shift in Indian English Fiction, YKING books, 2013.
5. Beverly Southgate: Post-Modernism in History, Roultedge Publisher’s, 2003.
6. Bijay Kumar Das (Edi.): Comparative Literature, Atlantic Publishers, 2000, 2012.
7. Bijay Kumar Das : Post Modern India Literature Atlantic Publishers, 2003.
8. Brian Metlale: Constructing Post Modernism, Rout ledge London, 1992.
9. Chandra NDR: Modern Literature, Criticism Theory and Practice, Volume II, Authors Press Publications, 2003.
10. Charles Bernheimer: Comparative Literature in the Age of Multiculturalism, The Johns Hopkins University Press, 1995.
11. Fredric Jameson:Post Modernism, Duke University Press, 1991, 2006.

12. Fredric Lolie: A short History of Comparative Literature from the earliest times to the Happiest Day, Online Books, 1906.

13. George K.M. : Comparative Literature, 1984, 86, Kerala Bhasha Institute.

14. Hans Bertens: The Idea of Post Modern, Rutledge Publication, 1995.

15. Jancy Games (Edi): Studies in Comparative Literature Theory, Culture and Space, creative books – 2007.

16. Pam Morris: Realism, Rutledge Publishers, 2003.

17. Ramakrishnan E.V, Harish Trivedi and Chandra Mohan (Edi): Interdisciplinary Alternatives in Comparative Literature, Sage Publication – 2013.

18. Raveendran P.P (Dr.): Post Modernism Positions and Perspective, Cosmo Books – 2000.

19. Reena Sablock: The Emergence of the Indian Best Seller 'Chetan Bhagat' and his Metro Fiction, Atlantic Publishers – 2013.

20. Renne Wellek: The Name and Nature of Comparative Literature.

21. Sivarajan: Education in the Emerging Indian Society Calicut University Press – 1997, 2004.

22. Sreenivas Ayyankar K.R and Prema Nandakumar: Indian Writing in English, Sterling Publication, 5th Ed. - 1994.

23. Sunanda Ghosh: Education in Emerging Indian Society; The Challenges and issues, PHI Learning Private Ltd. – 2009.

24. Sunita Sinha (Edit): Modern Literary Theory Atlantic Publishers – 2012.

25. Sunita Sinha: Post Colonial Women Writers – New Perspective, Atlantic Publishers – 2012.

<u>हिन्दी पत्रिकाएँ</u>

1. जन विकल्प : 2011

2. नव निकष: 2017

3. पंचशील शोध समीक्षा : 2009, 2010, 2012, 2013

4. राष्ट्रसेतु : 2020

5. शोध अमृत : 2012

6. सम्मेलन पत्रिका : 2009, 2010, 2012, 2013

7. साहित्य अमृत : 2013